अनुक्रम

तमिलनाड़ : कन्याकुमारी तक

[१-११-'५६ से १७-४-'५७ तक]

भूदान-गंगा

(षष्ठ खण्ड)

हिंसा को हटाना हमारा लक्ष्य : १ :

भूदान के काम के लिए कई लोगों ने दो-ढाई महीने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार मदद दी है। मुझे उन सबका उपकार मानना चाहिए। मैं जब अपने लिए सोचता हूँ, तो माणिकवाच्यकर का वचन याद आता है: 'नान् यार, येन्न उल्लम्म् यार, ज्ञानम्म् यार, इंग येनै यार अखिर।' अर्थात् मैं कौन हूँ, क्या मेरा ज्ञान है? मेरी कहाँ पहुँच है, मुझे कौन पहचानता है? ठीक यही विचार हमारे मन में कई बार आया करता है। लोग जो मदद देते हैं, वह कुल काम की दृष्टि से कम पड़ती है। फिर भी हम सोचते हैं कि हमारी ऐसी कौन-सी तपस्या है, जो लोग हमें इतनी मदद दें।

सब संस्थाओं से मुक्ति

सभी जानते हैं कि हमारे हाथ में कोई सत्ता नहीं और न कोई खास निर्दिष्ट संस्था ही है। इसमें मेरा कुछ दोष नहीं, बल्कि मैंने इसे अपना गुण माना है। पहले हमारा अनेक संस्थाओं से संबंध था। आज भी बहुत-सी संस्थाओं में हमारे मित्र ही मित्र पड़े हैं। अगर हम किसी संस्था में दाखिल होना चाहें और उसके जरिये काम लें, तो लोग बड़ी खुशी से हमें मौका देंगे। कई लोग मुझे समझाते भी हैं कि तुम संस्थाओं का आश्रय नहीं लेते, यह तुमने एक अहंकार ही रखा है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। मदद तो सबकी स्वागतार्ह है—व्यक्तिगत मदद भी और संस्थाओं के जरिये भी—और ऐसी मदद मिलती भी है। किंतु हमने अपने

विचार में किसी संस्था को स्थान नहीं दिया, उसमें हमने अपना एक बुनियादी विचार माना है। राजनैतिक संस्थाओं की बात तो छोड़ ही देता हूँ, लेकिन दूसरी जो रचनात्मक संस्थाएँ हैं, उनमें से भी किसी संस्था का मैं सदस्य नहीं। एक जमाने में 'गांधी-संघ' स्थापित हुआ था, जिसके अध्यक्ष हमारे परम मित्र किशोरलाल भाई थे। हमारे बहुत-से मित्र बिलकुल नजदीक के आश्रमवासी भी उसके सदस्य थे। किशोरलाल भाई ने भी बड़े आग्रह के साथ कहा था कि "मैं उसमें दाखिल हो जाऊँ, तो बड़ी खुशी की बात होगी।" उस जमाने में बापू थे, लेकिन तब भी मैं उस संस्था में दाखिल नहीं हुआ। मैं समझता हूँ कि अन्त में किशोरलाल भाई मेरी स्थिति, मेरा तत्त्व-विचार समझ गये।

अब तक अहिंसा का समाज बना नहीं

जिसे किसी नये विचार का संशोधन करना हो, उसे सबसे पहली आवश्यकता तटस्थ-बुद्धि की होती है। मनुष्य जब तक किसी भी संस्था का सदस्य बना रहता है, तब तक वह काम तो बहुत कर लेता है, लेकिन विचार-संशोधन के लिए आवश्यक मुक्त मन नहीं रहता। आप जानते हैं कि हम अहिंसा का नाम लेते हैं। अवश्य ही वह बहुत पुराना विचार है, पर वह ऋषियों के व्यक्तिगत जीवन का है। आप "कंब रामायणम्" वगैरह में पढ़ेंगे कि ऋषियों के विचार के मुआफिक एक समाज बना था, लेकिन वह एक केवल भ्रम है। वास्तव में ऐसा कोई समाज आज तक नहीं बना। काव्य में जो वर्णन आता है, वह केवल एक चित्र है, एक आदर्श सामने रखा जाता है। उसे अमल में लाने के लिए जीवन का ढाँचा बदलना पड़ता है।

आज के समाज का अन्तिम शब्द 'लॉ एण्ड ऑर्डर'

अभी तक लोकनेताओं की बहुत-सी ताकत और बुद्धि हिंसा के विकास में लगी है। सारा-का-सारा विज्ञान हिंसा का दास बना है। वैज्ञानिक को आज्ञा होती है कि वह इस प्रकार की खोज करे। पूँजीवादी समाज में ही नहीं, उसके पहले के समाज में भी विज्ञान की खोज की गयी है। आप देखेंगे कि मामूली धनुष-बाण से लेकर एटम और हाइड्रोजन बम तक जितनी खोज हुई, उसके पीछे कितना

दिमाग लगा, कितने प्रयोग हुए और हिंसा के कितने असंख्य औजार तैयार किये गये! इनके अलावा हिंसा के लिए अनेक प्रकार के तत्त्वज्ञान भी बनाये गये। पूँजीवाद, साम्यवाद आदि बहुत-से वाद (इज्म) क्या बता रहे हैं? विशिष्ट विचार समाज पर लादने के लिए ही ये तत्त्वज्ञान पैदा हुए हैं। इस तरह इधर तो हिंसा के औजारों के लिए बहुत खोज हुई और उधर हिंसा को उठानेवाले तत्त्वज्ञान बनाये गये।

इसके अलावा पीनल कोड, लॉ, कोर्ट, सारा-का-सारा कानून का ढाँचा क्या करता है? उसका अंतिम शब्द क्या है? जैसे शंकराचार्य से पूछा गया कि आपका अंतिम शब्द क्या है, तो उन्होंने कहा : 'ब्रह्म', वैसे ही आधुनिक समाज को, इन सब कानूनदाँ को पूछा जाय कि तुम्हारा आखिरी शब्द क्या है, तो वे कहेंगे : 'लॉ एण्ड ऑर्डर (कानून और व्यवस्था)। याने वह आज के जमाने का ब्रह्म है, आज का अंतिम शब्द है। उनके पास इससे ऊँचा शब्द नहीं। कानून और व्यवस्था का मतलब है, अभी तक जो समाज-रचना बनी है, उस रचना में जिनके-जिनके जो अधिकार हैं, वे कायम रह सकें।

महादेव हिंसा

आपने आज के अखबार में ईडन का महावाक्य पढ़ा होगा। उन्होंने कहा कि "मॉरल फोर्स' (नैतिक शक्ति) काफी नहीं, 'फिजिकल फोर्स' (भौतिक शक्ति) की जरूरत होती है। अभी इंग्लैण्ड ने मिस्र पर हमला न किया होता, तो 'यू० एन० ओ०' को शान्ति-स्थापना में देर लगती।" वह पहले से दावा करता आया है और अभी भी करता है कि हमने जो कुछ किया, दुनिया में शान्ति की स्थापना के लिए ही किया है। यह तो आज के समाज का एक चिह्नमात्र है, किन्तु वह एक प्रकार का विचारक है। वह कोई साम्यवाद नहीं मानता और न यह मानता है कि सब लोगों की सत्ता हो। वह ऐसे उदार विचारवाला नहीं कि किसी भी प्रकार की मालकियत न हो, उदार विचारवाला तो वह ख़ुश्चेव है, पर वह भी यही कहता है कि हम हंगरी में जो कुछ कर रहे हैं, शांति-स्थापना के लिए ही कर रहे हैं और मिस्र के लिए भी हम वैसा ही करेंगे और करना होगा। उसका भी विश्वास और श्रद्धा हिंसा पर ही है।

सारांश, अभी तक जो सारा समाज बना, उसमें कोई दया या प्रेम नहीं था, ऐसी बात नहीं। उसमें दया, प्रेम वगैरह सब है, लेकिन वे सब रक्षक नहीं, रक्ष्य हैं। प्रेम, करुणा, सहयोग आदि सब छोटे-छोटे देवता हैं और महादेव है हिंसा, जिसके पास अपनी सारी शिकायतें पहुँचायी जाती हैं।

हिंसा की कर्तव्यरूप में मान्यता

हम चाहते हैं कि उस हिंसा-शक्ति का स्थान अहिंसा ले। अहिंसा को आज के समाज में भी स्थान है। घर-घर लोग एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, वह अहिंसा ही है, लेकिन उनकी पहुँच हिंसा तक ही है। लेकिन जब 'टोटल वॉर' (संकुल युद्ध) शुरू होगी, तब देश के कुल लोगों को सेना में भर्ती होना पड़ेगा। अमेरिका, रूस और इंग्लैंड की यही हालत है और जब तक हम उस परम देवता (हिंसा) को नहीं बदलते, तब तक हिन्दुस्तान में भी यही हालत रहेगी। आज आप पर कोई आपत्ति आयी नहीं, इसलिए आप शांत-से दीखते हैं, किन्तु मौका आने पर कुल लोगों को युद्ध के लिए प्रेरणा मिल सकती है। तब वही राष्ट्रीय कर्तव्य माना जायगा। आज जिस हालत में लोगों का मन है, उस हालत में वह कर्तव्य है भी।

१९१५-१६ की बात है, जब हम बड़ौदा कॉलेज में पढ़ते थे, महायुद्ध शुरू हुआ। फ्रान्स ने जाहिर किया था कि सभी लोग सेना में भर्ती हो जायँ। हमारे एक फ्रेंच प्रोफेसर थे, जो विज्ञान पढ़ाते थे। उन्हें वहाँ बहुत अच्छी तनख्वाह मिलती थी। लेकिन उन्होंने एक दिन हमसे इजाजत लेते हुए कहा कि "सेना में भर्ती हो जाओ, यह आदेश है, इसलिए मैं यहाँ पढ़ा नहीं सकता, मुझे वहाँ जाना ही होगा।" वे नौकरी छोड़कर सेना में चले गये। अगर न जाते, तो उन्हें कोई पकड़कर न ले जाता, लेकिन वे केवल कर्तव्य समझकर कॉलेज छोड़कर गये। मैंने यह मिसाल इसलिए दी कि हिंसा में पड़नेवाले बहुत-से लोग काफी श्रद्धा और कर्तव्य-भावना से उसमें पड़ते हैं।

हिंसा का स्थान अहिंसा को देना है

अब हम वह स्थान अहिंसा को देना चाहते हैं। आज तक जिस तरह दुनिया

के मसले हिंसा से हल करने की कोशिश की गयी, जितनी निष्ठा, जितनी सेवा और जितनी बुद्धि हिंसा में लगायी जाती थी, उतनी ही अब अहिंसा में लगानी होगी। जैसे हिंसा के औजार, तत्त्वज्ञान और व्यवस्था बनाने में लोगों ने अपना जीवन लगाया, वैसे ही अब हमें अहिंसा के औजार, तत्त्वज्ञान और व्यवस्था बनाने में अपना जीवन अर्पण करना होगा। इसके लिए अहिंसा के ही कूटनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, सैनिक, सेनापति और कारखानेवाले तैयार होने चाहिए। यह एक बिलकुल स्वतंत्र सृष्टि है।

आज तक जो दया और करुणा चली, वह बिलकुल छोटी-सी चीज है। हमें तो उस दया और करुणा पर ही दया आती है। क्योंकि वे ऐसे देवता हैं, जो हिंसा के सामने सिर झुका देते हैं। जिसने कभी किसीकी हिंसा नहीं की, ऐसा अत्यन्त दयालु व्यक्ति भी जब देश की आज्ञा होती है, तो हाथ में तलवार लेकर मारने दौड़ पड़ता है। उस आखिरी परमेश्वर का शब्द हम सबको प्रमाण है। माँ बच्चे को समझाने की कोशिश करती है, लेकिन वह नहीं समझता, तो आखिर में तमाचा ही लगाती है। याने उसका आखिरी देवता वह तमाचा है और उसी पर उसका अन्तिम विश्वास है। जहाँ प्रेम, समझाने की शक्ति और वक्तृत्व-शक्ति काम न दे, वहाँ वह परम देवता, वह लाठी काम देगी—यही आज की श्रद्धा है। इस श्रद्धा के बदले हमें अहिंसा की श्रद्धा निर्माण करनी है। इसके लिए खूब संशोधन करना पड़ेगा। ऐसा संशोधन करनेवालों को संस्था का बंधन न चलेगा।

सरकार हिंसा-देवता बदल नहीं सकती

क्या आज जो लोग सरकार में हैं, वे सेवा नहीं करते? कुछ लोग हमसे बार-बार पूछते हैं कि ग्रामदान में सरकार की मदद लेंगे, तो कितना ग्रामदान हासिल होगा? सरकार करोड़ों रुपये खर्च कर ग्रामदान के गाँवों को मदद कर सकती है, उसकी शक्ति की क्या कोई सीमा है? हम मानते हैं कि सरकार के जरिये बहुत सेवा हो सकती है, इसीलिए कुछ लोग सरकार में रहते हैं। किंतु सरकार उस देवता को बदल नहीं सकती। सरकारी कानून की बुनियाद ही यह

है कि उसके पीछे सेना की शक्ति रहना। हमें उसे बदलना है, तो सबको चिंतन करना होगा और वह चिंतन सब संस्थाओं से मुक्त हुए बिना हो नहीं सकता।

आइक और बुल्गानिन एक ही देवता के भक्त

हमारा काम इतना बुनियादी क्रान्ति का है कि उसमें साधन में भी क्रान्ति है और साध्य में भी। कम्युनिस्ट समझते हैं कि उनका ध्येय क्रान्तिकारी है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि उनका देवता वही है, जो पूँजीपतियों का है। जिस देवता का भक्त ईडन है, आइक है, उसी देवता का भक्त बुल्गानिन भी। इन भक्तों में आपस-आपस में टक्कर होती है, पर हैं सभी एक ही देवता के भक्त। इसलिए उनके पास क्रान्ति नहीं है। किंतु ग्रामदान, भूदान, संपत्ति-दान आदि बिलकुल ही क्रान्ति की बात है, पर लोग इसे समझते नहीं।

संपत्तिदान क्रांति है

अभी आपने सुना कि हमें सात लाख रुपयों का संपत्तिदान मिला, लेकिन बाबा के हाथ में एक पैसा भी नहीं आया। कुछ कार्यकर्ताओं के सामने यह सवाल है कि इतना सारा संपत्तिदान वसूल कैसे किया जायगा ? वे समझते ही नहीं कि वसूल करना हो, तो 'संपत्तिदान' ही खतम हो जाता है। फिर तो वह 'फंड' हो जायगा। संपत्तिदान में हमें कुछ नहीं करना है। उसका खर्च कौन करेगा, कैसे करेगा, इन सबकी चिंता संपत्तिदान देनेवाला ही करेगा। वह पूछेगा कि मेरे पास पैसा पड़ा है, तो मैं कहाँ खर्च करूँ। फिर भूदान-समिति कुछ सलाह देगी, जिसके अनुसार वह खर्च करेगा। अगर आपने ऐसा संपत्तिदान हासिल किया, जिसमें देनेवाले को यह सब चिंता न हो, तो संपत्तिदान ही हासिल नहीं किया। फिर आपके सात लाख रुपये के संपत्तिदान के दानपत्र बाबा एकदम फाड़ डालेगा और उसीसे बाबा का संपत्तिदान का क्रान्तिकारी कदम प्रकट होगा। संपत्तिदान वसूल करने से क्रान्ति नहीं होती। वसूल करना तो 'टैक्स-कलेक्टर' का काम है। ध्यान में रखिये कि करोड़ों रुपयों की संपत्ति इकट्ठा करने के लिए बाबा घूम नहीं रहा है। वह तो लोक-हृदय में परिवर्तन लाने के लिए घूम रहा है।

विचार से काम होता है

संपत्तिदान का विचार बहुत आसान है। देखिये, किसी ऋषि ने समाज

को समझा दिया कि कन्या को घर में रखना उचित नहीं। फिर लोग खुद होकर अपनी कन्या की शादी की चिन्ता करने लगे। उसके लिए छह-छह महीने घूमते, वर ढूँढ़ते और ४-६ हजार खर्च करते ही हैं। इसी तरह ग्रामदान के गाँवों की चिन्ता जमींदार दाता ही कर लेगा। पर वह आज इसीलिए ऐसा नहीं करता कि अभी पूरा विचार समझा नहीं है। किन्तु बाबा का यह काम नहीं कि उसका हाथ पकड़कर उससे काम करवाये। उसका इतना ही काम है कि विचार समझा दे। जब लोग समझेंगे कि अपने पास जमीन रखना अपने घर में कन्या रखने जैसा है, तब वे स्वयं जाकर वर ढूँढ़ लेंगे और उसे जमीन दे देंगे। तब तक लोगों को यह विचार समझाने के लिए जमीन प्राप्त करना, बाँटना आदि 'किंडर गार्टन' का प्रयोग चलता रहेगा। अगर बाबा दानपत्र हासिल न करता, समिति न बनाता, बँटवारा न करता, तो विचार हवा में उड़ जाता। इसलिए उसे मूर्त रूप देने के लिए यह प्रयोग चल रहा है। आज हम सम्पत्तिदान के कागज लिखवाकर अपने पास रखते हैं, लेकिन उसकी भी जरूरत नहीं। आज हम कागज इसीलिए रखते हैं कि काम का कुछ आरंभ हो। नहीं तो विचार कितना फैल रहा है, इसका पता ही नहीं चलेगा। यह नया विचार जितना फैलेगा, उतना ही यह काम चौड़ा होगा।

चिंतन-सर्वस्व का दान हो

हम एक बहुत ही गूढ़-शक्ति पर विश्वास रखकर काम कर रहे हैं। हम नहीं जानते कि वह शक्ति किस प्रकार काम करती है, लेकिन देखते हैं कि वह काम कर रही है। वही शक्ति हमसे काम करवा रही है, हमें घुमा रही है। अभी एक भाई ने बड़े शुद्ध हृदय से कहा कि हम इस काम के लिए हफ्ते में तीन दिन देंगे। उस पर दूसरे साथी ने कहा कि इसी तरह सबको अपना-अपना निश्चय करना चाहिए। मनुष्य विचार को समझे बगैर इस काम में अपने समय का अंश अर्पण नहीं कर सकता। 'जीवनदान' का अर्थ यह नहीं कि हफ्ते में से सातों दिन काम के लिए दें। आखिर मनुष्य सोता है, तो दिन के ७–८ घंटे उसमें चले ही जाते हैं। वैसे हिसाब लगाया जाय, तो हमारा आधा समय नींद आदि में

चला जाता है। लेकिन मनुष्य का जो चिंतन है, वह इस काम के लिए समर्पित होना चाहिए। फिर समय का तो अंश ही दिया जायगा। बाबा भूदान में अपनी पूरी ताकत लगाता है, लेकिन वह खाने-पीने नींद और बीमारी में भी समय बिताता है। फिर भी उसका हमेशा भूदान का ही चिंतन चलता है।

ग्रामदान ही देश को महायुद्ध से बचायेगा

जिसके ध्यान में यह आयेगा कि आज के ऊपर के परमेश्वर हिंसा को बदलना आवश्यक है, वह दूसरी बात कर ही नहीं सकता। आज हिन्दुस्तान में ज्यादा-से-ज्यादा बोलबाला 'पंचवर्षीय योजना' का है। हम जाहिर करना चाहते हैं कि कल अगर विश्वयुद्ध शुरू हो जाय, तो कुल पंचवर्षीय योजना खतम हो जायगी। बाहर की चीजें अन्दर आना और यहाँ की चीजें बाहर जाना बन्द हो जायगा। पदार्थों के भाव ऊपर चढ़ेंगे, असंख्य लोगों को तकलीफ होगी। उस हालत में पंचवर्षीय योजना की बात तो छोड़ ही दीजिये, लोगों को जिंदा रखना भी कठिन हो जायगा। लेकिन उस वक्त भी बाबा का भूदान, संपत्तिदान चलेगा। क्योंकि लड़ाई के साथ उसका कोई संबंध नहीं। बल्कि उस हालत में वह और जोरों से चलेगा। बाबा लोगों को समझायेगा कि चीजों के भाव बहुत बढ़ गये, क्योंकि वे तुम्हारे देश के हाथ में नहीं, विदेश के हाथ में हैं। लड़ाई शुरू हो गयी, इसलिए भाव चढ़ गये हैं। लेकिन तुम ग्रामोद्योग खड़े करोगे, अपनी जरूरत की चीजें गाँव में ही पैदा कर लोगे, तो भाव तुम्हारे ही हाथ में रहेंगे। यह ठीक है कि मिट्टी का तेल वगैरह के भाव तेज ही रहेंगे, पर अनाज, कपड़ा आदि के भाव तो आप अपने हाथ में रख ही सकते हैं। हम तो यह भी कहते हैं कि ऐसे महायुद्ध के समय हिन्दुस्तान ग्रामदान और ग्रामराज्य के बल पर ही टिक सकेगा।

भगवान् आइक-बुल्गानिन को सद्बुद्धि दें

हम यह भी कहना चाहते हैं कि आज की हालत में लड़ाई रोकना किसी भी शख्स के हाथ में नहीं, क्योंकि आज के कूटनीतिज्ञ एक समाज-रचना के अन्दर दाखिल हुए हैं। वे एक मशीन के पुर्जे हैं, वे मशीन की गति रोक नहीं सकते। वे

चिल्लाते रहते हैं कि लड़ाई न हो, शान्ति रहे, पर उनके हाथ में सिर्फ चिल्लाना ही है। कोई भी मूर्ख अपनी बीड़ी घास की गंजी पर फेंके, तो सारे गाँव को आग लग सकती है। इसी तरह किसी एक मूर्ख के मन में आये और वह किसी देश पर छोटा-सा आक्रमण कर बैठे, तो लड़ाई शुरू हो जायगी। किसी एक कूटनीतिज्ञ का दिमाग चिढ़ जाय, तो वह सारी दुनिया को आग लगा सकता है। आज का समाज ऐसा है कि हमने अपना भला-बुरा करने की शक्ति चंद लोगों के हाथ में दे रखी है।

अक्सर अपने लिए भगवान् से सद्बुद्धि देने की प्रार्थना करने का रिवाज है। लेकिन बाबा बहुत बार अपने लिए प्रार्थना नहीं करता। वह भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि "भगवन्! आइक को सद्बुद्धि दे, बुल्गानिन और ईडन को अक्ल दे।" क्योंकि वह जानता है कि भगवान् बाबा को बेवकूफ बनायेगा, तो वह दुनिया का नुकसान नहीं कर सकता। लेकिन अगर वह ईडन, आइक और बुल्गानिन को अक्ल न दे, तो दुनिया खतम हो जायगी। इसलिए बाबा ने कुल स्वार्थ छोड़ दिया और केवल परार्थबुद्धि से उन लोगों के लिए प्रार्थना करता है। वह इससे भी एक बुनियादी बात करता है, जो प्रार्थना है और प्रयत्न भी। प्रार्थना यह है कि "भगवन्, तू हमें ऐसी बुद्धि दे कि हम अपना कारोबार चंद लोगों के हाथ में न सौंपें।" और यही हमारा प्रयत्न है, जो भूदान, संपत्तिदान के जरिये चल रहा है। इसलिए बाबा का दावा है कि भूदान के जरिये विश्वशांति के लिए जितनी अच्छी कोशिश हो रही है, उससे अधिक कहीं होती है, यह वह नहीं जानता।

जनून चाहिए

हम आपको भूदान का बुनियादी विचार समझाते हैं, तो हमारा काम पूरा होता है। अभी हम और ४-५ महीने आपके प्रदेश में रहेंगे। लेकिन वैसे आप बाबा का मन अंदर से देखें, तो आपको दूसरी ही चीज दीखेगी। अगर यहाँ अहिंसात्मक क्रान्ति की कोई सूरत दीख पड़े, तो बाबा तमिलनाड छोड़ना ही न चाहेगा। बाबा का लोभ किसी एक प्रदेश, जिले या गाँव से नहीं, उसकी आसक्ति

उस हिंसा-देवता को हटाने की है। आपके रामस्वामी नायकर (द्रविड़-कलहम् के प्रमुख) कहते हैं कि मुझे यह मूर्ति तोड़नी है, जलानी है। इसी तरह बाबा की सारी लगन इसीमें है कि आज हिंसा-देवता को जहाँ खड़ा किया है, वहाँ से उसे हटाया जाय। हम आशा करते हैं कि इस तरह का जनून या पागल-पन आपमें भी आ जायगा।

धारापुरम् (कोयम्बतूर)
८-११-'५६

प्रलय का मार्कंडेय—ग्रामदान : २ :

विज्ञान का जमाना जोरों से आगे बढ़ रहा है। उसका अहिंसा के साथ बड़ा ही प्रेम का नाता है। विज्ञान के साथ अगर हिंसा चली, तो मानव-जाति का खातमा निश्चित है। इसलिए अगर हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब बढ़े, तो उसके साथ अहिंसा का संबंध जोड़ा जाय। अहिंसा तब तक ऊपर नहीं उठ सकती, जब तक लोगों के हाथ में सत्ता न आये। अधिकार किसीके देने से नहीं मिलता, वह तो योग्यतापूर्वक लिया जाता है।

इंग्लैंड में लोकशाही का नाटक

यह माना जायगा कि आज हिन्दुस्तान में 'जनता का राज्य' है। अमेरिका और इंग्लैण्ड में भी 'लोकशाही' चल रही है। इंग्लैण्ड की लोकशाही तो लोकशाही का एक परिपक्व नमूना माना जाता है, लेकिन इन १०-१५ दिनों में उसने फ्रान्स के साथ मिलकर मिस्र पर जो हमला किया, उसमें कुल दुनिया का लोकमत उसके विरुद्ध था। 'यू० एन० ओ०' की आवाज उसके खिलाफ थी और इंग्लैंड की पार्लियामेण्ट में भी जोरों से विरोध की आवाज निकली। आम जनता ने भी अच्छी तरह अपना विचार प्रकट किया। तब यह समझकर कि अब दुनिया की कुछ परिस्थिति बदल गयी है, इंग्लैंड ने अपना कदम वापस ले लिया। यह लोकशाही नहीं, उसका नाटक है।

वेलफेअर नहीं, इलफेअर

जहाँ सारी सत्ता केन्द्रित हो, वहाँ लोकशाही नहीं कही जा सकती। उसमें चंद लोग चुने जाते हैं, जिनके हाथों में सब कुछ रहता है। राजा-महाराजाओं के जमाने में भी कोई राजा अकेला राज्य न करता था, चंद लोगों के सलाह-मशविरे से ही वे राज्य करते थे। राजा के सरदार, मंत्री आदि होते थे। राजा और उसके दो-चार सलाहगार अच्छे होते, तो देश का राज्य अच्छा चलता, अन्यथा मामला ही खराब हो जाता था। आज भी वही हालत है, यद्यपि लोकशाही का नाटक चलता है। आज की यह परिस्थिति बदलने का एक ही उपाय है कि जगह-जगह लोगों के हाथ में लोगों का जीवन आये। आज 'वेलफेअर-स्टेट' (कल्याण-कारी राज्य) के नाम से बहुत-सी सत्ता केन्द्र के हाथ में रहती है। चाहे उसके कारण जनता को कुछ सुख प्राप्त होता हो, फिर भी हम उसे 'वेलफेअर' नहीं, 'इलफेअर' ही कहेंगे। चंद लोगों के हाथ में सत्ता रखना कोई 'वेलफेअर' नहीं। इसलिए अहिंसा का विचार तभी चलेगा, जब सत्ता गाँव-गाँव में बँटेगी। इसके लिए क्या ग्राम-ग्राम को अधिकार दिया जाय? नहीं, मैं पीछे कह ही आया हूँ कि अधिकार देने से नहीं मिलता, लेना पड़ता है। ग्रामवालों के हाथ में अधिकार तभी आयेगा, जब उनमें अपने गाँव का कारोबार चलाने की सूझ आयेगी। हम समझते हैं कि इस दिशा में सर्वोत्तम कदम अगर कोई हो सकता है, तो ग्रामदान ही है।

ग्रामदानी गाँव की कहानी

यहाँ नजदीक ही एक गाँव ग्रामदान में मिला है। उसका नाम हम नहीं भूल सकते और आप भी नहीं भूल सकते। क्योंकि उसका नाम है, 'मरावापालेयम्' (अर्थात् जिसे कोई नहीं भूल सकता)। ३-४ दिन पहले उस गाँव के कुछ लोग हमसे मिलने आये। हमने उनके साथ कुछ बातचीत की। लेकिन वहाँ की बहनों ने भी कहा कि 'हम बाबा से मिलना चाहती हैं।' वे आज हमसे मिलने आयीं। हमने उनसे पूछा कि "क्या ग्रामदान से आपको समाधान है?" उन्होंने कहा : "रोम्ब संतोषम्" (बहुत संतोष है)। अक्सर मालकियत छोड़ने

की बात बहनों को एकदम समझ में नहीं आती, उन्हें इस्टेट आदि का अधिकार नहीं होता, इसलिए उसका ज्यादा महत्त्व मालूम होता है। सिवा उन्हें संसार आदि का ज्यादा चिंतन करना पड़ता है। अगर माताओं को बच्चों की चिंता न हो, तो किसे होगी? इसलिए जब उन बहनों ने कहा कि हमें संतोष है, तो मुझे सचमुच में संतोष हुआ।

उस गाँव के लोगों ने यह भी निश्चय किया है कि हम गाँव में बना कपड़ा ही पहनेंगे। वहाँ चरखे शुरू हुए हैं। जब हमने उन बहनों से पूछा कि "आपका कुल कपड़ा गाँव में बनने में कितना समय लगेगा?" उन्होंने कहा: "हमें सोच-विचारकर जवाब देना होगा, उस पर अमल करना होगा, इसलिए हम मिथ्या जवाब नहीं दे सकतीं।" यह सुनकर हमें विशेष आनन्द हुआ। फिर हमने उनसे पूछा कि "सोचकर जवाब दीजिये", तो उन्होंने कहा: "छह महीने समय लगेगा।" यह हमें बड़ा ही सुन्दर लगा। इस तरह गाँव की बहनें अगर जाग्रत हो जायँ, तो आप देखेंगे कि गाँव पर ऊपर की सुलतानी नहीं चल पायेगी।

महायुद्ध में पंचवर्षीय योजना नहीं टिकेगी

आज दुनिया में महायुद्ध कब छिड़ेगा, कोई नहीं कह सकता। कूटनीतिज्ञ नाड़ी पर हाथ रखकर कहते हैं कि अब बुखार नहीं है, पर किसी भी समय घोषित कर सकते हैं कि बुखार १०५ डिग्री हुआ और बीमार को कल रात बड़ी बेचैनी मालूम हुई। कोई नहीं कह सकता कि उसका नतीजा क्या होगा। उस हालत में चाहे हिन्दुस्तान लड़ाई में शामिल न हो, तो भी गाँव-गाँव के लोगों को तकलीफ अवश्य होगी। चीजों के दाम बढ़ जायँगे, चीजें बाहर से अंदर आना और अंदर से बाहर जाना कठिन हो जायगा। पंचवर्षीय योजना नीचे गिर जायगी। लेकिन जिस गाँव में ग्रामदान हुआ होगा और जहाँ के लोग अपनी चीजें खुद बनाते होंगे, वहाँ लड़ाई का कम-से-कम असर होगा। वे अपने गाँव का दूध पीयेंगे, गाँव का अनाज, फल, तरकारी खायेंगे। गाँव में कपास बोयेंगे और गाँव में ही कपड़ा बनायेंगे। गुड़, तेल आदि जीवन की मुख्य आवश्यकताएँ गाँव में ही पैदा कर लेंगे। हाँ, केरोसिन के दाम बढ़ जायँगे,

इसलिए थोड़ी-बहुत तकलीफ हो, पर वह कम होगी। हम कहना चाहते हैं कि जैसे प्रलयकाल में मार्कण्डेय ऋषि अकेला तैरता था, उसी तरह ग्रामदान के गाँव ही महाप्रलय में तैरेंगे। उसका ग्रामदान, भूदान आदि कार्यक्रम पर कोई असर न होगा। यह एक अहिंसा का प्रयोग है। चारों ओर घना अंधकार फैला हो और एक छोटा-सा दीपक जलाया जाय, तो भी कुल अँधेरा उस दीपक पर हमला नहीं कर सकता; क्योंकि दीपक स्वयं प्रकाश है।

तमिलनाड़ ग्रामदान के अनुकूल

ग्रामदान की कल्पना जिस गाँव को मान्य होगी, वहाँ ज्ञान का दीपक जलने लगेगा। हम अपने अनुभव से कहते हैं कि ग्रामदान के लिए तमिलनाड़ के लोगों का स्वभाव ही अनुकूल है। कुछ लोगों का खयाल है कि तमिलनाड़ के लोग ज्यादा बुद्धिमान् हैं, सोचनेवाले हैं, इसलिए ग्रामदान के लिए यहाँ अनुकूलता कम है। याने उनके कहने का तात्पर्य है कि बाबा का कार्यक्रम मूर्खों के लिए अनुकूल है। पर हम कहना चाहते हैं कि बात इससे उल्टी है। मूर्ख को समझाना आसान है, पर ज्ञानी को समझाना उससे भी अधिक सुखकर है। किंतु जो मनुष्य थोड़े ज्ञान से दग्ध हुआ हो, उसे ही समझाना कठिन है।

'अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रञ्जयति ॥'

हमारा अनुभव है कि तमिलनाड़ के लोग ऐसे अर्धदग्धों में से नहीं, वे उत्तम सोचनेवाले हैं। इसलिए ग्रामदान का कार्य उनके लिए बहुत अनुकूल है। आज ही 'मरावापालेयम्' के लोगों ने हमसे कहा है कि "हम दो साल से इस पर विचार करते थे और सोच-विचार करके काम किया है।"

धारापुरम् (कोयम्बतूर)
११-११-'५६

अन्तःशुद्धि और बाह्य-योजना

: ३ :

आज सुबह हमारे स्वागत के लिए एक दीपक रखा था। लेकिन हवा चल रही थी, इसलिए वह टिक नहीं पाता था। आखिर बुझ ही गया।

ज्ञानज्योति स्नेह और वात-शान्ति पर ही निर्भर

यह सारा स्वागत-साहित्य, पूजा की प्रक्रिया ध्यान के लिए होती है। वहाँ पर न दीपक की जरूरत है, न पत्ते की, न फूल की, न फल की और न पानी की ही। हरएक वस्तु के पीछे चिंतन होता है। वह दीपक नहीं टिका, तो उससे भी हमारे चिंतन को मदद मिली। अगर वह जलता रहता, तो भी हमें चिंतन के लिए मदद मिलती। बात यह है कि जब आसपास की हवा शांत हो, तभी दीपक शांत जलता है। अगर हवा प्रतिकूल रही, जोरों से बहे, तो दीपक नहीं टिकता। हवा शांत हो, पर दीपक में तेल ही कम पड़ा हो, तो भी वह नहीं टिकता। जैसे दीपक के अन्दर तेल की जरूरत होती है, वैसे ही मनुष्य के अंदर भी भक्ति-भावना चाहिए। जैसे दीपक जलने के लिए बाहर हवा शांत होनी चाहिए, वैसे समाज की रचना भी शांतिमय होनी चाहिए। मनुष्य के हृदय भक्तिरूपी स्नेह से भरे हों और समाज की रचना शांति की बुनियाद पर हो, तभी ज्ञानप्रकाश फैलता है। फिर व्यक्ति और समाज का सारा जीवन ज्योतिर्मय बन जाता है।

दोहरा प्रयत्न

आज उस दीपक में तेल तो था, लेकिन हवा बहती थी, उसका कुछ इंत-जाम न कर सके। भारत में बहुत सारा प्रयत्न इसी प्रकार का हुआ। मनुष्य के हृदय में भक्ति बनी रहे, इसकी तो हमने कोशिश की। समाज की रचना अच्छी बने, इस बारे में भी कुछ प्रयत्न किये, पर हमें पूरा यश नहीं मिला। फिर भी हम मान सकते हैं कि दूसरे देशों की तुलना में हिन्दुस्तान में इसके लिए विशेष प्रयत्न किया गया। यहाँ संत पुरुष हुए और उन्होंने लोगों को अंतर्दृष्टि की ओर

आकृष्ट किया। इस तरह दूसरे देशों की तुलना में इससे हमें कुछ समाधान के कारण हैं। फिर भी वे प्रयत्न काफी प्रामाणिक होने पर भी उनमें हमने आखिर हार ही खायी। आज की हालत में तो हमारे हृदय में भक्ति का झरना भी बहुत-सा सूख गया है। परिस्थिति के खिलाफ वह भक्ति-भाव टिक न सका। समाज-रचना भी बहुत-कुछ बिगड़ गयी। इसलिए नैतिक दृष्टि से आज की अपनी हालत सोचें, तो बहुत ही असमाधानकारक दीखेगी। आज हमें कोशिश करनी होगी कि हमारा दिल भक्तिरूपी स्नेह से भरा रहे। उसके बिना ज्योति प्रकट न होगी। समाज-रचना शांतिमय बने, इसलिए भी कोशिश करनी होगी। उसके बिना भी ज्योति न टिकेगी। तेल के बिना ज्योति बनती नहीं और शांत हवा के बिना वह टिकती नहीं, इसलिए हमें यह दुहरा प्रयत्न करना होगा—हमें समाज और व्यक्ति, दोनों का जीवन अच्छा बनाना होगा।

यूरोप ने अंतर की ओर ध्यान ही नहीं दिया

यूरोप के लोगों ने समाज-रचना का बहुत-सा प्रयत्न किया, किन्तु हिन्दुस्तान के प्रयत्न की तुलना में वह कम ही है। क्योंकि हिन्दुस्तान बहुत पुरातन देश है और यहाँ प्राचीन काल से समाज-रचना की कोशिश की गयी है। क्षत्रिय-वर्ग के अलावा और कोई शस्त्र न उठाये, यह योजना भी हमने की। कुछ लोग सतत ज्ञान अर्जन करने में और देने में लगे रहें, यह भी कोशिश हमने की। मनुष्य-जीवन में चार आश्रमों की योजना होनी चाहिए, यह भी हमने ही कहा। हमने खेती में अहिंसा का उपयोग किया। हिन्दुस्तान की खेती का इतिहास 'अहिंसा का इतिहास' है। ये सारी कोशिशें हमने कीं। उस हिसाब से यूरोप की कोशिशें कम ही पड़ती हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि मानव-हृदय बनाने की जितनी कोशिश यूरोप ने की, उससे ज्यादा ध्यान समाज-रचना बनाने में दिया। किंतु वहाँ किसी प्रकार शांति नहीं रह पायी, समाधान नहीं हो रहा है। हमें तो यूरोप और अमेरिका की हालत बहुत ही भयानक दीखती है। वहाँ का सारा जीवन अत्यंत खतरे में है। क्योंकि उनका अंतर की तरफ उतना ध्यान नहीं गया। भारत और यूरोप, दोनों के अनुभव से हमें एक ही सत्य का दर्शन होता

है कि अंतःशुद्धि और बाहर की रचना, दोनों पर पूरा ध्यान देना चाहिए। सर्वोदय में हमारी यह भी कोशिश है।

हृदय-शुद्धि के आधार पर समाज-रचना

समाज में ऊँच-नीच-भेद खूब हैं। कुछ लोगों को ज्यादा पैसे मिलते हैं, तो कुछ को कम। यह भेद दुनियाभर में है। यह बाहर की योजना से ही न मिटेगा और उसके बिना भी न मिटेगा। साथ ही वह अंतःशुद्धि के बिना भी न मिटेगा। अंतःशुद्धि के साथ बाहर की भी योजना करनी पड़ेगी, तभी वह मिट पायेगा। गाँव के लोग खुद ही ग्रामदान के लिए तैयार हुए, यह हृदय-शुद्धि का एक बड़ा भारी कार्य हो गया। ग्रामदान का आधार लेकर ही ग्राम-रचना और ग्राम-निर्माण की योजना करनी पड़ती है। समाज का जीवन सामूहिक बनाना हो, तो यह सारा करना ही पड़ता है। अपने घर की शादी की चिंता घरवाले नहीं, सब गाँववाले करें। अपने खेत में क्या बोना है, यह हर मनुष्य अलग-अलग नहीं, सब मिलकर सोचें। अलग-अलग लोग बाजार से खरीदते और ठगे जाते हैं, ऐसा न हो। सब मिलकर गाँव की एक दूकान बनायें। गाँव में झगड़ा हो जाय, तो हाईकोर्ट में न जायँ, गाँव के झगड़े का गाँव में ही फैसला हो। गाँव के धंधे सब मिलकर गाँव में ही करें—इस तरह ग्राम-रचना और ग्राम-निर्माण की योजना करनी पड़ती है। किंतु हृदय-शुद्धि के आधार के बिना ये चीजें टिक नहीं पातीं। जब मनुष्य गाँव के लिए स्वयं अपनी जमीन का दान दे देता है, तो उसकी हृदय-शुद्धि हो जाती है और फिर उसीके आधार पर हम समाज-रचना का काम कर सकते हैं। यही सर्वोदय की दृष्टि है।

जबर्दस्ती से सुधार नहीं हो सकता

लोग कहते हैं कि "हृदय-शुद्धि होकर लोग स्वयमेव दान दें, यह हर गाँव में नहीं हो सकता।" पर क्यों नहीं हो सकता? हर गाँव में एकदम न होगा, यह हम समझ सकते हैं। लेकिन कुछ गाँवों ने शुरुआत की, वहाँ के लोग सुखी हुए, तो वह देखकर दूसरे गाँववाले क्यों न करेंगे? क्या लोग मूर्ख हैं? एक ने शुरुआत में मूँगफली बोयी, उससे लाभ हुआ, तो दूसरे लोगों ने भी बोना शुरू किया। अब तो गाँव-गाँव के लोग बोते हैं। इसी तरह यह भी फैलेगा।

किंतु इसके बदले में जबर्दस्ती से सबकी जमीन एक .कर दें, तो लोगों में प्रेम न बढ़ेगा, झगड़े बने रहेंगे और लोगों की बुद्धि का लाभ न मिलेगा। जहाँ बुद्धि का लाभ और प्रेम न हो, वहाँ जमीन इकट्ठी करके भी क्या मिलेगा ? इसलिए सब गाँवों में जबर्दस्ती ग्रामदान का कानून बना दें, यह नहीं हो सकता और होने पर भी वह लाभदायी नहीं हो सकता। रूस के विचार का अनुभव ही बताता है कि जबर्दस्ती से सुधार करने पर मनुष्य वहीं-का-वहीं रह जाता है। इसलिए सर्वोदय-विचार मनुष्य-शुद्धि की तरफ ध्यान देने के साथ ही उसकी समाज-रचना की ओर भी ध्यान देता है। हृदय में शुद्ध भक्तिभाव का स्नेह भरा हो, समाज-रचना शांतिमय हो, कुल वातावरण शांत हो। बाहर शांतिमय रचना और अंदर भक्तिमय हृदय! दोनों मिलकर जीवन बनता है। हम समझते हैं कि ऐसा दुहरा प्रयत्न करने के लिए भारत का स्वभाव ज्यादा अनुकूल है।

विज्ञान चंद लोगों के हाथ में न रहे

मैंने कहा कि अंतःशुद्धि के लिए भारत में काफी प्रयत्न किये गये, फिर भी वे कम पड़े। भारत में दोनों प्रयत्न हुए, आंतरिक शुद्धि पर ज्यादा हुए और वह उचित ही है। बाहर के लिए भी प्रयत्न किये गये, पर वे अपूर्ण सिद्ध हुए। विज्ञान के जमाने में जो प्रयोग हुए, उनके मुकाबले में वे टिक न सके। हमें फिर से इन्हें करना है। हम समझते हैं कि दोहरे प्रयत्न के लिए भारत का वातावरण अब अनुकूल हुआ है। भारत में आत्मज्ञान की परंपरा है ही, विज्ञान का भी पूरा-पूरा लाभ हम सर्वोदय-विचार में लेते हैं। सर्वोदय से बढ़कर विज्ञान के लिए अनुकूल कोई विचार नहीं। क्योंकि बिना सर्वोदय के विज्ञान बढ़ता चला जाय, तो वह व्यक्ति को महत्त्व देता जायगा और उसके जरिये समाज को खतम कर देगा या स्वार्थी लोगों, स्वार्थी गुटों के हाथ में सत्ता रह जायगी। विज्ञान का विस्तार पूँजीपतियों ने बहुत किया, लेकिन उससे लाभ नहीं हुआ, झगड़े ही बढ़े। पर यह विज्ञान का दोष नहीं, विज्ञान चंद लोगों के हाथ में रहे, इसीका दोष है।

विज्ञान के लिए सर्वोदय प्राण-वायु

कहते हैं कि अंग्रेजी के बिना विज्ञान न चलेगा। पर विज्ञान तो श्वासोच्छ्वास के समान मनुष्य के लिए जरूरी है। कल अगर हम कहें कि बच्चे को अंग्रेजी आये बिना बच्चे को माँ का दूध पिलाने की योजना न होगी, तो हिन्दुस्तान में कौन बच्चा जिन्दा रहेगा? जैसे बच्चे को दूध मातृभाषा के साथ पिलाया जाता है, वैसे ही मातृभाषा के साथ विज्ञान सिखाया जायगा, तभी वह बढ़ेगा। इसी कारण हिन्दुस्तान की आम जनता में विज्ञान फैलने में देर हो रही है।

किन्तु लोगों की भाषा में विज्ञान आ जाने से ही वह फैल जायगा, ऐसा भी नहीं। विज्ञान लोक-जीवन के लिए होना चाहिए। आम लोगों के जीवन के लिए जिस चीज की शोध जरूरी है, वैज्ञानिकों को उसीमें लगना चाहिए। हिन्दुस्तान में इतना मलेरिया है, कैसे हटेगा? इस पर विज्ञान जोर लगाये। भारतीयों के उत्पादन के औजार बिलकुल कमजोर हैं, इसलिए छोटे-छोटे औजार अच्छे बनाये जायँ। आज तो विज्ञान छोटे-छोटे औजारों की तरफ देखता ही नहीं। बड़ी-बड़ी मशीनें बनतीं और फिर वे चन्द लोगों के हाथ में आ जाती हैं। इस तरह जब विज्ञान की दृष्टि सर्वोदय के साथ जुड़ जायगी, तभी वह समर्थ होगा। इसलिए विज्ञान के लिए सर्वोदय ही प्राण-वायु है।

प्राचीन संस्कृति का हृदय, आधुनिक विज्ञान की बुद्धि

हमसे लोग पूछते हैं कि "आपके ग्रामदान में तो बिलकुल पुराने औजार चलेंगे?" हम कहते हैं, ग्रामदान में पुराने औजार क्यों चलेंगे? क्या ग्रामदान कोई पुरानी चीज है? वह तो बिलकुल आधुनिक विज्ञान के जमाने का उत्तम अर्थशास्त्र माना जायगा। ग्रामदान निकलने के बाद विज्ञान का घमंड करनेवाले सारे अर्थशास्त्र चुप हो गये। अब वे बाबा के खिलाफ कुछ भी नहीं बोलते। पहले कहते थे कि आध्यात्मिक और नैतिक-दृष्टि से भूदान ठीक है। पर जब से ग्रामदान हाथ में आया, तब से कहने लगे हैं कि "हाँ भाई, यह सर्वोत्तम और आधुनिकतम अर्थशास्त्र है।" उसके साथ नये-नये औजार जुड़ जायँगे, इसलिए ग्रामराज्य के गाँव पुराने जमाने के गाँव न रहेंगे। उनके साथ पुराने जमाने का

आध्यात्मिक ज्ञान और आज के जमाने का विज्ञान होगा। हमारा हृदय प्राचीन संस्कृति का बना रहेगा और हमारी बुद्धि आधुनिक विज्ञान से भरी। इस तरह दोनों का योग कर सर्वोदय-योजना ग्रामदान के गाँव में चलेगी।

कन्दपनकोण्डवलयुर
१४-११-'५६

हिंदू-धर्म की ईश्वर-दृष्टि : ४ :

आज हम ऐसे स्थान में आये हैं, जहाँ से आसपास के सब लोगों को भक्ति की प्रेरणा मिली है। हमने दावा तो यही किया है कि जिस काम में लगे हैं, वह भक्ति-मार्ग के प्रचार का कार्य है। इसीलिए हम जब ऐसे स्थानों में आते हैं कि जहाँ से लोगों को भक्ति की प्रेरणा मिली हो, वहाँ हमारे चित्त में भी विशेष उत्साह निर्माण होता है।

ईश्वर एक ही है

हिन्दू-धर्म में परमेश्वर के विषय में जितना गहरा और सर्वांगीण विचार हुआ है, शायद उतना किसी और दर्शन और धर्म में नहीं हुआ होगा। परमेश्वर एक ही हो सकता है और एक ही है, इस विषय में सब धर्मों का एकमत है। वैसे हिन्दू-धर्म का भी यही मत है। किन्तु हिन्दू-धर्म में इस विषय में आग्रह की वृत्ति नहीं है, क्योंकि ईश्वर शब्दशक्ति के परे है, ऐसा वर्णन किया ही है। 'शोल्लुक कडंगावे पराशक्ति' शब्दों की ताकत में तुम नहीं आ सकते। भगवान् चिंतन की शक्ति से भी परे है। इसलिए समझने के लिए शब्दों का कुछ इस्तेमाल करते हैं और अपने चित्त की शुद्धि के लिए कुछ चिंतन भी करते हैं। अपने चिंतन से हम परमेश्वर का उत्तम वर्णन और ग्रहण कर सकते हैं, ऐसा नहीं मानते हैं, फिर भी उससे हमारे चित्त की शुद्धि होती है, यही हमें लाभ होता है।

हिन्दू-धर्म में ईश्वर का विविध रूप में चिंतन है। इससे कभी-कभी यह भ्रम होता है कि शायद हिन्दू लोग अनेक देवी-देवताओं में मानते हैं। वस्तुस्थिति वैसी

नहीं है। परमेश्वर की एकता अत्यंत अद्वितीय है। याने उसकी अद्वितीयता में दूसरी कोई चीज सहन ही नहीं हो सकती, यह हिन्दू-धर्म जानता है और उसने कहा भी है : 'एकमेवाद्वितीयम्' ईश्वर एक ही है, दूसरा नहीं है, ऐसा उपनिषद् का शब्द है। 'भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' सारी सृष्टि का पति एक ही है। वह ऐसा परमेश्वर है, जो सब शब्दों से परे है।

चिंतन के लिए विविध रूप

इसलिए हिन्दू-धर्म में अनेक ईश्वर का विचार नहीं है। किंतु चिंतन के लिए एक ही ईश्वर की अनेक विभूतियाँ होती हैं। वे परमेश्वर को करुणा के रूप में देखते हैं। कोई डरनेवाला जीव है, तो उसके लिए निर्भयता के रूप में ही परमेश्वर का चिंतन है। इस तरह हरएक की आवश्यकता के अनुसार चिंतनीय परमेश्वर का रूप बदलता है। परमेश्वर ने हमें पैदा किया, यह भी सत्य है और हम उसे पैदा करते हैं, यह भी सत्य है। जिस परमेश्वर का हम ग्रहण करते हैं, हमारे लिए वही पूर्णावतार है। पर वह परिपूर्ण परमात्मा का एक विभूति-मात्र, अंशमात्र होता है। विद्या-प्राप्ति में लगे मनुष्य के लिए भगवान् का रूप सरस्वती है। दुर्बल मनुष्य के लिए, जो शरीर-शक्ति और मानसिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है, ईश्वर शक्तिरूप हो जाता है। फिर इन सब गुणों को अलग-अलग नाम दिये जाते हैं और उस-उस नाम से भिन्न देवता की कल्पना की जाती है। फिर कोई 'कुमार' बनता है, कोई 'विष्णु' भगवान् और कोई 'शिव' बनता है, तो कोई देवी। इस तरह कल्पना से परमेश्वर के अनेकविध रूप बनते हैं। उनमें से जो एक कल्पना करते और वे उसमें परिपूर्ण ईश्वर का ध्यान करते हैं, यद्यपि वह ईश्वर का एक अंश, एकमात्र विभूतिरूप होता है। फिर भी उस भक्त के लिए वह पूर्ण होता है।

हिंदू-धर्म की समन्वय-दृष्टि

हमारा गाँव सारे विश्व का एक अंश है, लेकिन ग्रामसेवक के लिए वह परिपूर्ण वस्तु है। उस एक गाँव की सेवा में वह सारी दुनिया की सेवा कर सकता है। सारी दुनिया में ज्ञान और सेवा के जितने विषय होते हैं, कुल-के-कुल एक

गाँव की सेवा में हो सकते हैं। भगवान् शिव परमेश्वर का एक अंश है। इसी तरह विष्णु, मुरगन (तमिल भाषा में कार्तिकेय का नाम) आदि परमात्मा के एक-एक अंश हैं। फिर भी विष्णु का उपासक विष्णु को एक अंश नहीं मानता, उसमें परिपूर्ण की ही कल्पना करता है। शिव का उपासक शिव को एक अंश नहीं मानता, वह उसमें परिपूर्ण की ही कल्पना करता है। विष्णु का उपासक वर्णन करता है कि "हमारे विष्णु भगवान् का परिपूर्ण ज्ञान तो शिव को भी नहीं हुआ।" शिव का उपासक कहता है कि "शिव भगवान् का परिपूर्ण ज्ञान भगवान् विष्णु को भी नहीं।" इसमें कोई विरोध या झगड़े की बात नहीं। जो जिस रूप में ईश्वर की उपासना करता है, उस रूप में वह परिपूर्णता का आधार मान लेता है। वह ईश्वर के दूसरे रूप का निषेध नहीं करता, लेकिन अपने ध्यान के लिए एक ही रूप कबूल करता है। इस तरह एक ही हिन्दू-धर्म में अनेकविध उपासनाएँ चलती हैं, लेकिन ये सारी उपासनाएँ अनेक देवताओं की नहीं, एक ही देवता की मानी गयी हैं। वे उसमें से एक अंश को परिपूर्ण समझकर उपासना करते हैं, तो कभी-कभी ईश्वर के अनेक अंशों का योग भी करते हैं। कभी-कभी वे पंचायतन-पूजा भी करते हैं; शंकर, विष्णु, गणपति, शक्ति, सूर्य आदि की पंचभक्ति करते हैं। फिर भी वे पचायतन को पाँच परमेश्वर नहीं, एक ही परमेश्वर मानते हैं। लेकिन उनकी पाँच विभूतियों का एकत्र ध्यान करना चाहते हैं।

ऐसा हर कोई कर सकता है। मनुष्य सुबह उठकर वेदों का अध्ययन करता है, उस वक्त वह ईश्वर को सरस्वती के रूप में देखता है। वही शख्स खेत में काम करने के लिए जायगा, तो उस वक्त ईश्वर को लक्ष्मी के रूप में ध्यान करेगा। फिर घर में आकर बच्चों की सेवा करता है, तो ईश्वर की मातृरूप (देवीरूप) में उपासना करता है। इस तरह जैसे एक ही मनुष्य शरीर के बल के लिए काम करता है, बुद्धि बढ़ाने के लिए काम करता है, लक्ष्मी बढ़ाने के लिए काम करता है—अनेक उद्योग करता है, वैसे एक ही मनुष्य अनेक गुणों की उपासना कर सकता है। एक ही विद्यार्थी अखाड़े में जाकर दंड-बैठक कर बल की उपासना करे और शाला में जाकर विद्या की उपासना करे, तो उसे हम यह

नहीं कह सकते कि दो-दो उपासना क्यों करता है, क्योंकि मनुष्यों को दोनों की जरूरत है। इसलिए दो-दो, चार-चार विभूतियों का भी एकत्र चिंतन, ध्यान और उपासना हो सकती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं करना चाहिए कि वह शख्स दो-चार परमेश्वर को मानता है।

कई लोगों को हिन्दू-धर्म के बारे में ठीक खयाल नहीं होता। वे समझते हैं कि हिन्दू-धर्म में देवताओं का बाजार भरा है। किन्तु यह देवताओं का बाजार नहीं, यह तो ईश्वर के अनेकविध गुणों और विभूतियों का संग्रह करने की वृत्ति है। इसलिए वेद ने कहा था कि 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति।' सत्य एक ही है, लेकिन उपासक एक ही सत्य की अनेक प्रकार से उपासना करते हैं। इस तरह दूसरे धर्मवाले भी सोचेंगे, तो उनके ध्यान में आयेगा कि इसमें कोई विरोध नहीं है।

षण्मुखम् : समाज-देवता

आपका यह पलनी-स्वामी (कार्तिकेय) क्या है ? वह आम जनता का देव है। परमेश्वर का एक अंश जनता के रूप में प्रकट हुआ है। उसीका यह देव है। आप देखते हैं कि उसके छह सिर हैं। छह सिरों की यह कल्पना एक विशेष ही कल्पना है। हरएक परिवार में साधारणतः पाँच मनुष्य होते हैं। प्रत्येक कुटुम्ब याने एक पंचायतन। कुल हिन्दुस्तान में छोटे-बड़े कुटुम्ब हैं। परंतु अक्सर हर घर में पाँच मनुष्यों का संग्रह होता है। वे पाँच एक विचार से काम करते हैं, तब कुटुम्ब में प्रेम रहता और उसकी उन्नति होती है। पाँच मनुष्य के पाँच सिर हों, लेकिन सबका हृदय एक होना चाहिए। इसलिए कुटुम्ब के देवता का अगर चित्र खड़ा करना होगा, तो उसे पाँच सिर होंगे, लेकिन हृदय में भावना एक ही होगी। इसलिए आपका यह देव कुटुंब-देवता नहीं है, वह षण्मुखम् है। वह तो समाज का देवता है। अपने कुटुंब में पाँच तो हैं ही, लेकिन अपने समाज का एक प्रतिनिधि छठा मान लिया और यह छठा मिलकर समाज-देवता बन गया।

छठा हिस्सा दान क्यों ?

हम कुल कुटुम्बों से छठा हिस्सा दान चाहते हैं, फिर वह गरीब हो, अमीर या

मध्यम-वर्ग का हो। जितने परिवार हैं, उतने दानपत्र हमें चाहिये। मान लीजिये कि हम हरएक से कुल-का-कुल लें, हिन्दुस्तान के कुल कुटुम्ब अपना सब कुछ दान में दे दें, तो इतना सारा लेकर हम क्या करेंगे? उतना हम किन्हें देंगे? एक हिस्सा रखकर ⅚ हिस्सा उन्हीं कुटुम्बों को हमें वापस करना होगा। बचा हुआ वह एक हिस्सा हम समाज के दुःखी लोगों के लिए दे देंगे। इस प्रकार के दुःखी और अनाथ लोग दुनियाभर में होते हैं और होंगे। दुनिया में सुख और दुःख, दोनों होते हैं। कितना भी साम्ययोगी समाज बने, फिर भी हरएक की शक्ति और बुद्धि बिलकुल समान नहीं बनी रहेगी। इसलिए बल और ज्ञान-शक्ति में कमजोर, दुःखी लोगों के रक्षण की जिम्मेवारी दूसरे पर जरूर आयेगी। अतएव पाँच मनुष्यों के परिवार में एक मनुष्य के लिए हम दान माँगेंगे। इसीलिए हम छठा हिस्सा माँगते हैं।

वही बात आपका पलनी-स्वामी कह रहा है। वह जनता का देव है। वह छह सिरों में सारी जनता को इकट्ठा करता है। जैसे उनके सारे सिर एक साथ जुड़े हैं, वैसे सारा ही समाज एक साथ जुड़ा रहना चाहिए। जैसे आपके ये 'आरुमुखम् आंडवन्' (षण्मुखी भगवान्) छहों मुखों से एक ही तरफ देखते हैं, वैसे ही सब मिलकर एक ही विचार करने पर समाज आगे बढ़ता है। इसीलिए हमने आशा की थी कि पलनी आंडवन् (कार्तिकेय) की कृपा से यहाँ खूब ग्राम-दान होना चाहिए। ग्रामदान याने व्यक्तिगत तौर पर अपना कुछ भी नहीं रखना और सारा समाज को दे देना। समाज में हम तो आ ही जाते हैं। हम समाज की फिक्र करें, तो समाज हमारी फिक्र करेगा। नदियाँ अपना कुल पानी समुद्र को दे देती हैं और समुद्र नदियों को भर देता है—समुद्र के पानी की भाप बनती, उससे बारिश होती और उससे नदियाँ भर जाती हैं। जैसे नदियाँ अपने में पानी रखने की चिंता नहीं करतीं, समुद्र को ही भरने की चिंता करती हैं, वैसे ही व्यक्ति को भी अपनी कुछ भी चिन्ता न कर सब कुछ समाज को अर्पण कर देना चाहिए। समाज की हरएक व्यक्ति को चिंता होनी चाहिए। इसका नाम है, भगवत्-अर्पण या 'कृष्णार्पण'। हम भगवान् को अपना सब कुछ अर्पण करें और फिर भगवान् हमें जो कुछ दे, उसका हिस्सा प्रसाद के तौर पर ग्रहण करें।

ग्रामदान का गाँव तीर्थ-क्षेत्र बनेगा

हमने कहा कि यह भक्ति-मार्ग है, क्योंकि इसमें हम अपना सारा जीवन समाज को अर्पण कर, समाज की तरफ से जो कुछ मिले, उसे प्रसादरूप मानकर सेवन करते हैं। हमारा कुल-का-कुल जीवन परमेश्वर-भक्तिरूप होता है। जिन गाँवों का ग्रामदान होगा, उन्हें पलनी तीर्थ-क्षेत्र का रूप मिलेगा। वह 'पलनी कोविल' (कार्तिकेय भगवान् का मंदिर) समझा जायगा। वहाँ दूसरे मंदिर की जरूरत न रहेगी। सारे छह सिर इकट्ठे हो जायँगे और वहीं आरुमुखम् आंडवन् का दर्शन होगा।

पलनी (मदुरा)
१६-११-'५६

सुशासन के खिलाफ आवाज : ५ :

आज कुल दुनिया में दो प्रकार की संस्थाएँ बहुत मजबूत हुई हैं। एक है, धर्म-संस्था और दूसरी है, शासन-संस्था। दोनों संस्थाएँ लोकसेवा के खयाल से बनायी गयी हैं। समाज को दोनों संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई और वह आज भी इनका उपयोग कर रहा है। जब ये दोनों संस्थाएँ बनीं, तब तो समाज को ये बहुत ही जरूरी मालूम हुईं, इसलिए तब उनका कुछ उपयोग भी हुआ।

धर्म-संस्था और शासन-संस्था से मुक्ति की जरूरत

लेकिन अब ऐसी हालत आ गयी है कि इन दोनों से छुटकारा पाना समाज के लिए जरूरी हो गया है। मैं यह नहीं कहता कि धर्म से छुटकारा पाने की जरूरत है, बल्कि यही कह रहा हूँ कि धर्म-संस्था से छुटकारा पाने की जरूरत है। मैं यह भी नहीं कहता कि लोगों का कुछ इन्तजाम, समाज-सेवा की योजना न हो, बल्कि मैं यही कह रहा हूँ कि सेवा के नाम पर जो शासन चलता है, उससे छुटकारा पाना जरूरी है। जितना-जितना सोचता हूँ, उतना-ही-उतना मेरा यह दृढ़ विश्वास होता जा रहा है कि ये दोनों संस्थाएँ अच्छे उद्देश्य से शुरू हुईं

और अब उन उद्देश्यों की पूर्ति हो गयी, इसलिए अब उनके जारी रहने में लाभ होने के बदले नुकसान ही होगा।

धर्म का जीवन पर असर नहीं

आज दुनियाभर में धर्म की क्या हालत है ? ईसाई-धर्म, इसलाम-धर्म, हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म काम करते हैं। मैंने चार बड़े धर्मों का नाम लिया। इनके अलावा दूसरे छोटे-छोटे धर्म भी हैं। इन सब धर्मवालों ने अपनी-अपनी संस्थाएँ बनायी हैं। यूरोप में पोप काम करता है और चर्च की अच्छी मजबूत रचना बनी हुई है। जैसे जिले-जिले के लिए जिलाधीश होते हैं, वैसे ही वहाँ हर जिले के लिए चर्च का भी एक अधिकारी होता है। इसी प्रकार की रचना इसलाम में भी है। जगह-जगह उनकी मस्जिदें हैं, जहाँ मुल्ला होते हैं। उनकी तरफ से कुछ धर्म-प्रचार की योजना होती और कुछ उत्सव वगैरह भी चलते हैं। हिन्दुओं में भी ऐसा ही चलता है। मंदिरों के जरिये यह सारा कार्य होता है। यही हालत बौद्धों की है। ये सारे धर्म अहिंसा, शांति, प्रेम आदि के माननेवाले हैं; फिर भी आप देख रहे हैं कि दुनिया में शांति-स्थापन के काम में इन सभी संस्थाओं को कोई असर नहीं हो रहा है। कोई देश दूसरे देश पर हमला करता है, तो पोप से पूछता नहीं कि हमला करना ठीक है या बेठीक। वह समझता है कि पोप का अधिकार अलग है और हमारा अधिकार अलग। अपने व्यवहार में वे धर्म का कोई असर नहीं मानते, इतना ही नहीं; बल्कि लड़ाइयाँ चलती हैं, तो उनमें पक्षविशेष की विजय की प्रार्थनाएँ भी चर्चों में चलती हैं। समाज के व्यवहार में इन संस्थाओं का कोई खास असर नहीं। इतना ही होता, तो भी खैरियत थी; पर आज समाज पर उनका बहुत बुरा असर भी हो रहा है।

श्रद्धावानों ने धर्म समाप्त किया

श्रद्धावानों पर इन संस्थाओं का बुरा असर हो रहा है। उन्होंने यह मान लिया है कि धर्म का जो कुछ कार्य है, उसे करने की जिम्मेवारी इन पुरोहितों की है, जिन्हें हमने इस काम के लिए चुना है। धर्म के लिए हमें कुछ नहीं करना है। वे समझते हैं कि पलनी में एक सुंदर मंदिर बना दिया, उसके लिए

कुछ जमीन, संपत्ति आदि भी दे दी, पूजा-अर्चा का इन्तजाम ठीक से हुआ है, तो हमारा धर्म-कार्य खतम हो गया ! यहाँ कार्तिकस्वामी का बड़ा उत्सव होगा। लोग मंदिर में दर्शन के लिए जायँगे, परमेश्वर के सामने कुछ दक्षिणा रखनी हो, तो उसे भी रखेंगे। किंतु धर्म के लिए हमें भी कुछ करना होता है, यह विचार श्रद्धावानों ने छोड़ दिया है। जो श्रद्धावान् नहीं, वे न तो पुरोहितों को पूछते हैं और न धर्म को ही। लेकिन जो श्रद्धावान् हैं, वे धर्म की, धर्म-प्रचार की, आचरण की और चिंतन-मनन की जिम्मेवारी गुरुओं एवं पुरोहितों पर छोड़ देते और अपने को मुक्त समझते हैं। फिर वे गुरु कहते हैं कि तुम लोग भस्म लगाओ, तो लोग गुरु की आज्ञा समझकर भस्म लगाते हैं और समझते हैं कि धर्मकार्य समाप्त हो गया !'

जो श्रद्धा नहीं रखते, वे तो रखते ही नहीं; पर जो रखते हैं, उनकी वह श्रद्धा भी निर्वीर्य बन गयी है। एक व्यापारी है, जिसने व्यापार चलाने के लिए एक मुनीम रखा है। सारा काम मुनीम ही करता है और वह खुद बेवकूफ बनकर कुछ नहीं करता। उसने घर में पूजा करने के लिए एक ब्राह्मण रखा है और घर में 'पलनी आंडवन्' (भगवान् कार्तिकेय) की मूर्ति है। उस पूजा का कुल पुण्य उसे हासिल होता है। यात्रा के लिए भी उसने ब्राह्मण को भेज दिया और उसका कुल खर्चा खुद किया। ब्राह्मण को घूमने का व्यायाम हुआ और उस व्यापारी को यात्रा का पुण्य मिला। सारांश, जो श्रद्धाविहीन हैं, उन्होंने धर्म समाप्त किया, इसकी मुझे कोई शिकायत ही नहीं करनी है। किंतु यही बड़ी शिकायत है कि जो श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने धर्मकार्य चंद लोगों को सौंपकर अपने को उससे मुक्त रखा और धर्म को समाप्त कर दिया।

धर्म पुजारियों को सौंपा गया

मैं एक मिसाल देता हूँ। हिन्दू-धर्म में एक बहुत बड़ी बात है, वानप्रस्थाश्रम। शास्त्रों ने कहा है कि मनुष्य को अपनी विषय-वासना को मर्यादित रखना चाहिए। जैसे वह संस्कारपूर्वक गृहस्थ बना, वैसे ही उसे एक अवधि के बाद संस्कारपूर्वक गृहस्थाश्रम से मुक्त भी होना चाहिए। हिन्दू-धर्म की

यह बात खूबी मानी जायगी। शास्त्रग्रंथों में इसकी महिमा का बहुत वर्णन है, पर आज उसका कहीं अमल नहीं है। श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में चिंता नहीं करते हैं। उन्होंने वह सारी चिंता पुरोहितों पर सौंप दी है।

श्रद्धालुओं की यह 'गोपाल-बीड़ी'!

आज सुबह हम पलनी-स्वामी के दर्शन के लिए पहाड़ पर गये थे। हमने देखा कि लोगों ने रास्ते में सीढ़ियाँ और कुछ मंडप भी बनाये हैं। ऐसा उन्होंने समझ लिया कि इससे हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। ऊपर किसी मिलवाले ने एक मंडप बनाया है। उस पर मिल का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है। हमने देखा कि जगह-जगह जैसे धर्मवचन और पलनी-स्वामी के नाम लिखे गये हैं, वैसे ही सीढ़ियाँ आदि बनानेवाले मिलवालों वगैरह के नाम भी अंकित हैं। लोग समझते हैं कि हमने मंदिर बनवाया और वहाँ प्रभु की सेवा में अपना नाम भी अर्पण कर दिया है। कितना धर्म-विहीन कार्य है यह! लेकिन लोगों को इतनी सादी अक्ल भी नहीं है। वे समझते हैं कि हमने मंडप, सीढ़ियाँ बनायीं, तो हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की चिंता तो मंदिर का पुजारी करेगा। हमने एक बार धारपुरम् में घूमते समय किसी मकान पर एक तमिल विज्ञापन देखा। वहाँ एक बड़ा सुन्दर चित्र था, बालकृष्ण मुरली बजा रहे थे और नीचे लिखा था, 'गोपाल-बीड़ी'। अब इन सबको कौन रोकेगा? क्या यह कोई धर्म-कार्य है? लेकिन कोई भी श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में न सोचेगा। वह इसमें अपनी जिम्मेवारी ही नहीं समझता। इतने बड़े अक्षरों में भगवान् के नाम के साथ बीड़ी का विज्ञापन दिया जाय और किसीको कुछ भी दुःख न हो। मिलवाले ने ऊपर पहाड़ पर मंडप बनाया, यह तो अच्छा किया। लेकिन उसके लिए मिल का नाम बड़े अक्षरों में लिखने की क्या जरूरत थी? वहाँ जाकर हम पलनी-स्वामी का स्मरण करें या मिलवाले का? इस तरह श्रद्धावान् लोगों ने कुल धर्म की हानि की है।

आस्तिकों के विरुद्ध आवाज

तमिलनाड में प्रवेश करने के साथ ही लोगों ने हमसे कहा था कि "बाबा,

यहाँ बहुत नास्तिकता है। आप जरा उसके खिलाफ आवाज उठाइये।" लेकिन मैंने तो अपनी आवाज आस्तिकों के विरुद्ध ही उठायी है। मैंने कहा : नास्तिकों के खिलाफ आवाज उठाने का मुझे अधिकार ही क्या है ? मैं नास्तिक तो नहीं, आस्तिक हूँ। इसलिए आस्तिक लोग जो पाप कर रहे हैं, उन्हींके खिलाफ आवाज उठाने का मुझे अधिकार है। मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है कि नास्तिकों के बाप आस्तिक हैं, उन्हींने नास्तिकों को पैदा किया है। अगर हम सचमुच आस्तिक होते, तो हमारे जीवन का प्रकाश चारों ओर फैलता और कोई नास्तिक ही न होता। धर्म की जो संस्थाएँ बनायी गयीं, उसीका यह परिणाम है। आशा तो यह थी कि मठसंस्था, मंदिर आदि के जरिये दुनिया में धर्म-प्रचार होगा। मैं यह नहीं कहता कि उनके जरिये कुछ भी कार्य नहीं हुआ। कुछ कार्य तो होता ही है, पर वह अल्प है। और अगर वह अल्प न होता, बहुत बड़ा होता, तो भी उस पर मेरा आक्षेप है। क्योंकि धर्म की जिम्मेवारी हम चंद लोगों पर छोड़ देते हैं और वे अच्छी तरह निभाते हैं, तो भी क्या हुआ ?

मान लीजिये, मैंने सोने की जिम्मेवारी एक मनुष्य पर सौंपी और उसे इसके लिए तनख्वाह भी दी। वह बहुत अच्छी तरह से दस-दस घंटा सोता और अपनी जिम्मेवारी अच्छी तरह निभाता है, तो क्या मेरे नींद न लेने से चलेगा ? उसे सोने की जिम्मेवारी सौंपकर मुझे क्या लाभ होगा ? जैसे अपनी नींद मुझे लेनी होगी, उसकी जिम्मेवारी मैं दूसरों पर नहीं सौंप सकता या जैसे अपना खाना खुद खाना होगा, उसकी जिम्मेवारी मैं दूसरों पर नहीं सौंप सकता, वैसे ही मेरे धर्मकार्य का जिम्मा मुझ पर ही है। वह मैं किसी पर भी सौंप नहीं सकता। धर्म की जिम्मेवारी हमने जिन पर सौंपी, उन्होंने उसे अच्छी तरह नहीं निभाया, यह मेरी पहली शिकायत है। लेकिन वे उसे अच्छी तरह निभाते, तो भी वह गलत काम है, यह मेरी दूसरी शिकायत है।

सेवा की जिम्मेवारी चन्द प्रतिनिधियों पर

जो धर्मसंस्था की हालत है, वही हालत शासन और समाज-सेवा के बारे में हुई है। हम चन्द लोगों को चुनकर देते और फिर वे हमारे प्रतिनिधि के नाते

समाज-सेवा के सब काम करते हैं। उनके हाथ में नौकर-वर्ग रहता है। इन चुने हुए लोगों पर हमने शासन और सेवा की जिम्मेदारी सौंपी है। मदुरा जिले की सेवा करने की जिम्मेवारी यहाँ के जिलाधीश और यहाँ से चुने प्रतिनिधियों की है। अब हमें उस बारे में कुछ नहीं करना है, ऐसा यहाँ के लोग सोचते हैं। किन्तु अगर धर्म-कार्य पुजारियों पर और समाज-सेवा का कार्य चुने प्रतिनिधियों पर सौंपा, तो आपने अपने ऊपर कौन-सी जिम्मेवारी ली? आप कहेंगे कि हम खायेंगे-पीयेंगे, सोयेंगे। यही जिम्मेवारी हमने उठायी है। किन्तु आपने ऐसी जिम्मेवारी दूसरों पर सौंपी, जिससे आप ठीक तरह से खा-पी भी नहीं सकते। यह शिकायत इसलिए होती है कि आपने जिन्हें काम सौंपा, वे वह काम ठीक तरह नहीं करते। पर वे वह काम अच्छी तरह करते, तो भी मेरा उस पर आक्षेप है। जो लोग अपना शासन और सेवा-भार चंद प्रतिनिधियों पर सौंपेंगे, धर्म और चिंतन की जिम्मेवारी चंद लोगों पर सौंपेंगे, वे बिल्कुल निस्सार होंगे। उनके जीवन में कोई प्राण-तत्त्व न रहेगा। लोग इसे अभी समझ नहीं रहे हैं। बल्कि उल्टा बाबा से ही पूछते हैं कि तुम गाँव-गाँव क्यों घूमते हो, जमीन हासिल करने और बाँटने की तकलीफ क्यों उठा रहे हो, सरकार के जरिये यह काम क्यों नहीं करवा लेते? लोगों का यह सवाल वाजिब है। वे कहते हैं कि हमने सेवा के लिए नौकर रखे हैं, तो आप क्यों तकलीफ उठाते हैं? आपको जमीन चाहिए, तो हम १-२ एकड़ दे देंगे, उसमें खेती कीजिये और मजे में खाइये-पीजिये, लाखों एकड़ जमीन हासिल करते हुए क्यों घूमते हैं? याने लोग स्वयं तो अपनी सार्वजनिक सेवा की जिम्मेवारी मानते ही नहीं, लेकिन बाबा वह काम कर रहा है, तो उसीसे पूछते हैं कि नाहक काम क्यों करते हो?

इंग्लैंड का उदाहरण

यह हिन्दुस्तान के समाज की ही हालत है, ऐसी बात नहीं। दुनियाभर के समाजों में कम-बेशी ऐसी ही हालत है। लोकशाही चलानेवाली संस्था का उत्तम नमूना इंग्लैण्ड और उसकी पार्लमेंट माना जाता है। किन्तु वहीं के लोगों ने

जिनके हाथ में सत्ता सौंपी है, उन्होंने अभी-अभी मिस्र पर हमला कर दिया। इंग्लैंड की जनता के लिए यह बड़े ही गौरव की बात है कि उसने इस आक्रमण के विरोध में जोरों से आवाज उठायी, फिर भी वे उसे रोक न सके। वहाँ इतनी उत्तम लोकशाही चलानेवाले भी कमजोर साबित हुए। आगे जब चुनाव होंगे, तब वे असर डालेंगे, यह दूसरी बात है; लेकिन इस वक्त जो बुरा काम हुआ, हो रहा है और होगा, उसे रोकने के लिए आवाज उठाने पर भी उनकी कुछ न चली। सारी दुनिया की आवाज इस आक्रमण के खिलाफ उठी, 'यूनो' का प्रस्ताव भी रहा। इसलिए आखिर उन्हें वह आक्रमण रोकना पड़ा।

जब हम अपने शासन का भार चन्द लोगों पर सौंपते हैं, तो यही हालत होती है। क्या रूस, क्या इंग्लैंड, क्या चीन और क्या अमेरिका, हर देश में यही हालत है कि उन्होंने अपना कारोबार चंद लोगों के हाथ में सौंप दिया है और उन्हींका अनुसरण दूसरों को करना पड़ता है। कम-बेशी परिमाण में सारी दुनिया की यही हालत है। पर हिन्दुस्तान की विशेष है, क्योंकि यहाँ की जनता में उस प्रकार की जाग्रति नहीं है, जैसे इंग्लैंड आदि देशों की जनता में है। हमने अपना धर्म और अपनी व्यवस्था का काम भी चंद लोगों के हाथों में सौंपा है। दोनों ओर से हम पुरुषार्थहीन बन गये हैं। सर्वोदय-समाज हर व्यक्ति से कहता है कि अपने शासन का इन्तजाम तुम खुद करो, अपने धर्म का आचरण तुम खुद करो।

सुशासन में अधिक खतरा

आज मैं जब पहाड़ पर मन्दिर में जा रहा था, तो रास्ते में मन में जो विचार आये, वे आपके सामने रखे। मुझे अच्छा लगता है कि ऐसे स्थान बने हैं, इसलिए लोगों में कुछ-न-कुछ श्रद्धा बनी है। इन लोगों ने जो अच्छे-अच्छे काम किये, उसकी हम कद्र करते हैं। अगर हमने उसकी संस्था बनाकर ये काम चंद लोगों के हाथ में सौंपे न होते, तो इनसे बहुत ज्यादा अच्छे काम होते। हमारी सरकार भी कुछ अच्छा काम करती है और कुछ गलत। पुराने राजाओं ने भी कुछ अच्छे काम किये और कुछ गलत। जो गलत काम पुराने राजाओं ने किये या आज की सरकार कर रही है, उसके बारे में मुझे कोई

शिकायत नहीं करनी है। जो गलत काम हैं, वे और उनके परिणाम दुनियाभर जाहिर हो जाते हैं। चिंता की बात तो यह है कि दुनिया का भला करने की जिम्मेवारी चंद लोगों पर सौंपी गयी और वे दुनिया का भला करें, ऐसा हम सोचते हैं।

मुझे मुख्य शिकायत इसीकी करनी है कि राज्यसंस्था कभी-कभी अच्छे काम करती है, उन अच्छे कामों से समाज के दिमाग पर उसका और असर होता है। अगले साल चुनाव होंगे, उस वक्त वे लोग आपके पास वोट माँगने आयेंगे और कहेंगे कि "देखो, हमने इतने-इतने अच्छे काम किये।" अगर सच-मुच में उन्होंने अच्छे काम किये हों, तो लोग उनके उपकार के बोझ के नीचे दब जायँगे। इसीका मुझे दुःख होता है। कुछ लोग उपकार करें और बाकी सब लोग उसके बोझ से नीचे दबें, यही गलत है। यह ठीक है कि छोटे बच्चों की जिम्मेवारी माता-पिता पर हो। पर क्या दस-दस हजार साल की संस्था के बाद भी हम बच्चे ही रहे हैं? अब हमें समझना चाहिए कि विज्ञान इतना फैला है और हजारों साल की ज्ञान की परंपरा चली आयी है, तो हरएक मनुष्य अपना-अपना ज्ञान और अपने-अपने धर्म का कारोबार अपने हाथ में ले, यही अच्छा है।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि सरकार गलत काम करती है, तो आप उसके खिलाफ जोरदार आवाज क्यों नहीं उठाते? हम उसके खिलाफ जोरदार आवाज नहीं उठाते, कभी-कभी मौके पर कह देते हैं। किंतु जब हम देखते हैं कि सरकार कोई अच्छा काम कर रही है, तभी जोरदार आवाज उठाते हैं। सरकार के गलत काम के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत नहीं, लेकिन उसके अच्छे कामों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत है। लोगों से यही कहने की जरूरत है कि "तुम भेड़ बन रहे हो!" तुम लोग भेड़ होकर बोलने लगे कि "गड़रियों ने बहुत अच्छा इन्तजाम किया", तो क्या यह खुश होने की बात है? मैं उस पर क्या बोलूँ? मुझे लगता है कि गड़रिये अच्छा काम नहीं करते, तो कम-से-कम उससे भेड़ तो समझ जाते हैं कि हम भेड़ बन रहे हैं। उन्हें अपनी स्थिति का कुछ भान हो जाता और वे समझते हैं कि हम भेड़ नहीं,

मनुष्य हैं, हम अपना कारोबार अपने हाथ में क्यों नहीं रखते ? इसलिए हमारी आवाज सुशासन के खिलाफ उठती है। दुःशासन के खिलाफ तो महाभारत में व्यास ही आवाज उठा गये हैं। लोग जानते हैं कि खराब शासन न होना चाहिए। खराब शासन चलता है, तो लोग टीका करते हैं। यह कार्य तो दुनिया में चल ही रहा है। किन्तु हम पर कोई अच्छा शासन चलाये और हम शासित हो जायँ, यही हमें बुरा लगता है।

पलनी (मदुरा)
१७-११-'५६

आसमान और बाजार की सुलतानियों से कैसे बचें ? : ६ :

भारत युद्ध में पड़ना नहीं चाहता। न तो उसकी युद्ध में पड़ने की हैसियत भी है और न उस पर उसका विश्वास ही है। अगर युद्ध हुआ, तो भारत की कुल योजनाओं को बहुत हानि पहुँचेगी। उस हालत में अपने देश के लिए हमें गंभीरता से सोचना होगा। मान लीजिए, कल लड़ाई शुरू हो, तो बाहर का जरूरी माल हिन्दुस्तान में आना मुश्किल हो जायगा, कुल व्यापार-व्यवहार रुक जायगा। वस्तुओं के दाम किधर-से-किधर चले जायँगे और जिन ग्रामवासियों का कोई कसूर नहीं, उन्हें भूखों मरना होगा। ऐसी हालत में सारे देश को हम कैसे बचा पायेंगे ? हमें अपनी सारी योजनाएँ ऐसी बनानी चाहिए कि चाहे दुनिया में युद्ध हो या शांति, हमारे देश में तो शांति ही रहेगी और देश की प्रगति न रुकेगी। पुराने जमाने में ऐसा ही होता था। दुनिया के दूसरे देशों में घमासान लड़ाइयाँ हुईं, फिर भी इस देश को उसका पता तक न चलता था। लोगों को मालूम ही नहीं होता कि दुनिया में कितने देश हैं। जहाँ देशों का नाम भी वे जानते न थे, वहाँ परिणाम होने की बात ही क्या ! किन्तु वह पुराना जमाना आज हम वापस नहीं ला सकते। सारी दुनिया में जो कुछ होगा, उसका असर भारत पर होगा ही। उसे हम टाल नहीं सकते। इसी तरह सारी दुनिया में जो चीजें बनेंगी, उनका ज्ञान हमें होगा और उनका हमारे व्यापार-व्यवहार

पर भी असर होगा, भले ही आपके देश को स्वराज्य मिला हो, चाहे आपके यहाँ कपास की अच्छी फसल हुई हो। फिर भी कपास के दाम पर आपका कोई असर न होगा, अमेरिका के कपास के दाम से ही यहाँ के कपास का दाम तय होगा। उसीके अनुसार आपके किसानों को यहाँ कुछ मिलेगा।

आसमानी सुलतानी से बचने के तीन उपाय

एक तो हम पर आसमानी असर छाया हुआ है, दूसरा यह सुलतानी बाजार-भाव का भी असर है। बारिश न हुई, कपास की अच्छी फसल न हुई, तो किसानों को नुकसान है। अगर बारिश हुई और कपास की फसल भी अच्छी हुई, लेकिन दाम गिर गया, तो भी उन्हें नुकसान है। इस तरह आज हमारा किसान अत्यन्त पंगु बन गया है। इन दोनों सत्ताओं से उसे बचाना है। आसमानी सत्ता से बचाने के तीन उपाय हैं। पहला, पानी का इन्तजाम हमें करना होगा। केवल इस साल पानी कम हुआ और हमारी खेती बरबाद हुई, ऐसा न होना चाहिए। दूसरा उपाय है, अपने गाँव में दो साल का अनाज रखना। अगले साल अच्छी फसल होने के बाद ही हम पुराना बेचें। इस साल का धान इसी साल खतम हो, ऐसा न होना चाहिए। और तीसरा उपाय है, हमारे व्यवहार में भलाई होना। अगर हम भलाई से बर्ताव करते हैं, तो परमेश्वर भी समय पर ठीक बारिश करेगा। अगर हम पापाचरण करते हैं, तो बारिश भी हम पर प्रहार करती है। इस तरह न्याय, नीति, प्रेम और धर्म पर चलना तीसरा उपाय है। ये तीन बातें हम करेंगे, तो आसमानी सुलतानी से बेलाग बच जायँगे।

दूसरी सुलतानी के लिए स्वावलम्बन

बाजार के दामों की सुलतानी से बचने का उपाय है, ग्राम का स्वावलम्बन। मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। १९२० से हमने खद्दर पहनना शुरू किया। ३६ साल से हमने कपड़ा खरीदा नहीं, याने खद्दर भी हमने नहीं खरीदी। आश्रम में हमने खेतों में कपास बोया, हमने ही काता और हमने ही बुना। अपना कपड़ा हमने ही इस्तेमाल किया। इसलिए कपड़े पर हमें एक कौड़ी का भी खर्चा न करना पड़ा। हमारा ही खेत था और हमारा ही श्रम! कपास बोने के लिए

भी पहले साल के जो बिनौले होते, उन्हींका इस्तेमाल करते। इसलिए बाजार में कपड़े का दाम इन ३६ सालों में कितना चढ़ा और कितना गिरा, वह हमें मालूम नहीं। इन ३६ सालों में एक महायुद्ध हो गया, उस समय कपड़े का दाम किधर से किधर चला गया। बीच में कण्ट्रोल का जमाना भी आया। उस वक्त लोगों को बड़ी मुश्किल से कपड़ा मिलता था। किन्तु हमें कोई कष्ट न हुआ। हमको बाजार के दाम का पता ही नहीं चलता था। सारांश, इस तरह गाँव-गाँव के लोग अपनी मुख्य-मुख्य आवश्यकताओं के बारे में मिल-जुलकर स्वावलंबन करेंगे, तो बाजार के दामों से बचेंगे। फिर भी बिल्कुल ही बचेंगे, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि केरोसिन जैसी चीजें एकदम गाँव में बनाना मुश्किल होगा। हम अपने गाँव का दीपक बिलकुल ही नहीं बना सकते, ऐसी बात नहीं। गोबर के गैस-प्लाँट की योजना कार्यान्वित कर प्रकाश तैयार किया जा सकता है। हम यह सब कर सकते हैं और करना भी चाहिए। पर वह एकदम से न होगा। कुछ चीजें बाहर से खरीदनी ही होंगी, भले ही वे महँगी पड़ें। उन चीजों के बारे में हमें तकलीफ होगी। फिर भी रोजमर्रा की मुख्य-मुख्य आवश्यकताओं के बारे में स्वावलम्बी बनेंगे, तो हम बाजार-भाव की सुलतानी से बहुत कुछ बच जायँगे।

पंचायतवाले ग्राम-राज्य में जुट जायँ

आप गाँव-गाँव के ग्राम पंचायतवालों को 'गाँव का राज्य' बनाना चाहिए। अपना गाँव स्वतंत्र राज्य हो। गाँव में जितने लोग हों, सब मिल-जुलकर काम करें। गाँव में जितने खेत हों, वे सब गाँव की मालकियत हों। कोई भूखा न रहे, हरएक को जमीन का टुकड़ा दिया जाय। वह उस जमीन का मालिक न बने, उसमें पैदा करके खाये। किसीके खेत में फसल कम हो, तो गाँव के दूसरे लोग मदद करें। गाँव के लिए क्या और कितना बोया जाय, यह गाँववाले ही मिलकर तय करें। कपड़ा, तेल, गुड़, जूता आदि चीजें गाँव में ही बनायें। गाँव के लोगों को पुरुषार्थी बनाने के लिए योग्य तालीम की व्यवस्था हो। गाँव के झगड़ों का गाँव में ही निपटारा हो। गाँव की योजना ही ऐसी

बने कि झगड़े पैदा न हों, फिर भी कोई मूर्ख झगड़ ही बैठे, तो गाँव के सज्जन उसका फैसला कर दें। किसी भी घर में शादी हो, तो उस घर का खर्चा न हो, गाँव के लोग मिल-जुलकर शादी का खर्च उठायें। व्यक्तिगत कर्ज न रहे, गाँव की तरफ से कर्ज लिया जाय। इस तरह ग्राम का राज्य, ग्रामोदय बनेगा, तो गाँव निश्चय ही बच जायँगे। अगर गाँव-गाँव में ग्रामराज्य हो जाता है, तो चाहे महायुद्ध भी शुरू हो जाय, तो भी हमारे गाँव बच जायँगे।

पंचवर्षीय योजना 'विश्वावलम्बी'

महायुद्ध शुरू होने के बाद हमारी पंचवर्षीय योजना टिकेगी या नहीं, इसके बारे में भी शंका है। अभी कोई बड़ा युद्ध शुरू नहीं हुआ था। सिर्फ स्वेज का कारोबार रुक गया, उसका भी यहाँ के व्यापार पर असर हो गया। यह तो केवल अरुणोदय था, सूर्योदय तो हुआ ही नहीं। जब सूर्य महाराज ऊपर चढ़ आयेंगे, तब क्या होगा, कौन कह सकता है ? पंचवर्षीय योजना केवल 'स्वावलम्बी' नहीं, 'विश्वावलम्बी' है, याने वह केवल अपने पर ही आधार रखनेवाली योजना नहीं। किन्तु हमारा ग्रामदान और ग्रामोदय का विचार बिलकुल स्वतंत्र विचार है। विश्वयुद्ध से भी उसे बाधा पड़ने का कोई कारण नहीं। बल्कि उससे उसमें और जोर भी आ सकता है।

पलनी (मदुरा)
१८-११-'५६

आज लोगों ने धर्मकार्य और सेवाकार्य का जिम्मा चंद लोगों पर सौंप दिया है। या यों कहिये कि चंद लोगों ने कुशलता से कुल जिम्मा या सत्ता अपने हाथ में ले ली और लोगों ने उसे सह लिया। हम यह भी कह सकते हैं कि लोगों ने उन्हें सत्ता दी या यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने सत्ता ली और लोग उसके वश में हो गये।

'सत्ता के जरिये सेवा' भ्रांति-मंत्र

जो भी हुआ हो, लेकिन जो हुआ है, उसके मूल में यही एक श्रद्धा रही कि दुनिया में सत्ता के जरिये काम जल्दी और अच्छा होता है। इसीलिए 'सत्ता के जरिये सेवा' यह एक मंत्र ही बन गया। इसे हम 'भ्रान्ति-मंत्र' कहते हैं। हर जमाने में कुछ-न-कुछ भ्रम भी काम किया करते हैं। उस भ्रम के लिए आधाररूप कुछ सत्य भी होता है। इस जमाने में एक विशेष सत्य का दर्शन हुआ है। वह यह कि "कोई भी गुण केवल व्यक्तिगत न रहे, सामूहिक बनना चाहिए।" इसका अर्थ यह नहीं कि यह ऐसा सत्य है, जिसकी झाँकी पहले के जमाने में नहीं हुई। झाँकी तो थी, पर विज्ञान के कारण उसका स्पष्ट दर्शन आज के जमाने को हुआ। लेकिन इस सत्य-दर्शन के साथ-साथ एक छायारूप भ्रान्ति-दर्शन भी हुआ है। इसकी कोई जरूरत तो नहीं थी, फिर भी हुआ।

आज यह माना जाता है कि गुण को सामूहिक रूप जरूर मिलना चाहिए, उसके आधार पर सामूहिक जीवन बनना चाहिए। उसके लिए इन्तजाम होना चाहिए और इन्तजाम के लिए सत्ता चाहिए। इस तरह से गुणप्रतिष्ठा के लिए गुण अपर्याप्त है, उसके लिए सत्ता की आवश्यकता है। इसलिए आज की लोकशाही में ज्यादा-से-ज्यादा लोग यहाँ तक जाते हैं कि लोगों में ज्ञान के जरिये कुछ गुण-प्रचार भी होना चाहिए और शासन का, सत्ता का रूप उसके अनुकूल होना चाहिए। केवल सत्ता काम नहीं करेगी और न केवल गुण-प्रचार ही, गुण-

प्रचार के लिए दूसरी शक्तियों—सत्ता की भी जरूरत है। इसलिए सर्वप्रथम लोगों में उस सत्ता को मान्य करनेवाला गुण होना चाहिए। उसके लिए अनुशासन (डिसिप्लीन) सिखाया जाता है, तालीम भी सरकार के हाथ में दी जाती है, कानून बनाये जाते हैं। इस तरह अनेक प्रकारों से लोगों को एक विशिष्ट विचार के पीछे चलने के लिए मजबूर किया जाता है। परिणाम यह होता है कि उस गुण का महत्त्व घट जाता है।

गुणविकास में सत्ता बाधक

हम चाहते हैं कि लोग यह समझें कि मालकियत सबकी है। समाज को यह गुण समझ लेना चाहिए। माना जाता है कि इसे समझाने के लिए वैसा कानून बनाया जाय, तो अच्छा हो। लेकिन होता है बिलकुल उल्टा। कानून उस गुण की मदद नहीं करता, बल्कि ताकत ही घटाता है। वह गुण को यांत्रिक, अतएव निस्सार बना देता है। मान लीजिये, मालकियत के विसर्जन का कानून जबरदस्ती बनाया गया, या लोगों को कुछ समझा-बुझाकर और कुछ सत्ता के जरिये मिश्रित कार्य किया गया, तो भी ममत्व-भावना के निरसन से समाज में होनेवाले जादू का संचार न होगा।

इन दिनों दुनिया के बहुत से विचारक इसी मोह में पड़े हैं। वे कहते हैं कि आज का समाज आदर्श समाज नहीं है और विनोबा जो बात बता रहे हैं, वह आदर्श समाज की है, आज के समाज की नहीं। इस आदर्श समाज तक पहुँचने के लिए कुछ समय चाहिए। बीच की जो राह है, उसमें सत्ता की आवश्यकता है। इसीलिए आज सबको सत्ता का मोह लगा है। पर हम समझते हैं कि "हमारी किसी पर कोई सत्ता न चले", यह जब तक मनुष्य को न सूझेगा, तब तक समाज ही न बनेगा। सामाजिक कार्य सत्ता से बनता है, यह निरी भ्रान्ति है। वस्तुस्थिति यह है कि सत्ता से समाज ही नहीं बनता। अगर मैं यह सोचूँ कि मेरे विचारों की सत्ता आप पर चले, फिर वह विचार आपको जँचे या न जँचे, तो मैं समाज-विरोधी हूँ, अहंवादी हूँ। जो विचार मुझे जँचा, उसीको प्रधान मानता हूँ। विचार की आजादी अपने लिए आवश्यक मानता हूँ, पर लोगों के लिए वह जरूरी

नहीं मानता, तो समाज के दो टुकड़े पड़ जाते हैं। फिर जहाँ समाज के दो टुकड़े होते हैं, वहाँ समाज बनता ही नहीं। अतः गुण को सामाजिक बनाने के लिए उसके रास्ते में जो रुकावटें हों, उन्हें हटाना ही चाहिए। जहाँ उसके बीच सत्ता आ जाय, वहीं रुकावटें आ जाती हैं। यह बात जरा सूक्ष्म है, परंतु हमें समझनी ही होगी।

गृहस्थाश्रम में सत्ता

भगवान् ने माता-पिता के हाथ में बच्चे दिये हैं। आप देखते हैं कि ४-५ साल के अन्दर उन बच्चों के दिमाग में कुछ स्वतंत्र विचार आना शुरू हो जाता है। और उतने में उनके और माता-पिता के विचारों में टक्कर होने लगती है। इस हालत में माता-पिता क्या करते हैं? इस विषय में पुराने लोगों का एक वचन है, पर वह कितना भ्रान्तिमूलक है, यह आप समझ सकते हैं। गृहस्थ के लिए कहा गया है कि उसे सब विषयों में हिंसा का परित्याग करना चाहिए। पर उसके लिए भी दो अपवाद हैं : 'अन्यत्र पुत्रात् शिष्याद् वा' पुत्र और शिष्य को छोड़कर उन्हें बाकी किसीकी ताड़ना न करनी चाहिए। पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताड़न करना ही चाहिए। चूँकि गृहस्थ के लिए अहिंसा के विधान में अपवादस्वरूप यह बताया गया, इसलिए यह केवल भूतदयामूलक ही विचार है। वे समझते हैं कि अगर हम बच्चों को दंड न देंगे, तो वे गलत रास्ते पर जायँगे। वे अपना हित नहीं समझते, इसलिए मौके पर प्रेम से प्रेरित होकर उसके हित के लिए ताड़न करना ही चाहिए।

यहाँ माता-पिता ने और उनके सलाहकारों ने हार खायी है और दंडशक्ति को वरदान दे दिया! जो बच्चा माता-पिता की गोद में आया, उसकी क्या हालत थी? मानव के माने हुए दूसरे गुण उसमें नहीं थे, लेकिन एक ही गुण था, श्रद्धा। बाकी के गुण तो पीछे आते हैं। बच्चे ने श्रद्धा से माता के उदर में जन्म लिया। वह श्रद्धा के साथ माता के स्तन को आशीर्वाद समझता है। उसके मन में जरा भी शंका, तर्क या दलील नहीं रहती कि किस दूध से मेरे लिए पोषण मिलेगा या नहीं। वह पूर्ण श्रद्धा के साथ उस दूध का पान करता है। चाहे वह माता गलत

आहार करनेवाली हो और उस दूध के जरिये उसे कुछ नुकसान भी होनेवाला हो, तो भी उसकी श्रद्धा में कोई कमी नहीं रहती। फिर जरा बड़ा होने पर वह और समझने लगता है, तो माता जो कहती, उसे मानता है। माँ ने कहा कि यह चाँद है, तो बच्चा मान लेता है। इतना श्रद्धावान् प्राणी आपके हाथ में आने पर भी उसका ताड़न करने की नौबत आप पर आये, तो यह कितनी नालायकी की बात है ? फिर भी हमने समझ लिया कि बच्चे को दंड देंगे, तो कुछ गुणों की वृद्धि होगी। दंड देना स्वयं एक दोष है, दंड सहन करना दूसरा दोष है और दंड के डर से अपने आचरण में बदल करना तीसरा दोष ! इतने सब दोषों के जरिये गुण-प्रचार की हम सोचते हैं ! इस तरह हमारे गृहस्थाश्रम में सत्ता चलती है।

विद्यालयों और धर्म-संस्थाओं की सत्ता

आज स्कूलों में भी सत्ता चलती है। इन दिनों आम शिकायत की जाती है कि "बच्चे अनुशासन नहीं रखते।" पर वे ज्ञानियों का अनुभव भूल जाते हैं। ज्ञानियों ने कहा है कि 'शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः।' विद्यार्थियों में अनुशासन नहीं है, तो यह शिक्षकों का दोष है, शिक्षण-पद्धति का दोष है, समाज-व्यवस्था का दोष है। आज हमने अनुशासन को ही बड़ा भारी गुण मान लिया और बाकी के सब गुण उसके सामने गौण बना दिये। वास्तव में होना यह चाहिए कि अगर शिष्य बिना समझे अपनी कोई बात मानता है, तो गुरुओं को दुःख हो। अगर लड़का बिना समझे अपनी बात नहीं मानता, स्वतंत्र विचार करता है, तो गुरु को खुशी हो। जब ऐसा होगा, तभी गुणों की वृद्धि होगी। आज गृहस्थाश्रम में सत्ता आ गयी है, जहाँ उसकी कोई जरूरत न थी; क्योंकि बच्चे स्वयं श्रद्धावान् होते हैं। विद्या में भी हमने सत्ता को स्थान दिया। वहाँ भी उसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि गुरु ज्ञानी होते हैं और ज्ञान से बढ़कर और कौन चीज है, जिसकी सत्ता चल सके ?

हमने धर्म-संस्था में भी सत्ता को स्थान दिला दिया है। कोई भी संतपुरुष सत्ता नहीं चाहता और कोई भी मठाधिपति सत्ता छोड़ना नहीं चाहता ! याने बिलकुल ही उल्टी प्रक्रिया हो गयी है। संतों का कार्य चलाने के लिए ही मठ, मन्दिर आदि

बनाये जाते हैं। शंकराचार्य ने सब चीजों का त्याग किया, अपने पास किसी भी प्रकार की सत्ता नहीं रखी। उन्होंने यही कहा कि "मैं विचार समझाऊँगा, जब तक आप उसे न समझेंगे, समझाता रहूँगा। यही मेरा शस्त्र है। मैं आपसे कोई भी चीज कराना नहीं चाहता, सिर्फ समझाना चाहता हूँ।" लेकिन आज उनके मठाधिपति सब प्रकार की सत्ता चलाते हैं। उनके नाम से आज्ञापत्र निकलते हैं, वे कुछ लोगों को बहिष्कृत करते हैं, कुछ लोगों को प्रायश्चित्त लेने के लिए कहते हैं। यह केवल अपने ही देश में नहीं, यूरोप में भी यही है। वास्तव में धर्म के क्षेत्र में तो सत्ता को कुछ भी स्थान न होना चाहिए, क्योंकि वहाँ विचार समझाने की ही बात है।

इस तरह घर, शाला और धर्म-संस्था में हमने सत्ता को स्थान दिया है। फिर समाज-व्यवस्था में भी सत्ता को स्थान मिलता है। इसलिए यह सारी सत्ता की राजनीति (पॉवर पॉलिटिक्स) ऊपर-ऊपर से नहीं जायगी। उसमें जो मूलभूत दोष है और जो मानव के हृदय में ही है, उसीका निवारण करना होगा।

गुण स्वयंप्रचारक

गुण व्यक्तिगत रहते हैं, तो सीमित रह जाते हैं। इसलिए वे सामाजिक होने चाहिए, यह ठीक है। दूसरा भी एक सत्य है कि व्यक्ति में अगर सचमुच गुण होते हैं, तो वे स्वयं ही फैलते हैं। सूर्य-प्रकाश के प्रचार के लिए दीपक की जरूरत नहीं रहती। जैसे सूर्यकिरणें स्वयंप्रचारक होती हैं, वैसे ही गुण भी स्वयंप्रचारक हैं। दयालु मनुष्य की करुणा उसकी आँखों से ही प्रकट होती है। वह एक शब्द भी न बोलेगा, तो भी आसपास के कुल वातावरण में करुणा फैल जाती है। इसलिए जो यह चिंता करते हैं कि गुण व्यक्तिगत न रहे, वे गुण के स्वरूप को ही नहीं समझते। जब हममें गुण रहेंगे ही नहीं, तो हमारे जरिये उनका प्रचार ही कैसे होगा? इसलिए गुण के सामाजीकरण के लिए सिवा इसके कि हम अपने में गुण का विकास करें, और कोई रास्ता ही नहीं।

हमें लगता है कि सुबह चार बजे सब उठ जायँ। इसके लिए हम घंटी बजाते हैं। फिर भी लोग नहीं उठते, तो हम पास जाकर चिल्लाते हैं। उससे

भी कोई न उठे, तो हम उसके शरीर को हिलाते हैं। उससे भी न उठे, तो पानी छिड़कते हैं और उससे भी न उठे, तो डंडा लगाते हैं। फिर वह उठता ही है। पर क्या मारना-पीटना भी कोई गुण है ? जब गुण-प्रचार में उससे मदद ली जाती है, तो गुण का गुणत्व ही खतम हो जाता है। लोग हमसे पूछते हैं कि आपका सारा तत्त्वज्ञान मंजूर है। लेकिन चार साल हुए, आप मालकियत मिटाने की बात लोगों को समझा रहे हैं, गुण-प्रचार कर ही रहे हैं, फिर भी काम बन नहीं रहा है। इतना 'स्लो प्रोसेस्' (धीमी प्रक्रिया) है, तो काम कब होगा, कार्य शीघ्र होना चाहिए। हम कहते हैं, हम भी चाहते हैं कि कार्य शीघ्र हो, लेकिन यही कार्य शीघ्र हो या सभी कुछ शीघ्र हो ? हम चाहते हैं कि बीमार जल्द-से-जल्द दुरुस्त हो, लेकिन देर से दुरुस्त होने के बजाय वह शीघ्र मर जाय, तो क्या आप पसंद करेंगे ? आप केवल शीघ्रता चाहते हैं या रोग-मुक्ति ? अगर रोग-मुक्ति चाहते हैं, तो आपको सात सतक औषध लेना ही पड़ेगा और इतना-इतना पथ्य करना ही पड़ेगा।

समय लगना बुरा नहीं, जरूरी ही

सारांश, दुनिया में ये सारी सत्ताएँ सतत चल रही हैं और शांति की इच्छा करते हुए भी शांति हो नहीं पाती। इसका एकमात्र उपाय है, सत्ता छोड़ना, जो सत्ताधारियों को और सत्ताकांक्षियों को सूझता ही नहीं। उन्हें वह सूझेगा ही नहीं, क्योंकि वे सत्ता के ही जीव हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि माता-पिताओं को, गुरुओं को, धर्मशास्त्रवालों को यह क्यों नहीं सूझता ? जब इन तीनों क्षेत्रों का परिवर्तन होगा, तो राजनैतिक क्षेत्र में भी वह होकर रहेगा। इसलिए इसे जितना समय लगाना चाहिए था, उतना लगाना जरूरी है। इसके विपरीत जब वह जल्दी होने लगे, तो शंका आनी चाहिए कि क्या पुरानी ही बात चल रही है ? मैं रात को सोने के पहले ध्यान करता था। एक-डेढ़ महीने में मेरी समाधि लगने लगी। तब मुझे शंका हुई कि जिस समाधि के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है, वह डेढ़ महीने में कैसे लगने लगी ? तब मैंने उसकी परीक्षा करने के लिए रात को सोने के पहले ध्यान करने के बजाय सुबह उठकर

ध्यान करना शुरू किया। फलतः जल्दी समाधि न लगी। तब मेरी समझ में आया कि रात को जो समाधि लगती थी, उसमें नींद का भी अंश था। इसलिए अगर जल्दी समाधि लगे, तो साधक को शंका करनी चाहिए। इसी तरह अगर यह दीख पड़े कि लोग हमारी बात जल्दी मान लेते हैं, तो हमें जरूर शंका करनी चाहिए। इसलिए जो समय लग रहा है, वह ज्यादा नहीं, उतने अवकाश की जरूरत ही है।

कहा जाता है कि "इसमें बाबा के ५ साल गुजर गये।" लेकिन चाचा के कितने गुजरे और पोते के, बेटे के कितने ? अकेले बाबा के काम करने से क्या होगा ? इतने बड़े विशाल समाज में ५ साल के प्रयत्न से जो हुआ, वह बहुत ही है। ज्यादा परिणाम होने पर तो हमें कभी-कभी शंका आती है कि क्या हम कुछ गलत काम तो नहीं कर रहे हैं ? क्या हमारे कार्यकर्ता कुछ गलत प्रचार तो नहीं कर रहे हैं ? लेकिन जब ऐसी शंका आती है, तो उसका यह उत्तर मिल जाता है कि यह विज्ञान का जमाना है, इसलिए काम जल्दी होता है। पुराने जमाने में जो काम दस साल में होता, वही इस जमाने में दो साल में होगा। इस जमाने में काम जरूर जल्दी होगा, फिर भी वह अपना समय लेगा। अतः हमें समय की चिंता न करनी चाहिए, बल्कि इसीकी चिन्ता करनी चाहिए कि हम ठीक ढंग से विचार फैला रहे हैं या नहीं। हम लोगों पर कुछ विचार लादते तो नहीं, यही देखना चाहिए।

सूर्य-सा निष्काम कर्मयोग

हम निरंतर इस बात का चिंतन किया करते हैं कि सत्ता की यह अभिलाषा कैसे दूर हो। फिर हम अपने निज के मन का संशोधन करते हैं कि क्या हमारे मन में ऐसा कुछ छिपा है कि हमारे विचार की सत्ता चलनी चाहिए ? अगर ऐसा अनुभव आये कि "लोग हमारी बात मानते हैं, तो हम सुखी होते हैं और नहीं मानते, तो दुःखी होते हैं", तो समझना चाहिए कि हम लोगों पर कुछ सत्ता लादना चाहते हैं। इसलिए हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि "हमारा असर समाज पर होना चाहिए" ऐसी कोई भावना मन में रही हो, तो उसे दूर

कर। हमारा अपना विश्वास है कि जब मन में परोपकार की वासना रखे बिना काम किया जायगा, तो अत्यंत शीघ्र परिणाम होगा। सूर्य उगता है, तो सारी दुनिया को प्रकाशित करता है। किन्तु क्या वह कोई ऐसी वासना रखता है कि लोगों को जल्दी उठना चाहिए, जल्द-से-जल्द अपने दरवाजे खोलने चाहिए, मुझे अपने घर में प्रवेश देना चाहिए? वह केवल उगता है। वह सेवक है, स्वामी के दरवाजे पर खड़ा रहता है। अगर कोई दरवाजा न खोले, तो वह अंदर न घुसेगा, बाहर ही खड़ा रहेगा। कोई थोड़ा-सा दरवाजा खोल दे, तो उतना ही प्रवेश करेगा और पूरा खोले, तो पूरा प्रवेश करेगा। लेकिन वह कभी गैर-हाजिर नहीं रहेगा। स्वामी को चाहे जब जागने का हक है। अगर वे सोते हैं, तो उन्हें सोने का हक है। पर सेवक को सोने का हक नहीं है। उसे सेवा के लिए हमेशा जाग्रत ही रहना चाहिए। उसे यह वासना छोड़ देनी चाहिए कि स्वामी जल्दी जागे। इस तरह सूर्यनारायण का आदर्श सामने रखकर हम निष्काम कर्मयोग करते रहेंगे, तो दुनिया से सत्ता जल्द-से-जल्द हट जायगी।

पलनी (मदुरा)
१८-११-'५६

सरकार खादी के लिए क्या करे ?   : ८ :

मैं अगर सरकार होऊँ, तो सरकार की तरफ से कुछ बातें जाहिर कर दूँगा :

(१) हर मनुष्य को कताई सिखाने की जिम्मेवारी सरकार की है। उसके लिए सारा खर्च सरकार करेगी। जैसे हरएक को शिक्षित (लिटरेट) बनाने की जिम्मेवारी सरकार की मानी जाती है, वैसे ही हिन्दुस्तान के उस ग्रामीण को हम शिक्षित न समझेंगे, जिसे लिखना, पढ़ना और कातना न आता हो।

(२) लोगों को चरखे चाहिए, तो सरकार देगी और उसकी कीमत गाँव-वाले हफ्ते-हफ्ते से दे देंगे।

(३) जो गाँव या शख्स अपने लिए कपड़ा बनाना चाहे, उसकी बुनाई की मजदूरी सरकार देगी। उसकी एक मर्यादा होगी। मनुष्य को कम-से-कम कितना कपड़ा चाहिए, यह सब मिलकर तय करें। हम मानते हैं कि हर देहाती को कम-से-कम १२ गज कपड़ा चाहिए। मेरे राष्ट्रीय नियोजन में हरएक को सिर्फ १२ ही गज नहीं, बल्कि २५ गज कपड़ा रहेगा। लेकिन निम्नतम अनुपात का राशन करना हो, तो हमें हर ग्रामीण पीछे १२ गज की बुनाई मुफ्त कर देनी चाहिए। दूसरी भाषा में बोलना हो, तो हम यह कहेंगे कि "हम बुनाई का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं। उसे एक 'सेवा' (सर्विस) बनाना चाहते हैं।"

इसी तरह डॉक्टर की भी सेवा बनायी जानी चाहिए। सरकार की ओर से डॉक्टर मान्य किया जायगा और उसे तनख्वाह मिलेगी, वह फीस न लेगा। आज जैसे डॉक्टर को यह वासना रहती है कि लोग बीमार पड़ें, वह न रहेगा। डॉक्टर और बुनकर सेवक बनेंगे। अंबर चरखे के कारण सूत भी अच्छा निकलेगा, तो १२ गज कपड़े के लिए डेढ़ रुपया बुनाई की मजदूरी देनी पड़ेगी। सिर्फ हर मनुष्य के लिए डेढ़ रुपया देने से कुल हिन्दुस्तान के कुल देहातों के लिए बीमा होगा। आगे जाकर वह डेढ़ रुपया कैसे हासिल किया जाय, इसकी अक्ल सरकार के पास है। वह इसे कई प्रकार से कर सकती है।

हम इस तरह से चरखे बढ़ाने का और बेकारी-निवारण का काम करते हैं, तो असंख्य चरखे बढ़ेंगे। ग्राम-योजना किये बिना, लोगों पर खद्दर पहनने की जिम्मेवारी न डालते हुये काम किया जाय, तो २-४ महीने में ज्यादा चरखे चलेंगे, पर चरखे आगे न बढ़ेंगे। लेकिन हमारी योजना के अनुसार काम चलेगा, तो इन चार महीनों में ५ हजार के बदले ३ हजार चरखे चलेंगे, लेकिन आगे लाखों चरखे चलेंगे।

पलनी (मदुरा)
१३-११-'५६

अहिंसा के लिए त्रिविध निष्ठा आवश्यक : ६ :

इन तीन-चार महीनों में दुनिया में और हिन्दुस्तान में कई ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनसे हरएक के हृदय में तीव्र प्रतिक्रियाएँ पैदा हुईं। इंग्लैंड के इतिहास में यह पहला प्रसंग था, जब कि बिना राष्ट्र की सम्मति लिये, पक्षनिष्ठ बहुसंख्या के आधार पर दूसरे देश के साथ लड़ाई छिड़ी। लोकशाही के लिए यह बहुत बड़ी चिंता की बात हुई। उसके साथ-साथ यह भी एक आशादायक लक्षण देखने में आया कि इंग्लैंड के लोगों ने अपनी आवाज खुलकर उठायी। हंगरी आदि में भी जो हुआ, उसके बारे में बहुत-सा हम जानते ही नहीं। वह भी बहुत चिंताजनक है। यह सारी दुनिया की हालत कभी विशेष भयानक दीखती है, तो कभी उतनी भयानक नहीं दीखती। पर हमें समझना चाहिए कि चाहे वह वैसी दीखे या न दीखे, वस्तुतः वह भयानक है ही।

गोली गांधी-विचार में नहीं बैठती

इधर जब हम हिन्दुस्तान की तरफ देखते हैं, तो तीन-चार महीनों में जो कुछ हुआ, वह और उसके पहले जब से 'राज्यपुनस्संघटन-आयोग'वाला मामला शुरू हुआ, तब से जो घटनाएँ घटीं, वे उतनी ही चिंताजनक हैं, जितनी ये दुनियावाली। विशेषकर जब अहमदाबाद की घटना घटी, तो मुझे कबूल करना चाहिए कि मेरी कल्पना में वह बात नहीं आयी थी। हिन्दुस्तान में (अगर बिहार को छोड़ दें, तो) विशेष अहिंसा-परायण लोग गुजरात में हैं। गांधीजी

के कारण वहाँ एक निष्ठा बनी है। उसके बावजूद वहाँ ये घटनाएँ घटीं। जब मैं घटनाओं का जिक्र करता हूँ, तो मेरा मतलब दोनों बाजुओं से घटी घटनाओं से रहता है। गोलियाँ कर्तव्य मानकर चलीं और पीछे से उसकी कुछ तहकीकात करने की जरूरत भी न मानी गयी। यह कोई अहमदाबाद या बम्बई शहर की ही बात नहीं। पूरे बम्बई राज्य में इन सात-आठ सालों में लगातार बीसों बार गोलियाँ चलीं, लेकिन कभी भी उसकी तहकीकात नहीं की गयी।

सबसे अधिक दुःख इस बात का होता है कि यह 'हम' ही करते हैं, दूसरे नहीं। 'हम' से मेरा मतलब है, गांधीजी की तालीम माननेवाले। इसलिए व्यक्तिगत तौर से मैं जिम्मेवार हूँ या और कोई, यह सोचने में कोई सार नहीं। अपने मण्डल में एक ऐसा विचार आ गया है, जो बहुत पुराना है। इसके लिए कुल दुनिया के आध्यात्मिक और धार्मिक साहित्य में से उतने ही अनुकूल वचन हम दिखा सकते हैं, जितने अहिंसा के पक्ष में हमने दिखाये। राजनैतिक साहित्य आदि का तो कोई सवाल ही नहीं, उनमें तो ऐसे वचन हैं ही। किन्तु धार्मिक साहित्य में भी, जिसमें दुनिया श्रद्धा रखती है, अहिंसा के पक्ष में जितनी दलीलें पायी जा सकेंगी, उतनी ही इस प्रकार की गोली के बचाव की पुष्टि के लिए भी मिल सकेंगी। इस तरह शास्त्र-वचनों या अपनी परिस्थिति के वास्तविक परिज्ञान के आधार पर हम भले ही गोली चलाना जरूरी या उचित मान लें; किन्तु यह नहीं मान सकते कि वह चीज सर्वोदय-विचार या गांधी-विचार में बैठ सकती है। हमें बहुत हिचकिचाहट होती है, जब हम कभी गांधीजी का नाम लेते हैं। लेकिन उस नाम को हम टाल नहीं सकते, क्योंकि बच्चा जरूर चाहता है कि वह माँ का काम करे, नाहक माँ का नाम न ले। फिर भी जब उसी माँ के नाम के आधार पर कोई चीज की जाती है, तो फिर वह नाम बीच में आ ही जाता है। हम इस दलील में भी न पड़ेंगे कि गांधीजी होते, तो भी शायद इसका बचाव करते या इसे आशीर्वाद देते या न देते। जो जैसा मानना चाहे, उसे वैसा मानने का अधिकार है। किन्तु हमें भी अपनी तरह मानने का अधिकार है। इसलिए हम यही मानते हैं कि यह चीज गांधी-विचार के सर्वथा विरुद्ध है।

लेकिन अगर गांधी-विचार छोड़ दें, तो भी हम कहना चाहते हैं कि यह विचार किसी तरह हमारे दिल में नहीं बैठता। हमने महाभारत भी पढ़ा है, जिसमें इसकी बहुत छानबीन की गयी है। उस सबके बावजूद इसका हम बचाव नहीं कर सकते कि गोलियाँ चलें और किसी भी मौके पर उसकी तहकीकात न हो। लोग हमसे कहेंगे कि तहकीकात करके क्या करना है? इस पर हमारा यही कहना है कि हम किसीको कोई सजा देने के पक्ष में हैं ही नहीं। हमने तो कहा था कि चोर चोरी करता है, तो उसकी सजा यही हो सकती है कि तीन साल की सजा देने के बजाय उसे तीन एकड़ जमीन दी जाय। हम किसीको सजा दिलाने में दिलचस्पी रख ही नहीं सकते। फिर भी एक चीज को ऐसे ढाँका जाय, उसका बार-बार बचाव किया जाय, बचाव में गलत दलीलें भी पेश की जायँ—यह सब बहुत ही हृदय को वेदना देता है।

पक्षनिष्ठा सत्यनिष्ठा के प्रतिकूल

लोगों ने हिंसा की, यह तो स्पष्ट ही है। आखिर लोग तो लोग ही हैं। उन्हें प्रजा-जन के नाते ही नापा जायगा। पर हम जो जिम्मेवार नेता, राज्यकर्ता या समाज के सेवक हैं, उनकी विशेष जिम्मेवारी मानी जायगी। इसलिए जब हम लोगों से भी ऐसे काम होते और उनका बचाव किया जाता है, तो बड़ी वेदना होती है। इससे भी ज्यादा वेदना मुझे इसलिए होती है कि इसमें कांग्रेस के हमारे वे मित्र भी शामिल हैं, जिनके हाथ में कुछ सत्ता है और जो व्यक्तिगत तौर पर कहते हैं कि तहकीकात होनी चाहिए, पर वैसा जाहिर नहीं कर सकते। इसमें जो सत्य की हानि होती है, वह हमें दूसरी मनुष्य-हानि आदि से बहुत ज्यादा भयानक मालूम होती है। पर इसमें भी हम उन्हें अपने से अलग समझ करके दोष नहीं दे सकते, क्योंकि वे इसे सत्यनिष्ठा का एक अंग मानते हैं। हर मनुष्य जिस तरह अपने को समझता है, वैसा हमें समझ लेना चाहिए। हम समझते हैं कि इस तरह मौके पर न बोलना और लोकमत ऐसा न तैयार करना सत्य के लिए हानिकारक है। पर वे यह समझते हैं कि "पार्टी की एक 'निष्ठा' होती है। अपनी पार्टी ने एक काम किया और वह गलत है, तो आपस-आपस

में चर्चा आदि कर लें। लेकिन अपनी पार्टी के मुखिया उस बात के लिए तैयार न हों, तो वह चर्चा वहीं छोड़ दें। आम जनता में पार्टी के खिलाफ न बोलें।" आपस-आपस में जरूर कुछ बोलना और जाहिरा तौर पर बिलकुल ही न बोलना सत्यनिष्ठा का एक अंग माना जाता है, क्योंकि वह व्यक्ति पार्टी में दाखिल है। पार्टी के लिए पहले से ही हमारे मन में प्रतिकूल भावना है।

इन दिनों यह सारा दृश्य देखा। उससे हमारे मन में और भी प्रतिकूल भावना पैदा हो गयी। हम मानते हैं कि 'पार्टीलॉयल्टी' (पक्षनिष्ठा) भी सत्यनिष्ठा का एक सामान्य प्रकार, सीमित सत्यनिष्ठा है। किन्तु वह परम सत्य को काटनेवाला है, इसलिए उसका त्याग ही करना चाहिए। ऐसी पक्षनिष्ठा, जो सज्जनों को भी अनजाने ही दुर्जन बनाती है, वह हमें बहुत ही भयानक मालूम होती है। वह एक माया-सी है। तो इस तरह सत्य पर भी प्रहार आया और अहिंसा पर भी प्रहार आया। उस हालत में अगर हम यह कहें कि हिन्दुस्तान की आवाज अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसा के पक्ष में हो या उसने जो कुछ किया, उसका परिणाम दुनिया में कुछ हो, तो वह सारी अपेक्षाएँ बिलकुल गलत मालूम होती हैं। हमारी ऐसी आवाज का कोई असर न होगा।

वस्तुतः अहिंसा की चाह नहीं

'कॅमोफ्लाज' या ढोंग का भी असर होता है, पर अहिंसा की योजना में नहीं। हिंसा की योजना में उसका भी उपयोग है, स्थान है। अहिंसा तो तब फल देती है, जब कि उसमें सत्य हो। वह अहिंसा ठीक नहीं है, जिस अहिंसा में सत्य न हो और केवल इतना ही खयाल हो कि अपने देश की तरक्की के लिए शान्ति की जरूरत है। ऐसा अक्सर बोला भी जाता है कि "हम पिछड़े हुए देश हैं। हिन्दुस्तान जैसे एशिया के दूसरे कई देश भी पिछड़े हैं। दुनिया में अगर हिंसा चलेगी, तो उनका विकास रुक जायगा। इसलिए कम-से-कम १०-१५ साल तो हमारे लिए शान्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वैसे हमेशा ही हम शान्ति चाहते हैं, लेकिन इस वक्त उसके बिना हमारा बिलकुल काम न चलेगा।" लेकिन मुझे तो यह बोलना भी खतरनाक मालूम होता है। याने कुछ पिछड़े

देशों के विकास के लिए शान्ति की माँग दरअसल शान्ति की प्यास नहीं। अपने मन में इस तरह की माँग रखने पर हमारी वह नैतिक आवाज दुनिया में कुछ बलवान् न होगी।

गोआ का मामला

सामने गोआ का ही मामला है। यों तो यह बिलकुल छोटा-सा है, पर है वस्तुतः बहुत ही गहरा। उसके अन्दर कई मसले पेश हैं। हम नहीं चाहते कि गोआ पर आक्रमण करें। कहा जाता है कि यदि हम उस पर आक्रमण करेंगे, तो जीत लेंगे, पर इस बारे में भी मुझे कुछ शंका है। कारण वह इतना आसान नहीं, उसके साथ और भी कई ताकतें जुड़ी हैं। पर खैर, वह विचार छोड़ देता हूँ कि हम उस पर आक्रमण कर उसे जीत सकते हैं। फिर भी हम आक्रमण करना नहीं चाहते, क्योंकि हमारी अहिंसा की नीति है। इसमें भी बहुत ज्यादा शान्ति की शक्ति भरी है, ऐसा नहीं; क्योंकि हमने इसमें पुर्तगाल सरकार के खिलाफ 'पीसफुल मेजर' या कुछ शान्तिपूर्ण उपाय कर लिये हैं। कहते हैं कि कुछ हद-बंदी कर दी है और शायद कुछ व्यवहार भी बंद कर दिये गये हैं। यह तरीका शान्तिमय जरूर है, पर उसमें अहिंसा की शक्ति नहीं। याने इसके मूल में हमारा सामनेवाले के लिए कोई प्रेम नहीं है।

अहिंसा कैसे पनपेगी ?

अहिंसा की शक्ति तो तब प्रकट होती है, जब सामने के दोषी माने जानेवाले के लिए हमारे मन में कुछ प्रेम हो और हमारा कोई कदम उसकी उन्नति के लिए भी जरूरी समझकर उठाया गया हो। उसमें हमारा तो भला है ही, पर उसका भी भला है। जहाँ ऐसी स्पष्ट भावना हो, वहीं अहिंसा की ताकत प्रकट होती है, जिससे सामनेवाले का कुछ परिवर्तन होता या होना संभव दीखता है। किन्तु अगर हम एक 'निगेटिव' (निषेधात्मक) काम कर लें याने साक्षात् लड़ाई के बदले इस प्रकार का बहिष्कार कर, तो उससे शान्ति की शक्ति प्रकट न होती, भले ही हमने साक्षात् आक्रमण नहीं किया और इतनी मर्यादा हमने, हमारे राष्ट्र ने मान ली। एक ओर हम निषेधात्मक काम करते हैं, शांति की

जरूरत है, इसीलिए शांति की बात करते हैं और दूसरी ओर अपने समाज में गोलियाँ भी चलाते हैं। उसका बचाव भी हमारे पास पड़ा है, पक्षनिष्ठा के कारण उसका निषेध भी हम प्रत्यक्ष खुलकर नहीं करते। पर हमें समझ लेना चाहिए कि यह वृत्ति अहिंसा की ताकत निर्माण करनेवाली नहीं है।

इसलिए ऐसे मौके पर जब हम इकट्ठा होते हैं, तो मुख्य चिन्तन इसी बात का होना चाहिए कि यह अहिंसा कभी पनपेगी या नहीं। इसे हम सामने लाना चाहते हैं या किसी तरह अपना काम निभा लेना चाहते हैं? आज की राजनीति और परिस्थिति में हमारी निभ तो जायगी। हर जमाने की सरकार सज्जनों का बचाव कर ही लेती है, उनको पचा भी लेती है, उन्हें अपवादस्वरूप भी मान लेती है। इंग्लैंड में कल अनिवार्य सैनिक भर्ती (कॉन्स्क्रिप्शन) शुरू हो जाय, तो भी वे 'कांशियंशस आब्जेक्टर्स' (Conscientious objectors) उन्हें छोड़ देते हैं, उतना उन्होंने मेल-जोल कर लिया है। वैसे ही हमारे जैसे चन्द लोगों को आज का समाज या आज की सरकार निभा ले और हमारा निभ जाय। किन्तु हम यह नहीं मान सकते कि उससे हिन्दुस्तान में अहिंसा की शक्ति बनेगी।

अहिंसा-मूर्ति को शस्त्रों से प्रणाम

अभी प्यारेलालजी ने बहुत ही वेदनापूर्वक एक पत्र लिखा है। ३० जनवरी को दिल्ली में बापू की समाधि के सामने सभी लोग आकर प्रणाम कर जाते हैं। उसमें शायद मिलिटरी के लोग भी होते हैं, जो शायद अपने शस्त्रों के साथ ही जाते हैं। उसी पर प्यारेलालजी ने सवाल उठाया है कि एक अहिंसा की मूर्ति के लिए, जिसे हम 'युगावतार' कहते हैं, अगर आदर बताना है, तो हम अपने औजार जरा घर पर ही रखकर जायँ, तो क्या हर्ज है? उन्हें लगता है कि यह प्रदर्शन हिंसा-शक्ति का है। किन्तु यह एक 'सिम्बल' (प्रतीक) की बात आयी, लेकिन इसे छोड़ देता हूँ। उन्होंने और एक बात मुझे लिखी है कि "तुम जरा इसकी तहकीकात करो कि शायद उत्तर प्रदेश की सरकार तालीम में लश्करी शिक्षण शुरू करने की सोच रही है।" हिन्दुस्तान में हमारे देखते स्कूलों में

लश्करी तालीम लाजिमी की जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मान लीजिये, इन सबको रोकने में हम असमर्थ साबित हों और सिर्फ अपने जीवन का बचाव कर पायें, तो भी उतने से अहिंसा की ताकत प्रकट न होगी। इसलिए हमें इन सबका विचार करना चाहिए।

सत्याग्रह का संशोधन

सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम; यह सत्याग्रह की प्रक्रिया है। यही हमारा वज्र-कवच है, उसका हमें संशोधन करना चाहिए। इसकी काफी छानबीन करनी चाहिए कि इन सबके लिए हमारे पास कोई उत्तर है या नहीं। उत्तर तो जरूर होना चाहिए। अहिंसा में उत्तर नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। इसका हमें संशोधन करना और उस दृष्टि से हमें अधिक सौम्य, अधिक मृदु बनना होगा। हमें अधिक सत्यनिष्ठ बनना होगा। मुझे लगा कि जो बाह्य कार्यक्रम हमने उठा लिया है, वह जरूरी ही है। उसके साथ-साथ वह कार्यक्रम भी जरा विचार के लिए एक बाजू रखकर इसका मानसिक चिन्तन करें। हम स्वयं इस प्रकार की तालीम लें और अपने भाइयों को भी दें।

हिंसा से विश्वास कैसे हटे ?

कुछ दिन पहले हरिभाऊजी ने अहिंसक सेना आदि के बारे में दो-तीन पत्र लिखे थे। उनमें यह विचार व्यक्त किया गया है कि "फौज आकर कुछ करे, इससे पहले हमारी शान्ति-सेना ही लोगों को रोकने की कोशिश करे। अगर उसे सफलता न मिले, तभी फिर फौज आनी चाहिए।" किन्तु यह विचार मुझे बहुत ही तकलीफ देता है। इसमें आखिरी विश्वास फौज पर, हिंसा पर है याने परमेश्वर हिंसा है। हमारे सारे प्रयत्न 'फेल' हो जायँ, तब हम ईश्वर की शरण हो जाते हैं। जब तक प्रयत्न 'फेल' नहीं होते, तब तक उन्हें करते ही हैं। वैसे ही अहिंसा आदि पहले कुछ तो कर ली, लेकिन अगर वह न जीते, तो लाचारी से हिंसा करनी ही पड़ेगी। यह एक विश्वास है और दूसरा विश्वास यह है कि "हिंसा से ही काम होगा—तात्कालिक ही सही, लेकिन काम तो हो ही जायगा।" ये दोनों विश्वास एक ही हैं। इस प्रकार का विश्वास हम समाज में सर्वत्र देखते हैं। हमें

ऐसी सेना बनानी होगी, जिसके सैनिकों को कुछ गुणों का अभ्यास हो। हमें सोचना चाहिए कि उस गुणाभ्यास में आज हम अहिंसा का क्या अमल कर सकते हैं? दुनिया में चलती हुई सारी हिंसा के बावजूद क्या हम समाज के किसी हिस्से के जीवन से निर्लिप्त रह सकते और एक स्वतंत्र शक्ति निर्माण कर सकते हैं, जो उसका मुकाबला करे।

अपरिग्रह का महत्त्व

अहिंसा और सत्य की बात तो मैंने की। बाकी के सब तत्त्व इसीमें से निकलते हैं। इसलिए उनके स्वतंत्र उल्लेख की जरूरत नहीं। फिर भी विशेष परिस्थिति में दूसरे तत्त्वों के उच्चारण और उनके लिए स्वतंत्र आयोजन करने की जरूरत पड़ती है। हमें लगा कि हम अहिंसा और सत्य, ये दो नाम लेते हैं, उनके साथ अपरिग्रह को भी रखें। उसे अध्याहृत न मानकर उसके लिए योजना भी करें।

भूमिदान का वातावरण भले ही सारे हिन्दुस्तान में निर्माण न हुआ हो, फिर भी कुछ प्रदेशों में काफी निर्माण हुआ है। बिहार के लोगों में वह भावना काफी निर्माण हुई है। उसके बिना लाखों लोगों का दान सम्भव नहीं था। वहाँ लाखों एकड़ भूदान ही नहीं, सम्पत्ति-दान भी मिला है; लेकिन वहाँ भी कानून की जिम्मेवारी जिन पर है, वे कानून बनाने में हिचकिचा रहे हैं। यह हिचकिचाहट ऐसों को है, जो बोलने में किसी भी क्रान्तिकारी से कम नहीं बोलते, पर प्रत्यक्ष करने के समय वैसा नहीं करते। आखिर इसका कारण क्या है? कारण यह है कि वह जिनके जरिये होगा, वे सब-के-सब अपरिग्रही नहीं, बल्कि परिग्रह के सिद्धान्त को माननेवाले हैं। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि परिग्रह जितना बढ़े, उतना ही अच्छा है। सबको परिग्रह हासिल नहीं है, इसलिए उतना बढ़ाना ठीक नहीं, यह अलग बात है। फिर भी वे परिग्रह का सिद्धांत मानते ही हैं और कम-से-कम अपने पास जो है, उसे तो छोड़ना ही नहीं चाहते। उसी हालत में उन्हें हिचकिचाहट होती है और फिर वे कई बातें उपस्थित करते हैं, भूमि के लिए ही कानून क्यों लागू किया जाय, सम्पत्ति के लिए क्यों न

लागू किया जाय, आदि। इस सबका मतलब इतना ही होता है कि वह छोटी चीज जो बन सकती है, वह अपरिग्रह के अभाव में नहीं बन रही है।

सारांश, अपरिग्रह एक बुनियादी विचार है और उस पर हमें अमल करना चाहिए। भूदान, सम्पत्ति-दान आदि के मूल में अपरिग्रह का ही सिद्धान्त है। हमें उस तरफ ध्यान देना और कार्यकर्ताओं की अपनी व्याख्या में उसका समावेश करना होगा। वैसे जीवन का शिक्षण देनेवाली हमारी संस्थाएँ अगर जगह-जगह न हों, तो कम-से-कम एक-एक प्रान्त में एक-एक अवश्य हो। वहाँ कार्यकर्ताओं को लिया जाय और उन्हें तालीम मिले। वे अपने जीवन को किस तरह इस ढाँचे में ढाल सकते हैं, इसका कुछ थोड़ा-सा ज्ञान उन्हें मिले। चार-छह महीने की ही क्यों न हो, ऐसी योजना हमें बनानी चाहिए।

शरीर-श्रम की जरूरत

अण्णासाहब हमसे कह रहे थे कि कोरापुट में आये उन्हें सालभर हुआ। इस बीच वे इस नतीजे पर आये कि शरीर-परिश्रम को जीवन में दाखिल किये बिना आदिवासियों पर असर डालने का या उनके साथ सम्बन्ध बढ़ाने का कोई साधन नहीं है। एक तो उनकी भाषा हम जानते नहीं, फिर यदि भाषा जान भी लें, तो भी सिर्फ भाषा से वहाँ बहुत ज्यादा कुछ न होगा। लेकिन उनके साथ मिलकर यदि हम परिश्रम करें, तो वही एक तरीका है, जिससे हम उनको अच्छे विचार दे सकेंगे। यह तो मैंने मान्य ही किया। उसके साथ अपना और एक विचार जोड़ दिया कि हम उन्हें कुछ ज्ञान, कुछ गुण सिखाने जा रहे हैं, पर गुरु तो तब बनेंगे, जब कि पहले शिष्य बनें। उनके पास एक बहुत बड़ा गुण शरीर-परिश्रम है। उसे पहले हम ग्रहण करें। उसके बाद ही हम अपना कोई गुण उनको देंगे। उनका जीवन शरीर-परिश्रम का जीवन है। इसलिए हमें शरीर-परिश्रम की आदत डालनी होगी। अण्णासाहब उस तरह की आदत डाल रहे हैं। हमारे कार्यकर्ताओं के सामने अहिंसा, सत्य और अस्तेय आदि अनेक बातें हैं, लेकिन इन तीन बातों को हम जरूर रखें और उस पर अमल करें।

निष्काम सेवा

हिन्दुस्तान की आज की आपत्तियों में एक आध्यात्मिक आपत्ति यह है कि

यहाँ से निष्काम सेवा मिट गयी है। आज यहाँ जो भी सेवा की जायगी, उसका कोई-न-कोई मूल्य चाहा जायगा। भले ही वह व्यक्तिगत हो या पक्ष के लिए। आज निष्काम सेवा बहुत ही दुर्लभ हो गयी है। स्वराज्य के पहले वह कुछ थी, क्योंकि तब कामना के लिए मौका ही कम था। लेकिन स्वराज्य के बाद वह बात चली गयी।

अभी हमने एक व्याख्यान में कहा था कि हमने सारा धार्मिक कार्य धर्म-संस्थाओं को और सारा सामाजिक आदि कार्य सरकार को सौंप दिया है। इसलिए खाना, पीना, सोना आदि नित्य-कार्य के सिवा और कोई कार्य हमारे लिए रहता ही नहीं है। फिर संस्था और सरकार के जरिये जो सेवा होने लगी, वह कुल-की-कुल सकाम हो गयी। उसमें निष्काम सेवा है ही नहीं। इसलिए हमें एक ऐसी सेवा-वृत्ति निर्माण करनी होगी, जो शुद्ध सेवा में विश्वास करती हो और जिसमें किसी प्रकार का और कोई हेतु न रहे। इसकी बहुत जरूरत है। ऐसे लोग चाहे थोड़े निकलें, चाहे आज उनकी शक्ति कम हो; किन्तु ऐसे जितने लोगों का संग्रह करेंगे, उतना ही हमारा काम फैलेगा।

सकाम सेवकों को सहन करें

निष्काम वृत्ति कार्यकर्ता की निष्ठा का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। उसके साथ ही उसका एक पथ्य यह है कि दूसरे असंख्य सकाम सेवा करनेवालों से हम अपने को ऊँचा न मानें और उनकी मदद लेते जायँ। अगर कोई निरुद्देश्य सेवा करनेवाला दूसरे किसी खास कामना रखकर सेवा करनेवाले को बर्दाश्त नहीं करता, तो उसमें भी पूर्ण निष्कामता नहीं। पूर्ण निष्कामता तो वह होगी, जो अपनी ही फिक्र करेगी। बाकी के लोग कामना-प्रेरित ही क्यों न हों, अगर सत्कार्य में आते हैं, तो आने दीजिये। उनकी मदद हम लेंगे। उनकी कामना की पूर्ति होती है, तो भी हमें कोई उज्र नहीं, ऐसी वृत्ति होनी चाहिए। ये दोनों वृत्तियाँ मिलकर ही निष्काम वृत्ति मानी जाय। अगर यह हो, तो हम असंख्य लोगों का सहयोग हासिल करेंगे। फिर भी हम किसी कामना में बह नहीं जायँगे। यह जो निष्कामता का दोहरा अर्थ मैंने रखा, हमारे कार्यकर्ताओं के सामने उसीका आदर्श होना चाहिए।

लोकनीति की निष्ठा

सारांश, आज की परिस्थिति पर मैंने निम्नलिखित तीन बातें सामने रखी हैं। पहली बात है : अहिंसा, सत्य, अस्तेय की। दूसरी बात है : निष्काम सेवा और सकाम वृत्ति सहन करना और तीसरी बात है : लोकनीति की निष्ठा। यह हमारे सेवकों की निष्ठा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस बार सर्व-सेवा-संघ ने जो प्रस्ताव किया, वह बहुत ही सुन्दर प्रस्ताव है। ऐसा प्रस्ताव कभी होता है, तो मेरे जैसे को बड़ा उत्साह आता है कि समझाने के लिए कोई चीज मिल गयी। यह प्रस्ताव ऐसा है कि उस पर बहुत बहस हो सकती है याने चर्चा को उत्तेजन देनेवाला प्रस्ताव है। "हम अगर वोट नहीं देते, तो क्या नागरिक के कर्तव्य की हानि नहीं होती ? अगर बहुत लोग हमारी बात मानें, तो क्या गलत आदमियों के हाथ में कारोबार नहीं जायगा ?" आदि कई प्रश्न आते हैं। उन सबके बावजूद वह प्रस्ताव हमारे लिए बड़ा कल्याणकारी है। लोकनीति के विषय में जितना मैं सोच रहा हूँ, उससे इतना निश्चय हो जाता है कि जो आज की राजनीति को, उसे तोड़ने के लिए भी, मान्य करेंगे, वे उसे तोड़ न पायेंगे। क्योंकि तोड़ने के लिए उसके बाहर रहना पड़ता है। आप वृक्ष के बाहर रहकर ही उसे काट पाते हैं, उस पर चढ़कर उसे तोड़ना चाहें, तो नहीं तोड़ सकते। इसलिए तोड़ने के खयाल से भी जिसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा हो, वह अत्यन्त सूक्ष्मतम मोह है। आज जिस हालत में दुनिया है, उसे देखते हुए मैं उसे निर्दोष मानने के लिए भी तैयार हो जाऊँगा। कल एक आस्ट्रिया के भाई को हमने कुछ समझाया, पर उन्हें यह मुश्किल रह गयी कि बाकी का तो सारा ठीक है, किन्तु सारे समाज के परिवर्तन के लिए अगर कहीं-न-कहीं सत्ता के केंद्र पर हमारा अंकुश न रहे, तो कैसे चलेगा ? इस अंकुश की बात को तो हम बराबर मानते हैं। पर हमारे मन की यह सफाई होनी चाहिए कि जब हम उससे अलग होंगे, तभी उस पर ज्यादा अंकुश रख सकेंगे।

आलोचना कब कारगर होगी ?

एक भाई ने हमसे कहा कि "पक्षीय राजनीति', 'सत्ता की राजनीति' में आपके न पड़ने की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि दुनिया में हो रहे गलत

कामों पर टीका भी नहीं हो रही है।" मैंने कहा कि यह बिलकुल उल्टी बात है। उन पर टीका इसलिए नहीं होती कि लोग पक्षों के अन्दर फँसे हैं। जो बड़ा पक्ष है, वह तो अपने पक्ष की निष्ठा के लिए टीका नहीं करता। जो उसका विरोधी पक्ष है, उसकी टीका की कोई कीमत नहीं होती। जिसकी कीमत हो सकती है, वह टीका नहीं कर सकता, क्योंकि पक्ष के अन्दर पड़ा है और वही पक्ष काम कर रहा है। दूसरा कभी टीका करता है, तो उसकी कीमत नहीं है। टीका तो तभी उज्ज्वल और कारगर होगी, जब वह पक्षातीत और लोकनिष्ठा रखकर ही की जाय। 'कारगर' इस अर्थ में कि उसका नैतिक परिणाम होगा, चाहे व्यावहारिक परिणाम तात्कालिक न हो।

अप्पासाहब का उदाहरण

मुझे अभी अप्पासाहब का उदाहरण यहाँ याद आया। उन्हें जो कुछ लगा, उन्होंने इस एस० आर० सी० (राज्यपुनस्संघटन-आयोग) के मामले में साफ तौर से कह दिया। उनके लिए महाराष्ट्र में काफी आदर है। जिन दस-पाँच व्यक्तियों के लिए वहाँ आदर है, उनमें उनकी गिनती है। आदर के बावजूद उनके उस कथन की महाराष्ट्र में बहुत विपरीत प्रतिक्रिया हुई। फिर भी किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी कि कोई ऐसा कहे कि उनकी टीका असद्हेतुमूलक है। 'इनका अभिप्राय गलत है, वह महाराष्ट्र के लिए हानिकारक है, वे महाराष्ट्र-द्रोही हैं', यहाँ तक भी पढ़ा, पर वह टीका 'असद्हेतुमूलक' है, ऐसा किसीने नहीं कहा। इसका बहुत बड़ा नैतिक असर होता है। चाहे तात्कालिक असर न भी पड़े, कुछ वातावरण शान्त होने के बाद उसका असर जरूर होता है।

कार्य-रचना

अब तो यह इलेक्शन (चुनाव) का समय है, इसलिए हम बहुत ज्यादा कुछ योजनाबद्ध कार्य करना नहीं चाहते। सिर्फ एक चिन्तन आपके सामने रख रहे हैं कि इलेक्शन के बाद हम अपने कार्यकर्ताओं की इस तरह रचना करें। हमारी तरफ से भूदान-समितियाँ बनानी हैं, तो सर्व-सेवा-संघ के लिए हमने जो आदर्श रखा है, उसी नीति को और उसी आदर्श को, उसी लोकनीति को कबूल

करनेवाले लोग ही उनमें रहें। बाकी के सब लोगों का सहयोग हम लेते रहें। वही मैंने यहाँ कहा है। लोकनीति के साथ सर्व-सम्मेलन भी होना चाहिए, यह उसीका एक अंग है।

आजकल कभी-कभी कोई बाबा पर भी आक्षेप करता है—ज्यादा नहीं, पर कोई-कोई करता है। कहता है कि बाबा का तो 'शंभु-मेला' है, याने शंभु की बारात में जैसे भूत, पिशाच, प्रेत आदि सब प्रकार के लोग थे, वैसे ही सब प्रकार के लोग इस जमात में हैं। कोई पी० एस० पी० वाला होता है। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट भी होता है और एकआध जनसंघी भी। अब कुछ लोगों को लगता है कि ऐसे गलत लोगों का सहयोग लेने से अपने कार्य में अशुद्धि आती है। किन्तु इस पर हम दो तरह से अभी सोच रहे हैं। एक तो हम जिसे अपनी तरफ से नियुक्त कार्यकर्ता समझेंगे या इस आन्दोलन के जो मूलाधार होंगे, उनकी लोकनीति में निश्चित निष्ठा होनी चाहिए। इसके साथ-साथ हम यह भी करेंगे कि सब लोगों को हृदय-परिवर्तन का मौका मिले—और सब पक्षों को इसमें दाखिल होना है और उन्हें दाखिल होने के लिए हम अवसर दें।

अहिंसा हिंसा को सहे

हिंसा में अहिंसक मनुष्य को सहन करने की शक्ति नहीं है, पर अहिंसा में हिंसक मनुष्य को सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। हिंसक राज्य होगा, तो सम्भव है कि वह अहिंसक लोगों पर ही पाबन्दी रखे, खुलेआम बोलने के लिए मौका न दे, मौके पर खतरनाक भी माने और उनकी वाणी रोके। लेकिन अगर अहिंसक राज्य है, तो हिंसा का प्रचार जो भी करना चाहे, उसे उसकी पूरी आजादी मिलेगी। हिंसा के मण्डन में जितने व्याख्यान देने हों, जितने लेख लिखने हों, सब लिखो। किसी भी ग्रन्थ को हमारे राज्य की तरफ से बंधन न हो, तभी अहिंसा खुलेगी। इसमें मैं बिलकुल निःशंक हूँ और बहुतों का भ्रम है। वे कहते हैं कि इस तरह हम भूदान-आन्दोलन को क्षति पहुँचा रहे हैं। किन्तु हम यह नहीं मानते कि इस आन्दोलन का मुख्य संचालन अगर ऐसे लोगों

के हाथ में हो, जो भिन्न-भिन्न पक्ष में हों, भिन्न-भिन्न तरीकों को मानते हों, कुछ हिंसा में भी विश्वास मानते हों, तो हमारे आन्दोलन को खतरा है। अभी तो कुछ हमने इसे भी सहन कर लिया था। लेकिन आगे के लिए हमारा मन साफ होना चाहिए कि हम अपने काम में सबका सहयोग लेने के लिए राजी हैं।

अहिंसा में सबको मौका देने की हिम्मत

समुद्र किसी भी नाले को स्वीकार करने से इनकार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि शुद्ध नदी ही इसमें आये और गंदे पानीवाला नाला इसमें न आये। इसलिए हम अगर इसे 'जन-आन्दोलन', 'अहिंसा का आन्दोलन' मानते हैं, तो अहिंसा में सबको पचा लेने की शक्ति होनी चाहिए। हमें उन्हें ग्रहण करना है, मौका देना है। समुद्र नाले को मौका देता है, तो अपना खारा रूप भी उसको देता है। याने अपना रूप देने के लिए उसे स्वीकार करता है। उसमें हिम्मत है। वह कहता है कि अगर तू आयेगा, तो मेरे रूप में क्या फर्क पड़ेगा ? अपना ही रूप मैं तुझे दूँगा। इसलिए अहिंसा में यह हिम्मत होनी चाहिए कि वे लोग आयें, तो उन्हें हजम कर लें। इसीलिए मैंने एक मिसाल दी थी कि अगर पटरी हमारी सत्त्वगुण की, अहिंसा की है, तो उतना बस है। फिर उसमें इञ्जन और डिब्बे वगैरह चाहे जो हों, उसमें रजोगुण आये, तमोगुण आये, हमें चिन्ता नहीं। लेकिन उस पटरी में कहीं दोष न हो, वह ठीक दिशा में जानी चाहिए। इस तरह हमें सब लोगों का सहयोग लेना है, उन्हें मौका देना है।

अगर मैं बड़ी पार्टी का मुखिया होता !

मान लीजिये, अगर मैं हिन्दुस्तान की ऐसी बड़ी पार्टी का मुखिया होता, जिसके लिए चाहते हुए भी सामने कुश्ती के लिए मल्ल ही न मिल पाता हो, तो मैं जाहिर कर देता कि "सब पक्षों के अच्छे लोगों का सहयोग चाहता हूँ।" अच्छे लोग याने जिनमें सचाई है। हिंसावाले भी सचाई से हिंसा मानते हैं, तो वह भी एक सचाई है। कम्युनिस्ट भी सच्चे दिल से उसे मानते हैं, तो वह भी सचाई है। ऐसे जितने लोग हों, उनमें से मैं चुनूँगा। फलाने-फलाने मनुष्य के

खिलाफ किसी मनुष्य को खड़ा न करूँगा। मैं ऐसे लोगों को, जो कुछ विचार पेश कर सकते हैं—चाहे वह कितना ही गलत विचार हो, तो भी उसके पीछे कुछ लोग हों, वे खरीदे न जानेवाले लोग हों—पार्लमेंट में आने दूँगा और कहूँगा कि उनके खिलाफ मुझे किसीको खड़ा नहीं करना है। यह मैं उन्हें कोई सुझाव देने के लिए नहीं कह रहा हूँ। उनके लिए मेरे पास कोई सुझाव नहीं, क्योंकि सुझाव देने का मेरा अधिकार भी नहीं है। वह अधिकार उसीको होता है, जो उस काम में पड़कर उस जिम्मेवारी को उठाये। मेरा यह गैरजिम्मेवार वक्तव्य है। इसलिए इसमें हमें सुझाव देने की कोई गुंजाइश नहीं। फिर भी मैं यह एक प्रकट चिन्तन अपने लिए कर रहा हूँ, क्योंकि हमारी तो कोई मिनिस्ट्री है नहीं। सारांश, भिन्न-भिन्न पक्षों के लोग, जो इस कार्य को सचाई से मानते हों और इसमें आना चाहते हों—चाहे उनके माने हुए विश्वास हिंसा के हों, अहिंसा के हों, ईश्वर-निष्ठा के हों, नास्तिकता के हों या जैसे भी हों—उन सबको हम मंजूर करें, यही हमारी वृत्ति होनी चाहिए। दूसरी बाजू से हमारे द्वारा माने हुए आन्दोलन के मूल सेवक दस-बीस नहीं, लाख-लाख की तादाद में होने चाहिए। वे लोकनीति में पूर्णतया विश्वास माननेवाले होंगे।

त्रिविध निष्ठा का सम्मेलन

हममें यह त्रिविध योग्यता विकसित होनी चाहिए। याने (१) अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह की मूलभूत दृष्टि, (२) निष्काम वृत्ति से सेवा करने की शक्ति और सकाम लोगों को सहन करने की वृत्ति तथा (३) लोक-नीति में श्रद्धा, इन सबका सर्व-सम्मेलन होना चाहिए। अगर ऐसी त्रिविध निष्ठा पैदा होगी, तो हिन्दुस्तान का वैसा चित्र न होगा, जैसा कि मैंने आरम्भ में खींचा था और जिसमें कहा गया था कि अहिंसा के लिए मौका नहीं दीखता। हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में अहिंसा के लिए बहुत ही आदर है। तमिलनाड में मुझे अनुभव आया है कि लोगों के दिलों को वह चीज जितनी खींचती है, उतनी दूसरी कोई नहीं। हमारे वचनों में से उन्हें उतना ही चुभता है, जिसमें कुछ हिंसात्मक भाव भरा हो। उतना भी हम न बोलें, तो बाकी उन्हें कुछ न चुभेगा, पूरा आकर्षक होगा।

भाषावार प्रान्त-रचना के गुण-दोष

अब मैं कुछ व्यावहारिक विषयों के बारे में कहूँगा। अभी हिन्दुस्तान में भाषावार प्रान्त-रचना हुई है। हमने कई बार कहा है कि इस विचार में कोई दोष नहीं। अच्छा विचार भी गलत तरीके से अमल में लाया जाय, तो दूसरी बात है; लेकिन उस विचार में अंगभूत कोई दोष नहीं। किसी-न-किसी प्रकार से अब उसका बहुत-सा निपटारा हो चुका है, कहीं कुछ थोड़ा बाकी है। जब हम देश की भाषा के अनुसार प्रान्त-रचना करते हैं, तो बहुत बड़ा लाभ होता है। उसके साथ-साथ एक दोष की भी सम्भावना रहती है, उसका प्रतिकार होना चाहिए।

भाषा विचार-प्रसार का माध्यम

आज अखिल भारतीय सेवकत्व बनने के लिए अनुकूलता नहीं दीख रही है। अंग्रेजों के आने के बाद हिन्दुस्तान में अखिल भारतीय नेतृत्व बना, अखिल भारतीय सेवकत्व नहीं। हाँ, गांधीजी जैसे कुछ थोड़े अखिल भारतीय सेवक जरूर थे। उस जमाने में अखिल भारतीय नेतृत्व इसीलिए बना कि एक अंग्रेजी भाषा थी। यह एक सुस्पष्ट बात है, जो हमारे लिए कुछ अगौरव की नहीं। अंग्रेजी भाषा के कारण ही विवेकानन्द का काम हुआ। अगर विवेकानन्द न होते, तो जो हालत तुकाराम की थी, उससे बेहतर रामकृष्ण परमहंस की न होती। हम यह नहीं कहना चाहते कि रामकृष्ण से तुकाराम की हालत कुछ कम थी। ऐसी कोई बात नहीं। किन्तु यही कहना चाहता हूँ कि विवेकानन्द हुए और उन्होंने अंग्रेजी भाषा के जरिये रामकृष्ण की कीर्ति सारी दुनिया में फैला दी। हम मानते हैं कि तुकाराम का दुनिया पर जो उपकार हुआ, उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। हम यह भी मानते हैं कि विवेकानंद न निकले होते, तो रामकृष्ण की हालत में कोई भी न्यूनता न पैदा होती। मैं नहीं मानता कि संतों के विचार के लिए किसी प्रकार के प्रचारकों की जरूरत होती है। फिर भी यह मानना ही होगा कि आज रामकृष्ण परमहंस का जो काम चला है, उसके लिए विवेकानंद बहुत बड़े प्रचारक बने और वे अंग्रेजी भाषा के कारण यह प्रचार कर सके।

हिन्दुस्तान रामानुज को बहुत बड़ा गुरु मानता है। किंतु तमिलनाड में जो महान् गुरु हो गये, उनके रामानुज शिष्य थे। उनके सामने रामानुज का सिर हमेशा झुकता था, जैसे ज्ञानेश्वर के सामने तुकाराम का सिर हमेशा झुकता था। वहाँ नम्मालवार जैसे महान् गुरु हो गये हैं। नम्मालवार का रामानुज पर जो उपकार हुआ, वह संस्कृत भाषा के जरिये सारे हिन्दुस्तान में फैला।

हिन्दी से ही अखिल भारतीय सेवकत्व

मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक विचार फैलाने के लिए किसी भी माध्यम की जरूरत नहीं होती, पर व्यावहारिक विचार फैलाने के लिए उसकी जरूरत होती है। एक जमाने में संस्कृत भाषा के जरिये सारे हिन्दुस्तान में विचार फैलते थे, फिर अंग्रेजी भाषा के जरिये वही काम हुआ। अब भाषावार प्रान्त-रचना हुई है, तो उस-उस भाषा में उस-उस प्रान्त का कारोबार चलेगा और चलना चाहिए। लेकिन इस हालत में अखिल भारतीय सेवकत्व मिट जायगा। उसे जारी रखना हो, तो हिन्दी भाषा के जरिये ही वह हो सकता है। आज अखिल भारतीय नेतृत्व खतरे में है, पर अखिल भारतीय सेवकत्व पैदा हो सकता है। उसकी मिसाल हमारा (प्रो०) वंग है। वह कोई नेता नहीं, पर अखिल भारतीय सेवक हो सकता है—सारे हिन्दुस्तान में जा सकता और बातें कर सकता है। वैसे ही उड़ीसा का पट्टनायक भी यह काम कर सकता है। अभी वह ज्यादा घूमता नहीं, क्योंकि काम करता है। किन्तु अगर वह घूमेगा, गुजरात वगैरह में जायगा, अपने अनुभव से दो शब्द कहेगा, तो किसी भी नेता के काम का वह परिणाम नहीं होगा, जो उसके शब्दों का होगा। अभी उसीके प्रान्त में उसका असर हो रहा है, पर उसे प्रान्त के बाहर भी जाना चाहिए।

अखिल भारतीय सेवकत्व की योजना

अखिल भारतीय सेवकत्व के लिए ज्यादा योग्यता नहीं चाहिए। अखिल भारतीय नेतृत्व के लिए योजना करना बहुत कठिन काम होगा, पर अखिल भारतीय सेवकत्व के लिए योजना करना कठिन नहीं। हममें से कुछ लोग ऐसे हों, जो अपने-अपने प्रान्त में काम करते हुए थोड़ा समय बाहर के प्रान्तों को दें।

हम ज्यादा नहीं, केवल छठे हिस्से की माँग करते हैं। वे लोग साल में दो महीने बाहर के काम के लिए दें। वे कोई विद्वान् हों, इसकी जरूरत नहीं। किन्तु वे अनुभवी हों, उनमें सेवा की वृत्ति हो और उन्हें समाज का कुछ निरीक्षण हो। ऐसे लोगों को सारे हिन्दुस्तान में काम करते रहना चाहिए। वे कम-से-कम १०० हों। इधर-से-उधर जाकर विचार पहुँचाना उनका काम होगा।

भूदान-आन्दोलन के लिए इसकी बहुत जरूरत है, क्योंकि हमारे हिन्दुस्तान का शरीर जड़ शरीर है। उसके एक कोने में कुछ घटना घटी, तो दूसरे कोने में पहुँचती ही नहीं। कोरापुट में इतना ग्रामदान हुआ, पर यहाँ तमिलनाड में उसका कोई असर नहीं है। साहित्य की कमी वगैरह इसके कई कारण हैं, जिनकी पूर्ति हम कर सकते हैं। किन्तु उतने से काम न होगा। साहित्य और अखबारों के जरिये शहरों तक ही खबर पहुँचेगी। गाँव-गाँव में खबर पहुँचाने के लिए शिविर आदि का ही आयोजन होना चाहिए और भिन्न-भिन्न तरह के अनुभवी लोगों को इधर-से-उधर जाना चाहिए। हमें ऐसी एक व्यापक योजना बनानी होगी।

हरएक के नाम पर एक-एक जिला

व्यापक योजना गहराई के बिना बेकार साबित होगी, इसलिए हमें गहराई की भी योजना करनी चाहिए। मैं इस बात पर दो साल से सोच रहा हूँ, पर जब ढेबर भाई ने मुझसे यही बात कही, तो मुझे लगा कि यह सूचना व्यावहारिक है। अक्सर मेरे मन में शंका रहती है कि मेरे सुझाव व्यावहारिक हैं या नहीं। ढेबर भाई ने मुझसे कहा कि आप मेरे नाम पर एक जिला क्यों नहीं दे देते? मेरे मन में यही विचार था कि हरएक का सम्बन्ध किसी-न-किसी जिले के काम से हो। हमारे नाम पर कोई-न-कोई जिला चाहिए। किसी जिले के नाम पर हम हों, ऐसी बात नहीं। वह होगा, तो बाकी के सब कार्यकर्ता शून्य हो जायँगे और वह मनुष्य अहंकारी बनेगा, जिससे वह और जिला भी गिर जायगा। इसलिए हरएक के नाम पर एक जिला हो। आफिस में काम करनेवाले मनुष्य के नाम पर भी एक जिला हो, नहीं तो वह केवल आफिस का ही काम करेगा और

एकांगी काम होगा। इस तरह तीन सौ जिलों के लिए हमारे पास मनुष्य न हों और आधे जिलों के लिए हों, तो भी काम चलेगा। फिर वह मनुष्य उस जिले के सब लोगों का सहयोग हासिल कर काम करेगा। यह भी हो सकता है कि दो-चार लोग मिलकर एक जिला ले लें। जैसे वृक्ष का सम्बन्ध मिट्टी से जुड़ा होना चाहिए, उसी तरह हमारा सम्बन्ध किसी-न-किसी जिले से होना चाहिए। सिर्फ आकाश में कितना घूमेंगे ?

अनुभवसिद्ध सलाह का महत्त्व

अभी हमारा वल्लभस्वामी इधर की खबर उधर पहुँचाना, उधर की इधर पहुँचाना, इस तरह व्यापारी का काम करता है। वह भी काम अच्छा है। उसकी जरूरत है। किन्तु व्यापारी के काम के साथ-साथ उसे कुछ उत्पत्ति का काम भी करना चाहिए। आज वह सलाह देता है, तो बिना अनुभव की सलाह होती है। पर उसके साथ-साथ अगर उसके हाथ में काम हो, तो वह अनुभव की कसौटी पर कसी बातें कहेगा। कुरान में मुहम्मद ने कई दफा कहा है कि 'मैं कोई कवि नहीं।' इसका मतलब यह है कि कवि की एक स्फूर्ति होती है, मैं स्फूर्ति से यह बात नहीं कह रहा हूँ; बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव से कह रहा हूँ। इसी तरह प्रत्यक्ष अनुभव होगा, तो हमारा काम अधिक तेजस्वी बनेगा। होना तो यह चाहिए कि सारा काम जनता पर सौंप दिया जाय और वह मनुष्य केवल शून्य बनकर रहे। अगर हम किसीकी नियुक्ति करें, तो वह शून्य न बनेगा। फिर वह कितना भी बड़ा आँकड़ा हो, तो भी शून्य से कम ही होगा, क्योंकि शून्य के पीछे दूसरे आँकड़े रह सकते हैं। इस तरह वह मनुष्य दूसरों से काम लेगा, सबके पीछे तगादा लगानेवाला होगा। वह सारा काम वहाँ के मनुष्यों के जरिये करेगा। यह होगा, तो हमारी बहुत-सी मुश्किलें टल जायँगी। केन्द्र पर से संचालन का बहुत बड़ा भार हट जायगा। स्थानीय प्रयत्न को पूरा मौका मिलेगा। अतः मेरी विशेष सूचना है कि हर कोई अपना संबंध एक-एक जिले से जोड़ ले और इस तरह जिले-जिले के सेवक तैयार हों।

तमिलनाड का हृदय खुला

अब तमिलनाड के विषय में भी कुछ कहेंगे। हिन्दुस्तान में कई मसले

हैं। उसमें यह भी एक मसला ही है कि उत्तर हिन्दुस्तान का दक्षिण हिन्दुस्तान से, खासकर तमिलनाड से किस तरह जोड़ हो। अन्दरूनी एकता तो है, लेकिन बाहर की एकता किस तरह बने, यह एक सवाल देश के सामने है। इसलिए तमिलनाड में भूदान के साथ और भी चीजें हमने जोड़ दीं और सब चीजों पर लोगों को समझाते हैं। इसका परिणाम छह महीने बाद यह हुआ है कि तमिलनाड का हृदय खुल गया है।

अब यहाँ के लोग ग्राम-दान देने लगे हैं, लोगों की तैयारी होने लगी है और लोग 'हाँ' बोलने लगे हैं। अभी हमने धारापुरम्‌वाले और कोइम्बतूरवालों से पूछा था कि "आप लोग कम-से-कम कितना ग्राम-दान हासिल करेंगे ? कम-से-कम आँकड़ा बताइये।" आखिर उन्होंने बहुत सोचकर कहा कि "हमें उम्मीद है कि अगर हम ४-५ महीने मेहनत करेंगे, तो १०० ग्राम-दान इकट्ठा कर सकते हैं।" अब वे यह कर सकते हैं, इसमें मुझे कोई शंका नहीं। वे काम में तो लगेंगे, किन्तु उनके मुख से 'निष्ठापूर्वक' इतना निकल गया, इसलिए मैं समझ गया कि तमिलनाड का हृदय खुल गया। पहले हृदय खुला हुआ नहीं था। याने छह महीने में इतना कार्य हुआ कि हमें तमिलनाडवालों ने अपना ही मनुष्य समझकर अपना लिया।

खादी का भी वचन

अब हम वहाँ जायँ और ऐसा क्रान्तिकारी कार्य हो, ऐसी अपेक्षा तमिलनाड से करें, तो वह एक प्रकार की धृष्टता ही कही जायगी। कोई तमिलों में से निकले, तो हम समझ सकते हैं। लेकिन बाहर का मनुष्य यहाँ आये, उसका तर्जुमा किया जाय, वह भला, बुरा, तटस्थ, सभी प्रकार का हो और उसके आधार पर एक जादू का असर हो जाय, ऐसी आशा करना ठीक नहीं। हमने भी ऐसी आशा नहीं रखी थी। धीरे-धीरे हम समाज के बन जायँगे, इसी उम्मीद से हमने काम किया। छह महीने में ग्रामदानी गाँव निकल रहे हैं। अब ऐसे भी गाँव निकलेंगे, जो ग्राम-दान के साथ-साथ हमारे दूसरे विचार का भी प्रचार करने की प्रतिज्ञा करेंगे। ऐसा एक गाँव तैयार भी हुआ है। उसने ग्रामदान तो दे

दिया और यह भी प्रतिज्ञा की है कि अपने गाँव में ही खादी बनायेंगे और वही पहनेंगे। मतलब यह कि यहाँ ऐसा वातावरण हुआ है कि जिसे हम 'ग्राम-योजना' कहते हैं।

संयोजन अखिल भारतीय हो

ऐसी योजना पाँच हजार गाँवों में हो सकती है और लोग उसे समझ-बूझ तथा सोच-विचारकर कर सकते हैं। हमने कहा था कि सर्व-सेवा-संघ को इस दिशा में कदम उठाना चाहिए। भारत में उसके कम-से-कम तीन विभाग हो जायँ : एक पूरब विभाग, जिसमें थोड़ा-सा उत्तर प्रदेश आ सकता है, बिहार में हो और दूसरा वर्धा में तथा तीसरा तमिलनाड में। इस तरह तीन शाखाएँ बनाकर वह समग्र-दृष्टि से काम करे, तो मेरा खयाल है कि जैसे कोरापुट में एक नमूना होगा, जैसे बिहार में एक नमूना होगा, जैसे मध्यप्रदेश में एक नमूना होगा, वैसा ही या शायद उससे एक विशेष प्रकार का नमूना तमिलनाड में हो सकता है। 'विशेष प्रकार' का इसलिए कहा कि कोरापुट का नमूना, तो हमारे लिए एक बड़ा ही 'प्रेक्टिसिंग' स्कूल है, बहुत ही पुण्य-कार्य है। वहाँ हमें पिछड़ी हुई जमातों की सेवा और बिलकुल नये तरीके से सब-का-सब निर्माण करने का मौका मिलता है। अभी तो 'पोस्ट ग्रेज्युएट कोर्स' चल रहा है। अभी तक जितनी विद्या हासिल की होगी, सबकी परीक्षा वहाँ होगी। वह एक विशेष प्रकार का काम है।

तमिलनाड का 'पानी' चाहिए

तमिलनाड की बात दूसरी है। यहाँ के सभी लोग समझदार और बुद्धिमान् हैं। वे जो कुछ करेंगे, विचारपूर्वक, सोच करके ही काम करेंगे। अगर ऐसा सोचकर काम करनेवाले पचास भी गाँव हो जायँ, तो यहाँ सर्वोदय का बहुत बड़ा प्रयोग हो सकता है। हमने तमिलनाडवालों से कहा है कि 'हम यहाँ का कुछ पानी उधर ले जाना चाहते हैं। हमारा पुराना रिवाज है कि समुद्र का पानी लेकर हम उधर जायँ और उधर से गंगा-जल लेकर यहाँ आयें। हम कोरापुट और बिहार का पानी लेकर यहाँ आये और यह गंगा बहायी। अब इसके बदले यहाँ हमें समुद्र का पानी दीजिये, उसे लेकर हम चले जायँगे। कुछ तो यहाँ

तमिलनाड का 'पानी' होना ही चाहिए। हम चाहते हैं कि इस दृष्टि से सर्व-सेवा-संघवाले सोचें और यहाँ अपना एक मजबूत स्थान बनायें।

तमिलनाड को हम पूरा न्याय देना चाहते हैं। इसलिए वे हमें जितने दिन रखना चाहें, उतने दिन रहने के लिए हम राजी हैं। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि बाबा का हम उपयोग कर रहे हैं। यह नहीं कि बाबा उनका उपयोग कर रहा है। वे बाबा के जितने समय की माँग करें, हम उतना समय देने को राजी हैं। हमने कह दिया है कि आप हमें १२ मार्च को तमिलनाड से मुक्त कर दें। किन्तु अगर विशेष परिस्थिति निर्माण कर हमें आप यहाँ और रखना चाहें, तो भी हम रहने के लिए तैयार हैं। हमने ऐसी मर्यादा नहीं रखी कि यहाँ हमें पानी न मिले, तो भी बिना पानी के हम चले जायँगे। 'हम समुद्र का घड़ा भरकर ले जाना चाहते हैं,' यह हमने तमिलवालों से कह दिया है।

निरुपाधि होकर मुक्त विहार की इच्छा

इसके बाद हमारी ऐसी वृत्ति है कि हम घूमते चले जायँ। कहीं शिविर हो, तो शिविर के लिए जायँ, कहीं चर्चा हो, तो चर्चा के लिए जायँ और सर्वोदय आदि पर चर्चा तो हमारी चले ही। फिर भी मेरी मुक्त विहार करने की इच्छा है। इसलिए नहीं कि आज के इस कार्यक्रम से कुछ तकलीफ हो रही है; बल्कि इसलिए कि मुक्त विहार से ही इसके आगे हमारा काम अधिक अच्छा बनेगा। खासकर जब हम महाराष्ट्र और गुजरात में जायँगे, तो हमारे मन में आया है कि यह भूदान आदि सारा कवच नीचे उतार देंगे। जैसे नग्न लड़का माँ के पास पहुँचता है, उसी तरह नग्न रूप में हम वहाँ पहुँचेंगे। हम वहाँ कहेंगे कि "हमें कोई खास सुनाना नहीं है। सिर्फ आप लोगों की सेवा करनी है, चर्चा करनी है, सलाह-मशविरा करना है। जो आप सुनायेंगे, वह सुनना है। अगर आपको परिवर्तन की जरूरत हो, तो हमें भी परिवर्तन करना है।" अगर तमिलनाडवाले यहाँ से परिपूर्ण समुद्र-कलश के साथ हमें भेजें, तो हम समझते हैं कि उसके आगे और व्यक्तिगत पुण्य सम्पादन करने की हमें कोई जरूरत न होगी। यद्यपि यह जो पुण्य सम्पादन किया, वह व्यक्तिगत नहीं,

फिर भी उसमें व्यक्तिगत स्वरूप आ ही जाता है। वह व्यक्तिगत स्वरूप बिल्कुल छूट जाय और मैं 'केवल' होकर रहूँ। संस्कृत के इस 'केवल' शब्द में बहुत भरा है। मुझे उम्मीद है कि गुजरात और महाराष्ट्र के सेवक इस बात का रहस्य समझ जायँगे।

हमें अपने मन में यह कोई अभिमान नहीं कि मैं गुजरात, महाराष्ट्र को कोई नया विचार दे सकूँगा। पर यह जरूर था कि एक काम हमने लिया है और उसके लिए सब विचार समझायें। उसके मूल में है काम। कार्य होता जायगा—हमारा विश्वास है कि वह बहुत ज्यादा और गहरा भी होगा—पर उसे सामने न रखते हुए हम अकर्तृस्वरूप होकर जायँ। गुजरात से हमें बहुत मिला है। महाराष्ट्र में हमने संस्कृत को छोड़ जितना मराठी-साहित्य पढ़ा है, उतना तो किसी भी भाषा का साहित्य पढ़ा नहीं है। यद्यपि दुनिया की बहुत-सी भाषाओं का बहुत गहरा असर हम पर हुआ है, फिर भी अगर हम कहीं बीमार पड़ जायँ और सहज कोई 'डेलीरियम' हो जाय, तो हम नहीं समझते कि सिवा मराठी या संस्कृत के और कोई ऐसा वचन सहज भाव से निकले, क्योंकि वे बिल्कुल अन्दर घुस गयी हैं। इसमें ऐसी कोई बात नहीं कि उन वचनों में कोई विशेष शक्ति है।

एक ईसाई भाई आये थे, उनसे बात हो रही थी। उन्होंने हमसे पूछा कि आपने बाइबिल से क्या पाया? उन्हें बड़ा आश्चर्य लगा कि हमने ऐसी बहुत बातें बतायीं, जो शायद उन्होंने सोची भी नहीं थीं, खासकर बाइबिल के 'न्यू टेस्टमेंट' से और विशेषकर 'ओल्ड गॉस्पल' से। उस पर हम व्याख्यान देने बैठेंगे, तो जरूर ऐसी चीजें दुनिया के सामने रखेंगे और बता देंगे कि यह चीज हिन्दू-धर्म और इसलाम में कम, पर यहीं ज्यादा मिलती है। इतना सब होने पर भी आखिर हमने कहा कि हम नहीं कह सकते कि बहुत-सी भाषाएँ हम न सीखे होते, तो हमारी आध्यात्मिक बनावट में कोई फर्क आता। क्योंकि बचपन में जो संस्कृत, मराठी और पीछे गुजराती वचन हमने पढ़े और सुने, वे हमारे लिए बिल्कुल ही पर्याप्त हैं। दूसरे जितने भी वचन हमने सुने, उन वचनों से उस भावना की ही परिपुष्टि हुई। उसकी ताकत बहुत बढ़ गयी। बाकी के

सब साहित्य का हम उपकार मानते हैं, पर मूलभूत चीज जो हमें मिली है, उसके लिए इन भिन्न-भिन्न धर्मों से हासिल किये हुए को हम बहुत जरूरी न मानेंगे।

सारांश, महाराष्ट्र और गुजरात से हमने सब कुछ पाया है। इसलिए वहाँ देने के वास्ते, तो कुछ हमारे मन में है ही नहीं। हम तो सेवा के लिए वहाँ जायँगे। अपने मन में कोई खास विचार, कोई उपाधि, कोई प्रोग्राम, कोई कार्य हम न रखेंगे। लेकिन ऐसा होने के लिए तमिलनाड की तरफ से हमें एक पूर्ण कुम्भ समुद्र के पानी से भरा मिलना चाहिए।

बीमारी के लिए क्षमा-याचना

हम बीमार पड़े, इसलिए हमें कुछ लज्जा भी लगी। यह टल सकता था, ऐसा हम समझें और इसकी परिस्थिति में बहुत कारण हैं, ऐसा हम नहीं मानते। कई गलतियाँ हो जाती हैं, जिनका मनुष्य को भान नहीं होता। वह त्रुटि जो भी हो, हमने देख ली है। बीमार हमें नहीं पड़ना चाहिए था। हमने गीता पर टीका करते हुए 'गीताई कोष' में एक नोट दिया है : सतोगुण का लक्षण भगवद्गीता में दिया है कि उससे 'प्रकाशकम् अनामयम्' अर्थात् वह ज्ञानरूप प्रकाशमय होता है और उसमें आमय याने रोग नहीं होता। आरोग्य-दायी होता है। अक्सर अपने देश में यह माना गया है कि सतोगुणी लोग नीतिमान्, बुद्धिमान् और चरित्रवान् होते हैं। लेकिन निःसंशय वे तीव्र बुद्धि के होते हैं, ऐसा नहीं माना गया। 'सतोगुणी मनुष्य ही बुद्धिमान् हो सकते हैं,' यह उस गीता-वचन का अर्थ है। साथ ही ऐसा तो बिल्कुल ही नहीं माना गया कि 'सतोगुणी मनुष्य को बीमार नहीं होना चाहिए। जहाँ कुछ बीमारी हुई, वहाँ कुछ-न-कुछ रजोगुण, तमोगुण आ गया।' बल्कि यही माना जाता है कि 'आखिर यह प्रकृति का धर्म है और ईश्वर के हाथ में है। सतोगुण के साथ आरोग्य का कोई खास सम्बन्ध नहीं।' फिर भी मेरा अपना विश्वास उस वचन पर है और मैं मानता हूँ कि सतोगुण में जैसे चरित्र और नीति होती है, वैसे ही कुशाग्र बुद्धि और सम्पूर्ण आरोग्य होना ही चाहिए। नहीं तो सतोगुण में कुछ

कमी है, अनुभव भी ऐसा ही आता है। जब से कुछ भान होने लगा, तभी से मुझे यह अनुभव होता रहा है कि बिना किसी कसूर के कभी मैं बीमार नहीं हुआ। कहीं-न-कहीं गलती हुई है और उस गलती का दर्शन भी हुआ है। उसके लिए मैं क्षमायाचना करता हूँ।

पलनी (मदुराई)
२०-११-'५६

'सत्-आवन' की आवाज : १० :

इन दिनों मुझमें आत्यन्तिक एकाग्रता आयी है। वैसे जो भी काम लिया जाय, उसे एकाग्रतापूर्वक करने की मेरी आदत है। किन्तु इस वक्त मानसिक अनुभव विशेष प्रकार ही आया है। अभी शंकररावजी ने उसका जिक्र किया था। मेरा इरादा नहीं था कि उसका उच्चारण करूँ कि यात्रा के लिए निकलने पर मुझे मूर्च्छा-सी आयी, इसलिए मैं रुक गया। वैसे मुझे पहले से ही अन्दर से भास था कि शायद आज मैं यात्रा न कर पाऊँगा। फिर भी बिना अनुभव के, अन्दाज से निर्णय करना उचित नहीं मालूम हुआ, इसलिए निकल पड़ा।

शायद यह एक प्रकार से अविवेक ही माना जा सकता है, पर है एकाग्रता का ही परिणाम। पतञ्जलि का एक सूत्र है : 'ततः पुनः शान्तोदितो तुल्य-प्रत्ययो चित्तस्यैकाग्रता परिणामः।' एक क्षण में जो भावना शान्त हुई और उसके बाद दूसरे क्षण में जो भावना उठी, वे दोनों जब तुल्य हो जाती हैं, तो एकाग्रता का परिपाक समझ लेना चाहिए। याने 'एक ही भावना सतत जारी रहे', ऐसा वह नहीं बोल रहा है। उसे भी एकाग्रता कहते हैं। किन्तु इस सूत्र में जो कहा गया है, वह तो एकाग्रता का 'परिणाम' याने परिपाक है। एक ही भावना कायम रहना भिन्न वस्तु है। भावना प्रतिक्षण उठती हो और प्रतिक्षण लीन होती हो, ऐसी उठने और लीन होने की क्रिया जारी हो, तो वह प्रवाह चलता है। किन्तु लीन होने पर उठनेवाली भावना वही हो, वही भावना फिर-फिर से उठती और लीन होती हो, तो यह एकाग्रता का परिणाम है। इन दिनों मुझे

उसीका अनुभव हुआ। यहाँ कई प्रकार की चर्चाएँ हुईं, यात्राओं में भी अनेक विषयों पर चर्चा चलती है। किंतु वे सारी चर्चाएँ ऊपर-ऊपर से होती हैं और अन्दर से उसी क्रान्ति की कल्पना का जप चलता रहता है, ऐसा मैं अनुभव कर रहा हूँ।

दुनिया की संशयाकुल अवस्था

अभी एक भाई ने कहा कि 'सन् सत्तावन में चमत्कार हो सकता है।' एक अजीब-सी बात है! अभी उधर हंगेरी, पोलैंड आदि में बहुत कुछ गड़बड़ी हुई। दीख तो यही रहा है कि जिस वक्त हंगेरी पर रूस अपना दबाव डालता है, उसी वक्त वह एक यह भी तजवीज पेश कर रहा है कि 'हम निःशस्त्रीकरण के लिए तैयार हैं, हम एटम और हाइड्रोजन के अपने प्रयोग भी बन्द करने के लिए तैयार हैं। यद्यपि आइक के इस प्रस्ताव में कि शस्त्रास्त्र-शक्ति की खुली जाँच हो, हम परिणामकारक शक्ति नहीं मानते, फिर भी उसके लिए हम राज़ी हैं।' पहले वे इसके लिए राजी नहीं थे। सारांश, बड़े-बड़े राष्ट्र इतनी-इतनी संख्या में सेना रखें, यह जो चल रहा है, वह सब निरा ढोंग नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि देश के चुने हुए नेताओं के, जिन पर सारे देश की जिम्मेवारी डाली गयी है, दिमाग में बहुत ही बेचैनी है। कई मसले पेश हैं, परस्पर-विरोधी दावे किये जा रहे हैं, उन सबमें से कोई मार्ग नहीं निकल रहा है, कुछ सूझ नहीं रहा है। इधर वे सैन्य पर से श्रद्धा छोड़ नहीं पा रहे हैं, उधर सैन्य पर श्रद्धा भी बैठ नहीं रही है। चाहे गलत ही क्यों न हो, कोई श्रद्धा होती है, तभी कुछ कर्मयोग चलता है। भले ही उसका परिणाम खराब हो, पर कर्मयोग के लिए कम-से-कम निश्चय तो चाहिए ही। लेकिन आज जिम्मेदार नेताओं की मनःस्थिति ऐसी है कि उन्हें किसी बात का निश्चय नहीं हो रहा है, वे संशयाकुल अवस्था में हैं। ऐसी हालत में जो अपने दिमाग को सुनिश्चित रख सकें, निःसंशय और शांत रख सकें, उन्हें दुनिया का नेतृत्व करना होगा—चाहे वे नेतृत्व करना चाहते न हों, तो भी करना ही पड़ेगा।

अहिंसा की दिशा में विचार-प्रवाह

आजकल दीखने में तो ऐसा ही दीखता है कि कब विश्व-युद्ध शुरू होगा;

कोई नहीं कह सकता। फिर भी मैं मानता हूँ कि जो शक्तियाँ काम कर रही हैं, वे अहिंसा की दिशा में ही काम कर रही हैं। यह दूसरी बात है कि अहिंसा को मौका देने के पहले काफी विप्लव भी हो जाय, नियोजित नहीं, बिना योजना का ही। उसके बारे में कोई नहीं कह सकता, पर मुझे इसमें कोई संदेह नहीं दीखता। जितना सोचता हूँ, उतना यही दीखता है कि सारी वृत्तियाँ एक ही तरफ आ रही हैं। यहाँ हम कह रहे हैं कि 'चुनाव के तरीके गलत हैं, पार्टी-पॉलिटिक्स (पक्ष-भेद की नीति) ठीक नहीं, लोकशाही में कुछ सुधार होना चाहिए' आदि। ये विचार दो-चार साल से हम बोल रहे हैं। किन्तु आज वे उन लोगों को भी सूझ रहे हैं, जिनसे इनकी अपेक्षा नहीं हो सकती थी। आज कांग्रेस के नेताओं को भी ऐसा ही लग रहा है। आखिर यह कौन कर रहा है? हम यह दावा नहीं कर रहे हैं, न कर ही सकते हैं और करना गलत भी है कि हमें जो विचार सूझा, उसका यह असर है।

वास्तव में दुनिया में कोई एक शक्ति है, जो विचार सुझा रही है। इसीलिए समान रूप में विचार-प्रवाह चल रहे हैं। वेद में इन्हें 'मरुद्‌गण' कहते हैं। ये वायु से भिन्न स्थूल वस्तु हैं। मरुद्‌गण चिन्तनयुक्त और बहते हैं। इसका मतलब है, चिन्तन के प्रवाह चलते हैं। पहले से सतत वह जारी है। एक-एक जमाने में भिन्न-भिन्न स्थानों में एक ही विचार अनेक को सूझता है। समय के खयाल से यह कहा जा सकता है कि फलाने को वह विचार पहले सूझा और फलाने को बाद में। जिसे पहले सूझा, उसने प्रेरणा दी, ऐसा समझना गलत है। किसीको पहले सूझा, यह एक आकस्मिक घटना है। मरुद्‌गण बह रहे हैं और उसका अनुभव हमें प्रतिक्षण आता है।

हम अखबार पढ़ते हैं, तो लगता है कि जैसा तुलसीदासजी ने कहा है: "शतरंज को सो समाज, काठ को सबै समाज।" शतरंज का खेल चल रहा है। सभी काठ के हाथी-घोड़े आदि हैं, काठ के सिवा और कोई चीज ही नहीं। नाहक भेद निर्माणकर हम खेल रहे हैं, व्यर्थ ही यह सारा चल रहा है। शस्त्रास्त्र बढ़ाओ, बम के प्रयोग करो आदि व्यर्थ का खेल चल रहा है। फिर भी इन

सारी शक्तियों का उद्देश्य निश्चित ही अहिंसा में परिवर्तित होना है, इसमें हमें संदेह नहीं है।

अचिंत्य शक्ति का चमत्कार

१९५७ में क्या नहीं हो सकता, कोई नहीं कह सकता। पर हमने क्या समझकर १९५७ का उच्चारण किया, यह भी हम नहीं कह सकते। इतना हमें जरूर लगता है कि अनेक की इच्छा-शक्ति अनिच्छा से इकट्ठी हो रही है। मैं एक विचित्र भाषा बोल रहा हूँ कि 'अनिच्छा से इच्छा-शक्ति इकट्ठी हो रही है।' इसलिए जिनके विचारों में काफी भेद था, उनके विचारों का भी सम्मेलन हो रहा है। वे नजदीक आ रहे हैं। हिन्दुस्तान के कम्युनिस्टों का एक पुराना इतिहास है। उनके कुछ हथकंडे, तरीके हैं, जो लोगों को मालूम हैं। इसलिए बहुत-से लोग उनकी तरफ संशय से देखते हैं। किन्तु वे संशय के नहीं, सहानुभूति के पात्र हैं। निश्चय ही वे अहिंसा की तरफ आ रहे हैं। अभी श्रीमन्‌जी ने कहा कि 'कम्युनिस्टों ने अपना रवैया बदला है, ऐसी बात नहीं।' मैं मानता हूँ कि उन्होंने जान-बूझकर भले ही न बदला हो; पर उनके विचार निश्चित ही अहिंसा की तरफ आ रहे हैं। हिन्दुस्तान के अन्दर भी और बाहर भी परिस्थिति कुछ ऐसी ही पैदा हो रही है। कम्युनिस्टों के तरीके गलत ही होते हैं, प्रतिकार की शक्ति निर्माण न होने तक ये ऐसा करेंगे, आदि बातें मैं नहीं मानता। आज भी उनमें प्रतिकार की शक्ति है, फिर भी वे अपनी गलत कल्पना छोड़ने के लिए मजबूर हो रहे हैं। एक शक्ति है, जो भूदान की प्रेरणा दे रही है और वही कम्युनिस्टों के चिन्तन में परिवर्तन ला रही है।

यह परवशता भी गौरव की बात !

भूदान का विचार हम अभी ऐसा बलवान् नहीं कर सके हैं कि उसीसे उन्हें उत्तर मिला हो। हमने प्रयत्न ही क्या किया है ? बस, थोड़ा-सा घूमते रहे हैं और लोगों को समझाते हैं। किन्तु जैसा कि आज विमला ने कहा, 'हम कहाँ-से-कहाँ चले गये हैं !' किसी आन्दोलन की फल-श्रुति का नाप लेना हो, तो कितनी

एकड़ जमीन मिली, आदि बातें नहीं देखी जातीं। वह तो एक दिन में हो सकता है, उसका गणित नहीं हो सकता। किन्तु कल्पना में हम कहाँ-से-कहाँ गये, यही देखना पड़ता है। वह भी सोच-विचार कर नहीं गये। "भूदान से ग्राम-दान निकलेगा, फिर हम ग्राम-राज्य तक पहुँचेंगे, स्वतन्त्र जन-शक्ति की बात सोचेंगे और शासन-मुक्त समाज की तरफ जायेंगे"—ये सारी बातें हम खुद नहीं जानते थे। 'शासन-मुक्त समाज' शब्द भी देर से निकला, पहले मुझे वह नहीं सूझा। हो सकता है कि यों अभावित रूप से पहले भी हमने इस विचार का उच्चार किया हो और इसके लिए कोई अभावित शब्द भी पहले से चल रहा हो। फिर भी जहाँ तक हमें याद है कि यह कल्पना स्पष्ट रूप से इन दो-तीन सालों के अन्दर जैसी आयी, पहले वैसी नहीं थी। इस तरह से एक योजना हो रही है, उस योजना के अन्दर हम सब काम कर रहे हैं।

इसमें परवशता है, ऐसा आक्षेप उठाया जा सकता है। मैं उसे कबूल करता हूँ। इसे उस कल्पना का गौरव मानता हूँ। इसमें परवशता जरूर है। किन्तु 'पर' 'दूसरा' नहीं, 'परम तत्व' या परमेश्वर की ही वशता है। जहाँ हमें यह महसूस हो कि हम केवल औजार हैं, वहाँ कार्य बनता ही है। हमें ऐसा ही महसूस हो रहा है। इसलिए यदि हम सिर्फ अपनी बुद्धि से सोचें, तो इस कार्य के साथ न्याय न करेंगे। हम यह नहीं कहते कि बुद्धि का प्रयोग ही न करें। भगवान् ने जिन्हें बुद्धि दी है, वे उसका उपयोग जरूर करें। इतना ही कहना चाहते हैं कि बुद्धि के उपयोग का भी कहीं अन्त होता है। ये शक्तियाँ उसी क्षेत्र में काम कर रही हैं, जहाँ हमारी बुद्धि की पहुँच नहीं है।

पण्डितजी का मानस भी अनुकूल

हमने चुनाव की टीका की, यह हमारी अपनी स्वतन्त्र सूझ नहीं। गांधीजी ने भी पहले ऐसी कुछ बातें कही थीं। हमने भी जब गया में वह विचार प्रकट किया, तो पहले से उस पर कुछ सोचा नहीं था। मैंने पण्डितजी (नेहरूजी) को पत्र लिखा कि आप सम्मेलन में आयें, तो मुझे अच्छा लगेगा। इस तरह का पत्र ऐसे महापुरुष को लिखना, जिनके पीछे कई काम हों, जो सारी बातें जानते

हों और जो सोचते-समझते हों कि कहाँ जाना उचित है, धृष्टता ही थी। मेरी तरफ से ऐसी धृष्टता कभी नहीं होती, पर मैंने उस वक्त पत्र लिखा और वे काफी तकलीफ उठाकर आये। मुझे लगा कि मैं कुछ विचार उनके सामने पेश करूँ, जिससे कुछ ज्ञान-चर्चा हो सके। गीता में कहा है कि "तद्विद्धि प्रणि-पातेन परिप्रश्नेन सेवया।" उस तरह केवल परिप्रश्न करने के नम्र विचार से ही मैंने दो-तीन बातें उनके सामने रखीं। मेरे मन में यह खयाल नहीं था कि उनके सामने कुल समस्याएँ पेश करूँ। उनका फौरन जवाब आये, ऐसी भी मेरी कोई वृत्ति नहीं थी। सहज कुछ विचार पेश किये। १९४८ में वर्धा के पहले सर्वोदय-सम्मेलन में मैंने इसी तरह से कुछ सवाल पेश किये थे। अचानक ही मेरे मन में वे विचार आये थे। उन्होंने वहाँ कुछ जवाब दिया। स्वाभाविक ही उसमें कुछ निश्चय-वृत्ति की अपेक्षा नहीं थी और वह संभव भी नहीं था। किन्तु दो साल के बाद वे फिर मिले, तो उनका मानस उसके लिए कुछ तैयार दीखा। यह सारी अहिंसा की तैयारी है। अभी एस० आर० सी० के मामले में ऐसी कई घटनाएँ हुईं, जिनसे ऐसा भास होता है कि नियति की कुछ योजना चल रही है।

हम क्रान्ति के लिए तैयार रहें

मैं कहना चाहता हूँ कि हम बुद्धि का उपयोग कर अपने विचार खंडित या कुंठित न करें। कुछ लोग कह सकते हैं कि अभी तक जो हुआ, १९५७ में उससे ज्यादा क्या होगा? यह बात बिलकुल सही होती, अगर हम अपनी ताकत से यह काम करते होते। मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं कि अगर हम अपनी ताकत से यह काम करते होते, तो '५७ तक ही क्या, १०० साल में भी वह पूरा न होता, क्योंकि इसमें हृदय-परिवर्तन की बात है। अगर कानून या खूनी क्रान्ति की बात होती, तो दूसरी बात थी। किन्तु हमें कानून का उपयोग नहीं करना है, क्योंकि उसमें लाभ के बदले हानि है। हम हृदय-परिवर्तन से ही मालकियत छुड़वाना चाहते हैं। क्या वह कभी हमारी शक्ति से होनेवाला है? फिर भी हमने माना है कि यह काम होगा, हो सकता है और होना चाहिए, क्योंकि दुनिया की

सारी ताकतें हमें उधर ही ले जा रही हैं। हम आपसे इतना ही कहना चाहते हैं कि हमने इसमें बुद्धि का उपयोग नहीं किया और आप भी मत कीजिये। यहाँ बुद्धि की बात नहीं है। हम अपना मन इसके लिए खुला रखें कि १६५७ में, दुनिया में कुछ क्रान्ति होनेवाली है। उसके लिए आत्म-समर्पण करने की तैयारी रखें, ताकि ऐसा न हो कि मौका आनेपर हम गैरहाजिर रहें। मौका ही न आये, तो दूसरी बात है। हमने इसे विनोद में 'नाटक' नाम दिया है। 'नाटक' याने वह कोई मिथ्या व्यापार है, ऐसी बात नहीं है। बल्कि वह है 'पूर्व-प्रयोग', जिसे इंग्लिश में 'रिहर्सल' कहते हैं।

इकत्तीस दिसंबर को रस्सी काट दो

अभी अण्णासाहब सहस्त्रबुद्धे ने कुछ निधि वगैरह की बात रखी। मैं कहना चाहता हूँ कि मुझे उसे सुनने में भी रुचि नहीं आयी। यहाँ जो कहा गया कि 'हमें १६५७ तक जो निधि-मुक्ति करनी है, उसे हम धीरे-धीरे करेंगे,' इसमें कोई सार नहीं। वह कमजोरी है। वह रस्सी तो काटनी ही चाहिए। उससे एकदम नैतिक शक्ति प्रकट होगी। आज बहुतों के मन में यह भ्रम है—जो निरा भ्रम नहीं, कुछ तथ्य भी है, लेकिन भ्रम ज्यादा है—कि भूदान-आन्दोलन वैतनिक कार्यकर्ताओं के जरिये चल रहा है। मैंने तमिलनाड में देखा कि आज यहाँ करीब पाँच सौ कार्यकर्ता काम करते होंगे, जिनमें से सिर्फ पचास ही वैतनिक कार्यकर्ता हैं। फिर भी आज हिन्दुस्तान में बेकारी बहुत ज्यादा है। इसलिए किसी एक को नौकरी मिल जाती है, तो सबका ध्यान उस तरफ खिंच जाता है। इसके बारे में भी यही हुआ। भूदान में कुछ लोगों को काम मिला, तो लोगों का ध्यान इधर खिंच गया। यह सारा परिस्थिति के कारण ही हुआ है। फिर भी यह भास निर्माण करने में हम भी जिम्मेवार हैं, क्योंकि हम सोचते हैं कि वैतनिक कार्यकर्ताओं के बिना हमारा काम चलेगा ही नहीं। इसका अर्थ यह है कि वैतनिक कार्यकर्ताओं के भरोसे ही हमारा काम चलता है। इसलिए इसे एकदम तोड़ो और जाहिर करो कि "अब १६५७ आ रहा है, इसलिए इसी वर्ष की ३१ दिसंबर को सब वेतन बन्द होगा। बजट वगैरह कुछ पेश न होगा।" तब हमें प्राप्ति के

कुछ दूसरे रास्ते सूझेंगे। फिर संपत्ति-दान आदि भी सूझेगा। सबसे बड़ी बात, जिसके सामने संपत्ति-दान फीका है, सूझेगी—सूत्रदान और सूत्रांजलि की। इतनी शक्तिशाली चीज हमारे पास पड़ी है। फिर भी इन जीवित स्रोतों की ओर हम ध्यान ही नहीं देते, क्योंकि एक पुराना ढर्रा चला आ रहा है। हम अधिक-से-अधिक सूत्रांजलि और सूत्रदान से पायेंगे और बाकी संपत्ति-दान से हासिल करेंगे। इसलिए एक बार यह करना ही होगा कि फलानी तारीख से निधि वगैरह सब बंद !

मुझे याद आ रहा है कि जेल में बहुत बार एक प्रयोग चला। खतरे की घंटी बजती थी और सब लोगों को किसी खास जगह इकट्ठा होना पड़ता था। अगर सचमुच खतरा हो, तो कैसे बर्ताव करना चाहिए, इसका वह सारा प्रयोग चलता था। वह सारा मिथ्या था, फिर भी हम जहाँ होते, वहाँ से दौड़कर उस स्थान पर जाते। इसी तरह एक बार यह कर दो कि ३१ दिसंबर को सब खतम ! शंका होती है कि इससे चारों ओर काम बंद पड़ जायगा। पर, उससे कुछ भी न बिगड़ेगा। हम ऐसा सोचकर यह करें कि "सब एक-दूसरे को सँभालेंगे, अपनी ओर से किसीका त्याग न करेंगे। हमारे पास जो कुछ है, बाँटकर खायेंगे।" बिना इसके शक्ति न बढ़ेगी। क्रांति का उदय होने पर हम सोते ही रहेंगे और उसके चले जाने पर जाग्रत हों, तो क्रान्ति के मानी ही क्या ? क्रांति आ रही है, उसकी हवा फैल रही है, ऐसी ही हमारी श्रद्धा हो और उसके लिए हम अपना दिल तैयार रखें। लेकिन अगर हम अपने को इन बन्धनों में जकड़ रखें, तो वह आ भी जायगी और हम कहते ही रहेंगे कि '५७ में यह सोचेंगे और वह करेंगे। इसलिए जो करना है, '५७ के पहले करना होगा। तभी हमें बहुत सी बातें सूझेंगी।

हर जिले के साथ चेतन का सम्बन्ध

हम चाहते हैं कि हर जिले के साथ किसी-न-किसी मनुष्य का संबंध हो। जिसे आत्मविश्वास है, वह काम करेगा। हम भी अपने मन में उसका नाम रख लेंगे। हमारी यह योजना भी क्रांति की ओर ले जानेवाली है। हिन्दुस्तान में २००

जिले हैं, उनके लिए तीन सौ मनुष्य चाहिए। फिर सर्व सेवा-संघ की ओर से सर्वसाधारण प्रकाशन, साप्ताहिक आदि चलेगा, जो उन्हें प्रेरणा देता रहेगा। वे लोग जनता में जायँगे और काम करेंगे। फिर यह अनुभव आयेगा कि इसका अमल कुछ जिलों में हो रहा है और कुछ जिलों में नहीं। क्रांति के खयाल से इस सूचना का हम बहुत ही महत्त्व समझते हैं। हर जिले के साथ हम चेतना का संबंध जोड़ना चाहते हैं। जहाँ समिति होती है, वहाँ सब इकट्ठे होते हैं, इसलिए वहाँ चेतना कम होती और संघात बढ़ता है। जहाँ जिले के लिए एक व्यक्ति होगा, वहाँ चेतन का संबंध होगा। वह व्यक्ति अकेला है, इसलिए शून्य बनकर बरतेगा और सबके साथ संबंध जोड़ेगा। उसे बाहर से कोई मदद न मिलेगी, इसलिए नम्र बनकर सबकी मदद लेगा, सलाह-मशविरा करेगा। इस तरह एक-एक 'चेतन' के पास एक-एक जिला रहेगा। इस योजना में खतरा भी हो सकता है। कोई मनुष्य कम शक्तिवाला हो, तो वहाँ काम कम होगा, कहीं गलत मनुष्य हो, तो गलत काम होगा। लेकिन ऐसे बड़े आन्दोलन में खतरे होते भी हैं, तो वे पच जाते हैं। उनसे कोई नुकसान नहीं होता। उसमें अनुभव बहुत आता है। उसमें क्रांति की तैयारी की बात है।

धनच्छेद से क्रांति की ओर

मैंने 'धनच्छेद' की बात कही है। मान लीजिये कि यहाँ आये हुए सब लोगों ने आज यही तय कर लिया कि अब हम पैसे का उपयोग न करेंगे। अब इस मीटिंग से वापस जाने के लिए भी पैसे न होने से अगर हम पैदल जाते हैं, तो एक क्षण में हमें यहीं क्रांति का दर्शन होगा। लोगों को भी दर्शन होगा कि ये लोग कैसे पागल बन गये हैं। मीटिंग में आये और वापस जाने के लिए पैसा नहीं, इसलिए पैदल जा रहे हैं। इस प्रकार का पागलपन हममें आना चाहिए। फिर भी हम आपको यह नहीं सुझा रहे हैं कि आप इसी क्षण पैसे का त्याग करें। पर ३१ दिसंबर को यह जाहिर कर दें कि हमने सब-का-सब छोड़ दिया।

मुझे एक पुरानी बात याद आ रही है। एक बार भूकंप हो रहा था।

रात का समय था। मैं कमरे में बैठा था। एक क्षण के लिए बिजली की-सी भावना मन में आयी कि बाहर दौड़कर चला जाऊँ, तो बच सकूँगा। किन्तु मुझे एकदम गीता का स्मरण हुआ और मैं वहीं बैठा रहा। गीता ऐसी मैया है कि दौड़े आती है। मैंने सोचा, अगर भागकर बाहर चला जाऊँ, तो जिस तरह बचना संभव है, उसी तरह मरना भी संभव है। क्या मनुष्य के लिए भागते हुए मरना भी कोई मरण है? मैं अगर जीने ही वाला हूँ, तो बैठे रहने पर भी जीऊँगा, भागने पर भी जीऊँगा और अगर मरनेवाला हूँ, तो भागने पर भी मरूँगा। इसलिए भागने में कोई सार नहीं। आखिर मौत होने ही वाली है, तो बेहतर यह है कि जो श्रद्धा हो, उसे इकट्ठा करो और जो न हो, उसे भी इकट्ठा करो तथा भगवान् का स्मरण करते हुए मरो। भागते हुए मरने से बदतर मौत और कोई नहीं। इसी तरह अगर हम अभी तय करें कि निधि वगैरह सब खतम करना है, तो हम पर उसका ऐसा असर होगा, मानो बिजली का प्रवेश हुआ हो। सारे हिन्दुस्तान पर उसका असर होगा। हमारी इस बात में से ऐसी चीज निकलेगी कि सबके बहुत-से संशय क्षीण हो जायँगे। यह एक क्रान्ति की बात है। इसलिए हमारे मन में इसका निष्ठापूर्वक संकल्प हो।

'५७ के संकल्प में देश की इज्जत

आप लोगों ने सम्मेलन करने का तय किया और वह ठीक ही किया। उसके अनुकूल, प्रतिकूल अनेक विचार कहे गये। इस साल जो चुनाव होंगे, उनका हमारे खयाल से कुछ महत्त्व है। भूदान के लिए साढ़े पाँच साल के बाद, इस वक्त हिन्दुस्तान के कुल राजनैतिक पक्षों की सहानुभूति हासिल हुई है। जो लोग राजनैतिक पक्षों में नहीं हैं, उनकी भी सहानुभूति हासिल है। लोगों को लगता है कि इसमें क्रांति है। हवा में १९५७ की बात फैली है। '५७ का संकल्प, हमने व्यक्तिगत संकल्प नहीं माना और न लोगों ने ही माना है। कांग्रेस में कुछ लोग ऐसे हैं, जो चाहते हैं कि पाँच करोड़ एकड़ का कोटा पूरा हो जाय। मैं समझता हूँ कि उनका भी संकल्प है कि इस काम में अपनी ताकत लगायी जाय।

के सोचते हैं कि चुनाव के कारण इस समय कई झंझटें हमारे पीछे हैं। किन्तु एक बार चुनाव हो जाय, कुछ व्यवस्था हो जाय, तो उसके बाद सम्मेलन का उपयोग '५७ के लिहाज से जरूर किया जा सकेगा। तब तक हम अपना काम जोरों से करते रहेंगे और जरूर कर सकेंगे, क्योंकि तब हमने ३१ दिसम्बर से 'वित्तच्छेद' किया होगा, जिसे जिसे के साथ किसीका सम्बन्ध होगा, जिससे काम को वेग मिलेगा।

चुनाव खतम होने के बाद देश के सामने एक समस्या खड़ी होगी। जो लोग भूदान के साथ सहानुभूति रखते हैं, पर अभी काम नहीं कर पाये हैं, खासकर उनके सामने यह समस्या खड़ी होगी कि क्या इतने बड़े संकल्प को, जिसका उच्चारण कुल देश में हुआ है, हम पराजित होने देंगे? क्या हम ऐसे ही बैठे रहेंगे और इन लोगों की फजीहत होने देंगे? क्या इसमें देश, राजनीतिक पार्टियों या सरकार की कोई इज्जत रहेगी? स्पष्ट है कि सभी यही सोचेंगे कि यह काम खंडित होता है, तो कुल देश की प्रतिष्ठा-हानि होगी। गाँव-गाँव से यही आवाज निकलेगी। सबके मन हमारी मदद के लिए तैयार होंगे। इसलिए सम्मेलन का एक ऐसा प्रसंग होगा कि सबकी तरफ से यह बड़ा संकल्प होगा और सब लोग जोरों से काम में लगेंगे। फिर कोई वजह नहीं कि यह काम दो-चार महीनों में पूरा न हो।

एक ही दिन में बँटवारा क्यों नहीं?

मैं कई बार दीवाली की मिसाल दिया करता हूँ। अब मुझे और एक नयी मिसाल मिली है। पंडित नेहरू ने कहा कि "चुनाव के मामले में बहुत शक्ति क्षीण होती है, द्वेष बढ़ता है। इसलिए हम शुरू-शुरू में १५ दिनों में आगे चलकर ७ दिनों में और फिर एक दिन ही में पूरे चुनाव खतम कर देंगे। हमें इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा इन्तजाम किया जायगा कि एक ही दिन में पूरा चुनाव हो सके। अगर अप्रत्यक्ष चुनाव की बात हो, तो वह और भी संभव होगा।" जब हमें यह दृष्टांत मिला, तो हमें बड़ा उत्साह आया। पं० नेहरू एक दिन में चुनाव करने की बात करते हैं, तो एक दिन में जमीन

का बँटवारा क्यों नहीं हो सकता ? कोई वजह नहीं कि समूचे देश की इच्छा-शक्ति जाग्रत होने पर चंद महीनों में यह काम न हो पाये ? सिवा इसके कि हमारी कल्पना-शक्ति श्रोछी हो। १९५७ में न सिर्फ पाँच करोड़ एकड़ जमीन का बँटवारा ही हो सकता है, न सिर्फ भूमि-क्रांति ही हो सकती है, बल्कि कुल दुनिया में शान्ति की भी स्थापना हो सकती है। आज सारी दुनिया हिन्दुस्तान की तरफ देख रही है। उसके लिए हमें अपने मन को तैयार करना चाहिए।

भगवान् आ चुके हैं

गीता कहती है :

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

याने जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब भगवान् अवतार लेता है। आप कहेंगे कि यह तो 'दैववाद' हुआ, इसमें हमें कुछ करना नहीं है। साक्षात् भगवान् तो आ ही रहे हैं। लेकिन अवतार तब होता है, जब कि 'अब भगवान् आ रहे हैं, अब भगवान् आ रहे हैं,' ऐसी भावना से सब लोग, सब सत्पुरुष उत्कंठित होते हैं। उस अवस्था में जहाँ 'अवतार होगा' ऐसा हम कहते हैं, वहाँ अवतार हो ही चुका रहता है। जहाँ 'भगवान् आ रहे हैं' ऐसा हम कहते हैं, वहाँ वे आ ही चुके रहते हैं। अब हम उन्हें लाने में जितनी देर करेंगे, उतनी देर लगेगी। वे आ ही गये हैं। अवतार का यही रहस्य है। हम इसी दृष्टि से तैयार रहें, तो सम्मेलन में कुल देश का संकल्प इकट्ठा हो सकता है। आज भी वह बात है ही, पर मन में ही है।

सामूहिक पद-यात्रा से उत्साह

अब 'वेतन आदि का परित्याग और जिले के लिए एक मनुष्य' की योजना चलेगी। अभी सामूहिक पदयात्रा के कारण छोटे-छोटे लोग बाहर निकल रहे हैं। इतना बड़ा ५० जिले का उत्तर प्रदेश ! हम वहाँ दस महीने घूमे, पर हमारे जाने के बाद वह मृतवत् हो गया था। हमारे 'करण भाई', जो दो साल से 'अकरण भाई' बने थे, आज हमसे कह रहे थे कि अब हमें आपके पास बोलने

की हिम्मत आयी है। क्योंकि सामूहिक पद-यात्राओं के कारण हमारे प्रदेश में उत्साह आया है, कार्यकर्ताओं में विश्वास बढ़ा है कि हम जनता के पास पहुँच सकते हैं, वह हमारी माता है, वह बच्चों को स्वीकार करने के लिए उत्सुक है। हम मानते हैं कि अगर दो-चार महीने इसी तरह काम चलेगा, तो हिन्दुस्तान में बहुत बड़ी बात बनेगी।

अनेकविध समस्याएँ

आगे के कार्यक्रम के बारे में हमने कोई योजना नहीं बनायी है। अभी हम टटोल रहे हैं। शायद तमिलनाड में ही 'हिरण्मय' दर्शन हो, ऐसी हम अपेक्षा रख सकते हैं। एक बाजू से हमने यहाँवालों को एक तारीख दी है कि हम १३ मार्च को तमिलनाड छोड़ेंगे। लेकिन दूसरी बाजू से यह भी कहा है कि "हम यहाँ अनिश्चित काल तक भी रह सकेंगे। यहाँ क्या होता है, यह देखकर हम आगे बढ़ेंगे।" आज हिन्दुस्तान में कई समस्याएँ हैं। तमिलनाड में बड़ी समस्या यह है कि यहाँ इतिहासकारों ने आर्य और द्रविड़ों का बड़ा भारी भेद पैदा किया है। इस समस्या का छेदन इसी आन्दोलन के जरिये होगा। आज गरीब का काम बन नहीं रहा है, चाहे वह आर्य हो या द्रविड। वह काम बनता है, तो एक बहुत बड़ी बात होगी। उधर बम्बई-राज्य में तो समस्या-ही-समस्या है। वहाँ एक काम हुआ, तो उसकी अनुकूल, प्रतिकूल, तटस्थ, मध्यम, संशयाकुल— सब प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुईं। वहाँ बड़ा भारी काम करना है। उधर पंजाब की तो भयानक ही दुर्दशा है। सिखों का और हिन्दुओं का जोड़ किया गया है, पर वे भयभीत हैं। अवश्य ही भूदान के कारण कुछ आत्मविश्वास पैदा हो रहा है।

बिहार की जमीन बाँट दो

इधर हमने बिहारवालों से कहा कि "तुममें जो शक्ति है, उससे बड़ी शक्ति हिन्दुस्तान में मैंने और कहीं नहीं देखी।" किन्तु कोई चीज है, जिसके कारण वहाँ अव्यवस्था है। हमने उनसे कहा कि "तुम खूब जोर लगाओ और सब जमीन बाँट दो। जमीन बाँटना क्या कठिन काम है ?" वे कहते हैं कि "कानूनी दिक्कतें हैं, जमीन का नम्बर वगैरह नहीं मिलता।" हमने उनसे कहा : "सारी

जमीन अपने देश की ही है। जितना काम कानून से हो सकता है, उतना कानून से करो और जितना बिना कानून के हो, उतना बिना कानून के करो, पर एक बार कर ही डालो। फिर झमेले पैदा हों, तो होने दो। शिकायतें होंगी तो क्या होगा, वकीलों को काम ही मिलेगा।" आज वकील लोग हमसे कहते हैं कि बाबा, भूदान-आन्दोलन के कारण हमारा धंधा ठीक से नहीं चलता। मान लीजिये, हम गलत मनुष्य को जमीन देते हैं, तो वकीलों का धंधा ही चलेगा। किन्तु हम जान-बूझकर गलत बँटवारा करेंगे, तो वह गलत काम होगा। पर हम जानते ही नहीं कि हालत क्या है। कोई मनुष्य हमसे कहता है कि "मैं मालिक हूँ" और हम उसकी जमीन बाँट देते हैं। फिर बाद में पता चलता है कि वह मालिक नहीं है। यदि ऐसा हुआ, तो अदालत का काम ही बढ़ेगा। अतः इसमें हमें कोई चिन्ता करने का कारण नहीं है।

हमने विनोद में कहा कि "बिहार में ऐसा सुन्दर राज्य चल रहा है कि इससे अधिक शासनमुक्त समाज और कहीं न होगा। यहाँ राज्यकर्ताओं को पता ही नहीं कि कौन जमीन कहाँ है ?" इस हालत में कानून से बटवारा करना कठिन हो, तो भी जल्दी बँटवारा कर ही डालो। नहीं तो जन-मानस पर यही असर होगा कि आपके पास बहुत जमीन पड़ी है, फिर भी वह बँटती नहीं, अर्थात् आपकी सब जमीन निकम्मी है, बाँटने लायक नहीं है, सारा मामला गोल है। इसलिए बाँटने-लायक जमीन फौरन बाँट दीजिये और जो कमजोर जमीन हो, उसका इन्तजाम कीजिये। इससे बिहार की शक्ति खूब बढ़ेगी। हमें विश्वास है कि बिहार का हमारा ३२ लाख एकड़ का कोटा जरूर पूरा हो सकता है। जब हमें विश्वास हो गया कि बची हुई १२ लाख एकड़ जमीन मिल सकती है, अब पहले बँटवारा होना चाहिए, तभी हमने बिहार छोड़ा। वैसा विश्वास न हुआ होता, तो हम बिहार न छोड़ते। बिहार में अब तक प्राप्त हुई जमीन बँटती है, तो शेष १२ लाख एकड़ निःसंशय मिलेगी।

उड़ीसा से पूरी आशा

उधर उड़ीसा में नवबाबू वगैरह तैयार हुए हैं, वहाँ तो काम खूब चलेगा। वहाँ के काम की इतनी शाखाएँ हैं कि उन सबका काम पूरा आगे बढ़ेगा।

सारांश, आप सब लोग धनच्छेद, हर जिले के लिए एक मनुष्य और सामूहिक पदयात्रा आदि के जरिये क्रान्ति की तैयारी कीजिये। हमने जो गंभीर बातें बतायीं, उन पर सोचिये। तो फिर इन्हें करने से क्रान्ति की दिशा में बहुत प्रगति होगी और शीघ्र प्रगति होगी।

पलनी (मदुरा)
२१-११-'५६

क्रान्तिकारी निर्णय : ११ :

गांधीजी के जाने के बाद गांधी-विचार पर श्रद्धा रखनेवाले देशभर के सेवक सेवाग्राम में इकट्ठा हुए और उन्होंने काफी विचार-मन्थन के बाद 'सर्वोदय-समाज' की स्थापना का संकल्प किया। वह एक वैचारिक और वैप्लविक संकल्प था, जिसमें विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन और जीवन-परिवर्तन की त्रिविध प्रक्रिया अन्तर्गत थी। ऐसे संकल्प को 'क्रतु' कहते हैं। इस प्रकार मार्च १९४८ में सेवाग्राम में 'सर्वोदय-क्रतु' का जन्म हुआ।

भूदान-यज्ञ का प्रादुर्भाव

क्रतु में से यज्ञ की निष्पत्ति होती ही है। 'अहं क्रतुः अहं यज्ञः' यह गीता-वचन सबको मालूम है। तदनुसार शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद तेलंगाना में अकल्पित और अभावित गति से भूदान-यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ। पिछले पाँच सालों में इस यज्ञ की एक-एक कला प्रकट होती गयी। कुल सर्वोदय-सेवक मानो तमस् में से ज्योति में आ गये। गाँव-गाँव की लोक-शक्ति का जो दर्शन इन पाँच वर्षों में हुआ, अनोखा ही था। इस नवज्योति का प्रभाव सर्वोदय के कार्यक्रम की हरएक शाखा पर पड़ा और सर्वत्र चेतना का संचार हुआ।

कुण्डच्छेद से ही वैश्वानर का प्राकट्य

अक्सर लोक-शक्ति का नया आविष्कार भी पुराने संचित के आधार पर होता है। गांधीजी की स्मृति में देश के नेताओं ने दूर-दृष्टि से एक निधि इकट्ठी

की थी, जो आज भी मौजूद है और अपने सकुशल व्यय की राह देख रही है। इस निधि से भू-दान-आन्दोलन को जो सहज मदद मिल सकती थी, ली गयी और लेना ठीक भी था। पर नवचेतना को, प्रथम आविष्कार में संचित यद्यपि मददगार हो सकता है, तथापि वह आधार प्राथमिक विकास के बाद भी जारी रहने पर आगे की प्रगति रोक सकता है। जैसे कि मैंने कहा, गांधी-निधि इकट्ठा करने में दूर-दृष्टि जरूर थी, पर सुदूर-दृष्टि नहीं। सीमित दूर-दृष्टि कभी-कभी सुदूर-दृष्टि को काटती है। निधि आज भी पड़ी है, उसकी मदद आज भी मिल रही है और आगे भी मिल सकती है, जब तक वह अवशिष्ट रहेगी। पर मैं साल-डेढ़ साल से सोचता रहा कि वह आधार तोड़े बिना वैश्वानर-अग्नि प्रकट नहीं हो सकेगा। होमाग्नि प्रकट हो सकता था, जो हुआ। पर होमाग्नि जब तक कुण्ड में सीमित रहेगा, तब तक वैश्वानर-अग्नि की आशा नहीं कर सकते। इसीलिए कुण्डच्छेद करना ही पड़ता है।

सर्वजनावलम्बिता का संकल्प

हमारे सब साथी इस पर सोचते रहे, कुछ झिझक भी थी। पर जैसे सन् सत्तावन नजदीक आया, झिझक छूट गयी और अभी जब 'सर्वोदय-मित्र-मंडली' 'पलनी' में विचार-विमर्श के लिए एकत्र हुई, फैसला किया गया कि अब भूदान-यज्ञ को स्वावलम्बी अर्थात् 'सर्वजनावलम्बी' हो जाना चाहिए। क्रतु से यज्ञ, यज्ञ से स्वधा, यह क्रम ही है : 'अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधाऽहम् ।'

इस निश्चय से अब जन-शक्ति के अनंत स्रोत फूट निकलेंगे। स्वधा याने आत्मधारणा-शक्ति, एक आन्तरिक शक्ति है। इसलिए वे स्रोत किस तरह फूट निकलेंगे, इसका कोई अन्दाजा किया नहीं जा सकता।

अनासक्ति और शोध

"जैसे-जैसे नया आधार मिलता जायगा, सहज ही संचित टूटेगा"—यह विचार विचार नहीं, एक मोह-चक्र है।

···असंगशस्त्रेण दृढेन छित्वा । ततः पदं तत् परिमार्गितव्यम्···

पहले अनासक्ति से इसे काटो, फिर आगे शोध करो। यह है क्रान्ति की

प्रक्रिया। अब शक्ति का शोध होगा, जो हमारे हनूमान् करेंगे, ऐसी हमें उम्मीद है। जिस माता ने लाखों हाथों से भूमि-दान दिया है, वह औदार्य मूर्ति है; जो माँगने की हिम्मत रखता है, उसे वह देती है। बिना माँगे भी वह देती, अगर हम संचित का आश्रय न लेते। पर वह हमें सूझा नहीं; जिस हालत में हम थे, सूझ भी नहीं सकता था। अब सूझा है, तो माँगना पड़ेगा और मिल भी जायगा।

कल्लालसपट्टी (मदुरा)
२३-११-'५६

'निधि-मुक्ति' के बाद अष्टविध कार्यक्रम : १२ :

पलनी के प्रस्ताव का अर्थ यह हुआ कि अब हम नारायण के अनन्य-सेवक बन गये। आप सब नारायण हैं। आपके लिए हमने अनन्य-भावना रखी है। आप सब लोग इस काम को किस प्रकार उठा लेंगे ? इसके कई प्रकार हो सकते हैं। एक घर में पाँच-छह भाई हैं। उनमें से एक भाई भूदान के लिए अपना पूरा समय दे और उसको आजीविका का जिम्मा बाकी चार-पाँच भाई उठा लें। बड़े परिवार में एकाध आदमी इस तरह निभ सकता है। उसके लिए कोई खर्च न आयेगा। वह अपनी पूरी शक्ति भूदान में देगा और बाकी के चार-पाँच भाई घर की चिंता करेंगे।

निधिमुक्ति की यह योजना बाबा के मन में एक-दो साल से चल रही थी। उसकी चर्चा भी कई मित्रों से की गयी। एक बार राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू से भी इसकी चर्चा हुई। उनके सामने भी हमने यह विचार रखा :

हर परिवार से

(१) एक परिवार का एक भाई सार्वजनिक सेवा में लगे और बाकी के भाई उसकी सेवा करें। यह सुनकर राजेन्द्रबाबू ने कहा कि "उसका मुझे भी अनुभव है। मेरे घर में मेरे भाई वगैरह घर सँभालते थे। इसी कारण मैं देश-सेवा के लिए मुक्त रह सका। अगर उन्होंने मेरी जिम्मेवारी न उठायी होती, तो मैं इतना मुक्त

नहीं रह सकता था। यह बहुत बड़ी भारी मिसाल आप लोगों के सामने आ गयी। आप उसका अनुकरण कर सकते हैं। ऐसे कई लोग हैं भी।

रचनात्मक संस्थाओं से

(२) सारे रचनात्मक कार्यकर्ता अपने-अपने काम में लगे हैं। उनकी आजीविका की योजना भी उनके निर्माण के कार्य में से होती है, तो वे अपने निर्माण-कार्य का एक हिस्सा भूदान को भी समझ लें। गाँव में ग्रामदान, भूदान होने पर उसके आधार पर बहुत अच्छा निर्माण-कार्य हो सकता है। वे अपने काम के साथ भूदान का भी काम करते चले जायँ, तो उसके लिए कोई खर्च न होगा। उल्टे भूदान के जरिये निर्माण का काम ज्यादा तेजस्वी बनेगा। यह है रचनात्मक काम करनेवालों की मदद का विचार।

सर्वोदय-प्रेमी मित्रों से

(३) कुछ सर्वोदय-प्रेमी मित्रों को, जो किसी-न-किसी व्यवस्था में लगे हैं, अपनी घर-गृहस्थी चलानी पड़ती है। अतः वे चाहते हुए भी भूदान के लिए समय नहीं दे पाते। फिर भी वे अपने में से एक मनुष्य को सार्वजनिक सेवक के तौर पर नियुक्त कर ही सकते हैं। उसके लिए वे अपनी-अपनी संपत्ति का एक-एक हिस्सा दें। एक मनुष्य की आजीविका के लिए जितना आवश्यक हो, उतना देने की योजना करें। इस तरह जगह-जगह से मित्र-मंडलियाँ एक-एक मित्र भूदान के लिए दे सकती हैं।

शिक्षकों से

(४) जगह-जगह की पाठशालाओं के शिक्षक स्वयं सर्वोदय का उत्तम अध्ययन कर अपने विद्यार्थियों को भी उसमें प्रवीण बना सकते हैं। वे अपनी-अपनी तनख्वाह में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा देकर एक विद्यार्थी को भूदान के लिए तैयार कर सकते हैं। अगर वे इस तरह करें, तो बहुत-से लोग भूदान के लिए मिल सकेंगे।

राजनीतिक दलों से

(५) देश की सभी बड़ी-बड़ी राजनीतिक संस्थाएँ भूदान को मानती हैं। वे

अपने में से कुछ कार्यकर्ताओं को भूदान-कार्य का जिम्मा दे सकती हैं। तमिलनाड की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने वैसा किया भी है। उन्होंने इसके लिए श्री गिरि महाराज को छोड़ दिया है। वे बहुत-सा समय भूदान को देते और प्रेम से काम करते हैं। ऐसे ही एक-एक जिला और एक-एक तहसील की तरफ से एक-एक मनुष्य का नियोजन हो सकता है। इस तरह बड़ी-बड़ी संस्थाएँ भूदान के काम के लिए एक-एक मनुष्य दे सकती हैं।

दस गाँव की इकाई से

(६) गाँव-गाँव के लोग भी इसमें काम कर सकते हैं। वे अपने अनाज का एक हिस्सा भूमिहीनों और एक हिस्सा ऐसे कार्यकर्ता के लिए दें, जो गाँव के हित का काम करता हो। मान लीजिये, दस गाँव के लिए एक कार्यकर्ता काम करता है, तो उसे महीने का पचास रुपया चाहिए। इससे ज्यादा न दें। बहुत बड़े परिवार का मनुष्य तो आयेगा नहीं, इसलिए उसके पेट और और परिवार के लिए उतना काफी है। रुपये का ही सवाल नहीं, आप अनाज भी दे सकते हैं। दस गाँवों की तरफ से एक कार्यकर्ता होने पर हर गाँव पर पाँच रुपये का जिम्मा आ सकता है। अगर वह दस गाँवों की अच्छी सेवा करता हो और हर तरफ से गाँव को मदद पहुँचाता हो, तो महीने में पाँच रुपये का बोझ ज्यादा नहीं है। वह राजनैतिक झमेले में न पड़े और न चुनाव में ही भाग ले। वह अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय का व्रत लेकर काम करे। उसकी आवश्यकता कम-से-कम हो। वह लोकनीति को माननेवाला हो और निष्काम भावना से सेवा के लिए ही सेवा करे। लोगों की सतत सेवा करते रहने पर तो लोग उसे अच्छी तरह पहचानेंगे और फिर तो वह गाँव के लोगों का सेवक ही हो जायगा। फिर कोई भी कठिनाई आने पर उसे सामने रख सकते हैं। उसका जिम्मा उठाना दस गाँव के लिए कठिन नहीं।

दाताओं से

(७) अभी तक करीब-करीब पाँच लाख लोगों से ज्यादा लोगों ने दान दिये हैं। अब दाता अपनी एक-एक टोली बनायें और दूसरे के पास जाकर दान

माँगें। सब-के-सब दाता तो इस काम में नहीं लग सकते, क्योंकि कुछ दाता घर के काम में लगे रहते हैं। फिर भी सौ में से एक मनुष्य भी मिल जाय, तो भी पाँच लाख दाताओं में से ५,००० कार्यकर्ता मिल सकते हैं। यह बहुत बड़ी शक्ति होगी। बाकी के लोग पूरा समय नहीं दे सकते, तो कुछ-न-कुछ समय दे ही सकते हैं। इस तरह अगर दान-दाता इस काम का जिम्मा उठा लें, तो बहुत बड़ी शक्ति पैदा होगी।

व्यापारियों से

(८) व्यापारी लोग भी इसमें योग दें। वे गाँव का अनाज खाते हैं, तो उन्हें गाँव की सेवा भी करनी चाहिए। एक व्यापारी एक कार्यकर्ता की योजना करे, तो उसे सहज ही सार्वजनिक सेवा का पुण्य मिल सकता है।

इस तरह कार्यकर्ताओं का एक समूह खड़ा करने के अनेक प्रकार हो सकते हैं। जन-आधारित या सर्वजनों के आधार पर जो कार्यकर्ता खड़े होंगे, वे अच्छे ही होंगे। अगर वे अच्छे न हों, तो लोग उन्हें मदद न करेंगे। इसलिए वे सेवक सभी दृष्टि से अच्छे ही होने चाहिए। इस तरह निधि का आधार तोड़ने का जो निर्णय हुआ, वह बहुत ही लाभदायी है।

छत्रम्पट्टी (मदुरा)
२४-११-'५६

हिन्दुस्तान में एक बड़ा भारी 'इंस्टीट्यूशन' है। वह 'इंस्टीस्यूट' और 'इंस्टीट्यूशन' दोनों है। उसे 'भिक्षा' कहते हैं। दूसरे देशों में भिक्षा माँगना गुनाह माना जाता है, पर यहाँ अगर उसे गुनाह माना जायगा, तो धर्म ही गुनाह माना जायगा। कारण भिक्षा माँगना हिन्दुस्तान में कुछ लोगों का धर्म ही है। अगर कल कहा जाय कि "भिक्षा माँगना अधर्म है, गुनाह है", तो बाबा कहेगा : "भिक्षा मिलेगी तो खाऊँगा, नहीं तो नहीं।" आपका वह कानून कागज में ही रहेगा और बाबा को लोग खिलायेंगे। बाबा के खिलाफ कोई कानून काम न करेगा। भिक्षा में एक बहुत बड़ी खूबी है। हम किसी एक शख्स का अन्न खाते हैं, उसीका आधार लेते हैं, तो हम पर उसके पाप-पुण्य का भी बोझ आ जाता है। माणिकवाच्यकर घर-घर जाकर भिक्षा माँगते थे। सब घरों से थोड़ा-थोड़ा मिलने पर उनके पाप-पुण्य का बोझ सिर पर नहीं आता है। यह अपने महाभारत की बहुत बड़ी संस्था है।

'भिक्षा' और 'भीख'

किन्तु भिक्षा का यह अर्थ नहीं कि बिना काम किये उसे माँगते रहें। 'तिरुकुरल' में उसका स्पष्ट निषेध किया गया है। वास्तव में 'भिक्षा' अलग चीज है और 'भीख' अलग। भिक्षा तो धर्म है। मजदूर आठ आने का काम करता और आठ आना कमाता है। किन्तु भिक्षा माँगनेवाला दो हजार रुपयों की सेवा करेगा और आठ आने का खायेगा। इसी का नाम है, भिक्षा। शंकराचार्य घूमते और भिक्षा माँगते थे। रामानुज भी घूमते और भिक्षा माँगते थे। एक दिन रामानुज भिक्षा माँगने के लिए किसीके घर गये। दरवाजे बंद थे। समस्या खड़ी हुई, दरवाजा कैसे खोलें और भिक्षा कैसे माँगें ? बस, उन्होंने गाना शुरू कर दिया। गीत गाते ही दरवाजा खुल गया और एक

बहन ने आकर झोले में चावल रख दिया। रामानुज ने जो भजन गाया था, उसका मतलब यह है कि 'हे लक्ष्मी देवी, भगवान् विष्णु का दास तुम्हारे द्वार आया है, आ जाओ और भिक्षा दे दो।' उन्होंने उस घरवाली बहन को मामूली गृहस्थ की स्त्री नहीं समझा, बल्कि लक्ष्मी माना, अपने स्वामी विष्णु की पत्नी समझ लिया। वे संन्यासी और आचार्यशिरोमणि थे।

नारायण के सेवकों को भिक्षा का अधिकार

सारांश, इस तरह जो देनेवालों को विष्णु और लक्ष्मी समझकर लेता है, उसे किसी प्रकार का पाप नहीं लगता। जिसके हृदय में यह बात पैठ जाय कि हमें खिलानेवाला बुरा मनुष्य हो ही नहीं सकता, वह भगवान् विष्णु ही है, उसे सारे विश्वभर विष्णु का ही अन्न खाने को मिलेगा। नारायण के सेवकों को हमेशा भिक्षा का अधिकार है। उसीके आधार पर हिन्दुस्तान में हजारों यात्राएँ चलीं। भगवान् बुद्ध और महावीर के शिष्य घूमते रहे, चैतन्य और नानक के अनुयायी घूमे और यहाँ भी नम्मालवार एवं माणिकवाच्यकर घूमते रहे। हर प्रान्त में बड़े-बड़े लोग घूमे हैं। आखिर वे किस आधार पर घूमे? उनको खाने-पीने का क्या आधार था? स्पष्ट है कि यही नारायण!

घर-घर हमारी बक

हम कहते हैं कि जो आधार हमारे पूर्वजों ने हमें दिया है, उसे कौन छीन सकता है? इसलिए आगे इसी योजना से आन्दोलन चलेगा। लोग जमीन देंगे और हमारे कार्यकर्ताओं के जीवन के आधार भी बनेंगे। आखिर जो अपनी जमीन का हिस्सा निकालकर देते हैं, क्या वे कार्यकर्ता के खाने-पीने की साधारण योजना न करेंगे? १३० एकड़ जमीन का एक मालिक ११ एकड़ देने को राजी था। हमने उससे पूछा: "भाई, छठा हिस्सा क्यों नहीं देते?" तो कहने लगा: "स्कूल के लिए ७ एकड़ जमीन अलग दे चुका हूँ।" फिर हमने कहा: 'वह तो पुरानी बात हो गयी। उसका जिक्र अब क्यों? और ११ एकड़ बढ़ा दो और छठा हिस्सा कर लो!" इतना कहते ही उसने ११ एकड़ जमीन और बढ़ा दी। सोचने की बात है कि एक ही मिनट में ११ एकड़ का २२ एकड़

करनेवाला शख्स क्या कार्यकर्ता को न खिलायेगा? स्पष्ट है कि इस तरह हमने अपने कार्यकर्ताओं के लिए बड़ी भारी निधि खोल दी। घर-घर हमारी बैंक है, हर घर जाकर हम माँग सकते हैं।

निधि या रामसन्निधि

अभी हमने अपनी एक लड़की को काम करने के लिए केरल भेजा। उसे नजदीक बिठाकर हमने ईसामसीह के वचन सुनाये। ईसा ने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा था कि "तुम काम करने के लिए जाओ, लेकिन साथ में कोई गोल्ड कोइन, सिल्वर कोइन या कोपर कोइन मत रखो।" तात्पर्य यह कि सोने, चाँदी की मुहर या एक कौड़ी भी साथ में मत रखो। जिस घर में जाओ, वहाँ 'शान्ति' कहो। अगर वह घर में स्थान न दे, तो तुम्हारी शांति तुम्हारे साथ वापस आ जायगी। समाज के सामने जाओ, तो यह मत सोचो कि क्या बोलना है? क्योंकि बोलनेवाले तुम नहीं, तुम्हारी जबान से भगवान् ही बोलता है। अगर ईसा कहते कि तुम्हें सोच-विचारकर बोलना चाहिए, तो क्या हालत होती? उनके शिष्यों में एक मच्छीमार था, तो दूसरा बढ़ई। वह क्या योजना करते और क्या बोलते? और सामने तो बैठे थे बड़े-बड़े विद्वान्! फिर उनके सामने वे क्या बोलते? इसीलिए ईसा ने उन्हें यह श्रद्धा लेकर जाने के लिए कहा। उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हें दो कोट नहीं रखने चाहिए। यही है धन और निधि। जब हम आन्ध्र में घूमते थे, तो हमने त्यागराज का एक सुन्दर भजन सुना था: 'निधि चाल सुखमा, रामसन्निधि चाल सुखमा।'

निधि अधिक सुखदायक है या राम की सन्निधि? दोनों में से तुम क्या चाहते हो?

इसलिए जब से यह प्रस्ताव पास हुआ है, तभी से हमारे शरीर में बिजली का संचार हुआ है। अब से हम किसी भी मनुष्य से कहेंगे कि "दान दे दो और काम करना शुरू करो।" अब तक तो वे यह कह सकते थे कि "दूसरे कार्यकर्ताओं को तनख्वाह मिलती है, इसलिए वे पूरा समय दे सकते हैं, पर हम किस तरह पूरा समय दें? हमारा आधार क्या है?" किन्तु अब हम उससे यही कहेंगे कि "तुम्हें

अब रामसन्निधि का आधार है। जिसके पास जाओ, उसे राम समझ लो और कहो कि रामचन्द्र, छठा हिस्सा दीजिये। इसीका नाम है रामसन्निधि ! इसे हाथ में ले लो और कार्य के लिए निकल पड़ो।"

ओड्डुमछत्रम् (मदुरा)
२५-११-'५६

'तंत्र-मुक्ति' के बाद गांधीवादियों का दायित्व : १४ :

भूदान-कार्य के लिए जगह-जगह समितियाँ बनायी गयीं और उनके लिए 'गांधी-निधि' की संचित निधि से हमें मदद मिलती रही और आज भी वह प्रेम से मिल रही है। निधि का उद्देश्य गांधी-विचारों का प्रसार है। इन साढ़े पाँच साल में भूदान-आन्दोलन से गांधी-विचार जितना फैला, उतना शायद ही और किसीसे फैला हो। इसलिए वह मदद देना और लेना, दोनों ठीक ही हुआ। लेकिन अभी पलनी में हमने प्रान्तीय और जिला-समितियों की वह योजना तोड़ डाली, केन्द्रीय निधि से मदद न लेने का संकल्प किया और उसके लिए ३१ दिसम्बर आखिरी मुदत तय कर ली।

संगठन सद्विचार के प्रसार में बाधक

ईश्वर और उसके कार्य के बीच अगर कोई संगठन खड़ा होता है, तो कभी-कभी वह बाधक भी हो जाता है। मुझे याद है, एक ईसाई भाई मुझसे सलाह-मशविरा करने आये थे। वे आदिवासियों के बीच जाकर सेवा करना चाहते थे। उन्होंने मुझसे पूछा : "आप क्या सलाह देते हैं ?" बातचीत अंग्रेजी में हो रही थी, इसलिए मैंने उनसे अंग्रेजी में ही कहा : "डू नॉट ऑर्गनाइज (संगठन मत करो, सीधी सेवा करते चले जाओ)।" सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। यद्यपि बाद में उन्होंने 'आर्गनाइजेशन' किया, क्योंकि वह उनका स्वभाव ही था। फिर भी उन्होंने मुझसे कहा : "आप जो कह रहे हैं, वही संत फ्रांसीस ने भी कहा था।" मैं नहीं जानता कि संत फ्रान्सीस ने ऐसा कहा था या नहीं, पर मेरा अपना बुनियादी विचार है कि सद्विचार हवा में फैला देना अच्छा है।

उसे जमीन में बोने से उसका वृक्ष बनता और लोगों को उसकी छाया मिलती है। किन्तु उसके नीचे चंद लोग ही आकर बैठ सकते हैं, वह सीमित हो जाता है। इसके विपरीत जो विचार हवा में फैलता है, वह हरएक हृदय को छूता और कहाँ-का-कहाँ चला जाता है। इसलिए मैंने सोचा कि इस साल भूदान के विचार को इसी तरह हवा में फैलायें। मैं अपने भाइयों से भी कहता था कि "इसके बिना शांतिमय क्रान्ति नहीं हो सकती।" शुरुआत में उनमें कुछ झिझक थी, कुछ संकोच था, जो स्वाभाविक ही रहा। किन्तु आज सब लोगों का संकोच मिट गया और उन्होंने एकमत से प्रस्ताव पास किया कि "अब कुल संगठन खतम कर दिया जाय। हम अब निधि से मदद न लेंगे।"

मानव-हृदय पर श्रद्धा हो

पूछा जा सकता है कि अब यह काम कौन करेगा ? उत्तर यही है कि "ईश्वर के सेवक करेंगे !" वे कौन होंगे ? इसका भी सीधा और सरल उत्तर है, ईश्वर जिन्हें चाहेगा, वे ही होंगे। फिर भी व्यवहार में इसकी ज्यादा जिम्मेवारी गांधीजी के मूल विचार में निष्ठा रखनेवालों पर ही आती है। साढ़े पाँच साल के परिश्रम के बाद ऐसी हवा तो बन गयी कि लोगों के पास जाकर समझाने पर जमीन मिलती है। किन्तु उसमें मुख्य बाधक वस्तु है, सभीका मानव-हृदय पर विश्वास न होना। गांधीजी के सिद्धान्त (सत्याग्रह का सिद्धान्त या सर्वोदय के सिद्धान्त) की बुनियादी निष्ठा यह है कि "हर हृदय में भगवान् मौजूद हैं और उसे जगाया जा सकता है।" जहाँ यह श्रद्धा नहीं होती, वहाँ लोगों के पास जाकर माँगने की हिम्मत नहीं होती और न उस पर विश्वास ही बैठता है। तेलंगाना में जमीन मिली, तो लोगों को लगा कि वहाँ कम्युनिस्टों के आपत्ति खड़ी करने से ही वैसा हुआ, दूसरी जगह इस तरह जमीन न मिल सकेगी। फिर देहली की यात्रा में हजारों एकड़ जमीन मिली, तो लोगों को लगा, यह तो बाबा के कारण मिली। फिर उत्तर प्रदेश में अनेक लोगों के जरिये जमीन मिली, तो लोग कहने लगे : "खैर, जमीन तो मिलीं, पर उसकी मालकियत नहीं मिटी, अपनी जमीन में से लोग थोड़ा-सा दे देते हैं !" किन्तु बाद में बिहार में लाखों एकड़ जमीन मिली,

और उड़ीसा में हजार-पन्द्रह सौ ग्रामदान हो गये और मालकियत भी मिट गयी। इतने दृश्य देखने को मिले, फिर भी हृदय से शंका की गाँठ खुली नहीं।

कुरान में उसका एक बड़ा ही सुन्दर किस्सा आया है। मुहम्मद पैगम्बर ने कहा था कि "अगर तुम लोग यहाँ अच्छा काम करोगे, तो मरने के बाद परमेश्वर की सन्निधि में बैठ सकोगे।" लोग विश्वास न करते थे। इस पर मुहम्मद ने कहा : तुम लोग कैसे हो ! तुम अच्छा काम कर भी लोगे और मरने के बाद ईश्वर की हाजिरी में भेजे जाओगे और ईश्वर को अपने सामने देखोगे, फिर भी तुम्हारी शंका नहीं जायगी ! तुम पूछोगे कि क्या यह सचमुच ईश्वर है ? क्या यह ईश्वर का दर्शन हो रहा है ? सारांश, तुम्हारे हृदय पर मुहर (सील) लगी है, उसे ही उठा दो। ईसामसीह को भी ऐसा ही कहना पड़ा था कि "Oh, ye of little faith !" कुछ तो श्रद्धा की जरूरत होगी। उसके बिना दुनिया में पराक्रम के काम ही नहीं बनते। सादे पराक्रम में भी श्रद्धा की जरूरत होती है। तो लोग अपनी मालकियत छोड़ सकें, प्राण से भी प्यारी अपनी जमीन दे सकें, ऐसी श्रद्धा रखना मनुष्य के लिए जरा कठिन होता है।

गांधी-विचारवालों की जिम्मेवारी

आजकल लोगों का कानून पर इतना विश्वास बैठ गया है कि हम समझते हैं कि उसने ईश्वर की जगह ले ली है। वे मानते हैं कि कुछ भी करना हो, तो कानून से होगा। जल्दी कोई बात करनी हो, तो कानून से हो सकती है। हृदय-परिवर्तन हो सकता है, यह मानने के लिए उनके मन तैयार नहीं। फिर भी बाबा ने यह काम उठा लिया और जमीन मिल रही है। विभिन्न राजनैतिक दलों ने भी जमीन के बँटवारे का कार्यक्रम रखा है। अभी तक कानून के जरिये एक एकड़ भी जमीन नहीं बँटी। इस हालत में कुछ-न-कुछ करना जरूरी है। जो भाई निकल पड़ते हैं, वे कुछ-न-कुछ काम अवश्य करते हैं, पर इस काम का झंडा वही उठा सकेगा, जिसका मानव-हृदय पर विश्वास हो। गांधीजी के साथी मानव-हृदय पर विश्वास रखने के लिए बँधे हैं। उनकी बातें हम आचरण में ला सकें या न ला सकें, पर अगर मानव-हृदय

पर विश्वास रखने की हिम्मत ही न कर सकें, तो गांधी-विचार का बोझ उठा नहीं सकते। तब वह सचमुच हमारे लिए बोझ ही हो जाता है। वास्तव में वह बोझ नहीं, वह तो बड़ा सुन्दर नाश्ता है, जो सिर पर रखा है। वह खाने के काम में आयेगा, उसका भार बड़ा मधुर है। किन्तु जिसे मालूम नहीं कि उसके अन्दर क्या भरा है, उसे लगेगा कि यह तो पत्थर का भार सिर पर लदा है। इसलिए जो लोगों के पास शंका के साथ जायगा, उसे वह उत्तर न मिलेगा, जो श्रद्धा के साथ जानेवाले को मिलेगा।

हम समझते हैं कि इसके आगे काम का भार ऐसी संस्थाओं के पास जायगा, जो गांधी-विचार के आधार पर काम करती हैं। हम तो ईश्वर से सीधी बात कहेंगे कि छह साल तक हमने इस आन्दोलन को फैलने दिया। अब इसके आगे तू चाहता है कि वह फैले, तो अपने दूसरे भक्तों को तू ही जगा दे। अगर इस आन्दोलन को फैलाने की तेरी मर्जी नहीं, तो वह तेरी मर्जी की बात है। उसमें हम कुछ नहीं कर सकते। हम तो दूसरे को जगाते रहेंगे, जब तक हमारे पाँव, मन और वाणी में परमेश्वर शक्ति रखेगा। किन्तु उसके फैलने की कोई चिन्ता नहीं करेंगे। जब संचित निधि से हमने मुक्ति पायी, तंत्र को तोड़ा, तो और कोई योजना कर ही नहीं सकते। मैं निधिमुक्ति को बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देता। उसकी तो ५-१५ दिनों में योजना हो सकती है। संपत्तिदान से भी वह संभव है। किन्तु मुख्य बात हमारा तन्त्र तोड़ना है। उस हालत में मानो शरीर ही चला गया, तो कैसे लगेगा? हमारा विश्वास है कि इस शरीर को, ढाँचे को, तंत्र को कायम रखते, तो काम तो जरूर होता; पर वह सीमित होता, वह अनंत अपार न फैलता। इसीलिए हमने उस तंत्र को तोड़ा। जैसे पौधे के आसपास बाड़ लगाते हैं, पर वह बढ़ने पर उसे निकाल देते हैं, वैसे ही हमने यह किया है। इसलिए अब दुनिया में गांधी-विचार के जितने लोग और जितनी संस्थाएँ हैं, सबको इस काम की जिम्मेवारी उठा लेनी चाहिए। गांधी-विचार कोई एकांगी विचार तो नहीं, एक समग्र विचार है। दूसरे-तीसरे सब काम करते हुए उसके साथ यह चीज जोड़ी जा सकती है। इसके लिए अलग संगठन की कोई जरूरत नहीं।

हमने अब यह एक नया खतरा उठा लिया है। उसका परिणाम यह होगा कि शायद आन्दोलन सूख जायगा या खूब व्यापक बन जायगा। हमने तो भगवान् का नाम लेकर कदम उठा लिया है। अब उसका परिणाम जो होना हो, होने दें। जो भाई जो भी काम करते हैं, उन्हें अपने दूसरे-तीसरे काम के साथ इसे भी उठा लेना चाहिए। यही हमारी आप गांधीवालों से माँग है। आपसे हम जरा अधिकार के साथ माँग करते हैं; क्योंकि आप हमारे समानधर्मी हैं, एक विचार के माननेवाले हैं, गुरुभाई हैं।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
२६-११-'५६

कर्जे का सवाल : १५ :

एक भाई ने यह सवाल पूछा है कि "ग्रामदान मिलने और व्यक्तिगत मालकियत मिट जाने पर कर्जे का क्या होगा ? मान लीजिये कि कोई प्रेम से कर्ज देनेवाला निकला तो ठीक; लेकिन वैसा न मिले, तो क्या होगा ? साथ ही जो कर्ज ले चुके हैं, उनका हल कैसे होगा ?" इस प्रश्न को सब लोग मिलकर हल करें। १५०० गाँवों में ग्रामराज्य मिल चुका है। वहाँ साहूकार के पास जाकर समझाते हैं, तो वे कुछ छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। उसे कुछ दे भी देते हैं, यह सब होता है। कुल जमीन एक हुई, इसलिए सब मिलकर जो देंगे, वही दिया जायगा। लेकिन बाबा के पास इसका जवाब अलग है। वह आप लोगों का जवाब न होगा।

आप जानते हैं कि विभिन्न राष्ट्रों के नाम पर कर्जे के खगोलार्थी (एस्ट्रानॉमिकल) आँकड़े हैं। एक अरब रुपयों के छह-सात आँकड़े होते हैं। कभी-कभी तो कर्जे के १०–१२ आँकड़े होते हैं। पर उनसे क्या होनेवाला है ? वे तो कागज पर लिखनेभर के लिए हैं। जहाँ राष्ट्र का मामला आता है, वहाँ कुल-का-कुल कर्ज निकम्मा हो जाता है। आखिर इस कर्ज का अर्थ क्या है ? हम पैसा दे चुके, उसका इस्तेमाल हो चुका और अच्छा इस्तेमाल हो चुका। अब कर्ज क्या रहा ?

आपके पैसे का लोगों ने उपयोग कर लिया, वह पैसा उपयोग के लिए ही था। फिर भी इतना अवश्य देखा जायगा कि जिन लोगों ने उसे दिया, उनका भी जीवन ठीक से चले, उन्हें भूखों मरने का मौका न आये। बाकी का कागज पर ही रहेगा। यही बाबा का उत्तर है।

नैतिक आन्दोलन और संस्था

एक चौथा सवाल यह है कि आध्यात्मिक और नैतिक आन्दोलन थोड़े दिनों के बाद कुल ठंडा हो जाता है। उसके बाद उसे पक्का करने के लिए या तो संस्था बनानी पड़ती है या कानून। किन्तु उससे उसकी आत्मा ही चली जाती है। कानून या संस्था न बनायें, तो नैतिक आन्दोलन का वेग क्षीण होता चला जाता है। और अगर बनायें, तो वह चीज ही खतम हो जाती है। ऐसी हालत में क्या किया जाय ?

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥'

जब भगवान् देखता है कि धर्म गिर रहा है, तो उसकी उन्नति के लिए वह अवतार लेता है। एक बार जो गति मिलती है, वह धीरे-धीरे कम होती है, यह न्याय न केवल नैतिक आन्दोलन पर, वरन् हर चीज पर लागू है। हमने एक गेंद फेंकी, तो वह जोरों के साथ दौड़ती है, किन्तु धीरे-धीरे उसका वेग कम हो जाता है। उसे बार-बार गति देनी पड़ती है। वह तो कोई नैतिक आंदोलन नहीं, गेंद की गति है, फिर भी उसे बार-बार देनी पड़ती है।

आप प्रतिदिन स्नान करते हैं, तो शरीर स्वच्छ हो जाता है। लेकिन कल फिर से शरीर गंदा हुआ, तो फिर से स्नान करते हैं। शरीर ने व्रत लिया है कि मैं गंदा बनूँगा और हमने व्रत लिया है कि हम तुझे स्वच्छ बनायेंगे। यह शरीर का और हमारा झगड़ा चल रहा है। आखिर के दिन कभी-कभी मनुष्य बिना स्नान किये मर जाता है, तो उस वक्त मनुष्य हारता और शरीर जीत जाता है। फिर भी हमारे मित्र उस भाई के व्रत का पालन करने के लिए उसकी मृत देह को नहलाते और फिर जलाते हैं, क्योंकि

वे अपने मित्र का व्रत आखिर के दिन तक कायम रखना चाहते हैं। इस तरह नैतिक आंदोलन की गति घटती है, तो उसका उपाय यह नहीं कि गति कम पड़ते ही संस्था या कानून बनाया जाय। बल्कि यही उपाय है कि वहाँ गति दी जाय। गति देनेवाला कोई पुरुष निर्माण होता ही है, यह ईश्वर की दुनिया है।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

मानव का मूल जमीन में हो : १६ :

मानव के लिए सबसे खतरनाक चीज अगर कोई है, तो वह है, उसका जमीन से उखड़ना। जैसे हरएक पेड़ का मूल जमीन में होता है, वैसे ही हरएक मनुष्य का सम्बन्ध जमीन के साथ होना चाहिए। मनुष्य को खेती से अलग करना पेड़ को जमीन से अलग करना ही है। हमने अखबार में पढ़ा कि अमेरिका में हर दस मनुष्यों में से एक मनुष्य दिमागी बीमारी से पीड़ित है। इसका कारण यही है कि वहाँ मनुष्य जमीन से उखाड़ा जा रहा है। मेरा यह विचार है कि मनुष्य का जीवन जितना पूर्ण होगा, उतना ही वह सुखी होगा। भूमि-सेवा पूर्ण जीवन का एक अनिवार्य अंग है। खेती से खुली हवा और सूर्य-प्रकाश मिलता है, जिससे आरोग्य-लाभ होता है। खेती से मानसिक आनन्द प्राप्त होता है, बुद्धि तीव्र होती है। खेती भगवान् की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। जितने लोगों को पूर्ण जीवन का मौका मिलेगा, समाज में उतना ही समाधान और शांति रहेगी। इसलिए हमें गाँवों की रचना ऐसी करनी होगी, जिससे हरएक के पास कम-से-कम चौथाई एकड़ जमीन रहे।

खेत उपासना, व्यायाम और ज्ञान का मन्दिर

मान लीजिये कि यह तय हुआ कि देश को खानों (Mines) की जरूरत है। तो मैं ऐसी योजना बनाऊँगा कि खानों में काम करनेवालों के लिए खानों से दस मील दूर पर अच्छे मकान बनाये जायँ, जिनके आसपास खेती

हो। उन लोगों को मोटर से खानों तक लाया जाय। वहाँ वे दो घंटा काम करें और फिर मोटर से वापस घर जायँ और खेत में खुली हवा में काम करें। उन्हें आठ-आठ घंटे खानों की गन्दी हवा में काम क्यों करना पड़े? क्या कोई मंत्री अपने बेटे को खानों में आठ घंटा काम करने के लिए भेजेगा? हमें वैसी ही ग्राम-रचना करानी चाहिए, जैसी कि हम अपने बेटे के लिए करेंगे। कुछ लोग सिर्फ खेती करें और कुछ दूसरे धंधे ही करते रहें, यह रचना अच्छी नहीं। हर-एक को दिन में दो-तीन घंटे खेत में काम करने का मौका मिलना ही चाहिए। फिर बचे हुए समय में वह दूसरा उद्योग करे। खेती बुनियादी सेवा है। खेत एक सुन्दर उपासना-मन्दिर है, खेत एक उत्तम व्यायाम-मंदिर है, खेत एक उत्तम ज्ञान-मन्दिर है।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

गाँववाले अपने पैरों पर खड़े रहें : १७ :

हमें यह सुनकर खुशी हुई कि इस गाँव में बहुत अच्छा काम चल रहा है। आज भी एक नये काम का आरंभ होने जा रहा है। इन सब कामों के बारे में सोचते हुए हमारे मन में कुछ दूसरे ही विचार आते हैं। गाँव के लोग दुःखी, दरिद्री हैं, यह बात सही है और यह भी सही है कि उन्हें बाहरी मदद मिलनी चाहिए। शहरी लोगों को उनकी सेवा की प्रेरणा होनी चाहिए, कारण उन्होंने आज तक देहातों से भर-भरकर पाया है। इसीलिए हमने शहरवालों से बहुत बार कहा है कि आपको 'ग्राम के सेवक' बनना चाहिए और गाँववालों से भी कहा कि आपको 'भगवत्सेवक' होना चाहिए। गाँववालों के ईश्वर के सेवक बनने पर ही शहरी लोग उनकी सेवा में आयें, यही शोभा देगा। किंतु उनके भगवान् को भूल जाने और अपना ही स्वार्थ देखते रहने पर उनकी सेवा में दूसरे लोग आयेंगे, तो उससे उन्हें कोई लाभ न होगा।

दूसरों के लिए त्याग से ही उन्नति

यहाँ के लोगों को पैसे की जरूरत है। किसीने इन्हें अंबर चरखा दिया और

ये कातने लगे। किंतु इसमें गाँववालों ने अपनी ताकत बढ़ाने के लिए क्या किया ? बाहरवालों ने आपको मदद दी, इसमें तो उन्हींका कल्याण है, आपका क्या कल्याण है ? आपको दो-चार पैसे अधिक मिलें, यह कोई लाभ नहीं। अगर गाँव के लोगों ने गाँव के लिए त्याग नहीं किया, तो उनकी क्या उन्नति हुई ? उन्नति उनकी होती है, जो दूसरों के लिए त्याग करते हैं।

गाँववालों के हाथों धर्मकार्य हो

माता-पिता ने बच्चों के लिए त्याग किया, उन्हें खिलाया-पिलाया, तो माता-पिता की उन्नति होती है, लेकिन बच्चों की क्या उन्नति होती है ? कहा जा सकता है कि उन्हें खाना मिलता है। लेकिन खाना तो गाय के बछड़े को भी मिलता है। गाय के बछड़े की तरह हमारे बच्चे भी खाने-पीनेवाले ही हुए, तो इसमें उनकी उन्नति क्या हुई ? बच्चों की उन्नति तब होगी, जब वे माता-पिता की सेवा के लिए त्याग करेंगे। वे माता-पिता की सेवा लेते हैं, इसमें तो उनका स्वार्थ है। मैं गाय को खिलाता हूँ और वह खाती है, इसमें मेरी उन्नति होती है; पर गाय की क्या उन्नति है ? उसे खाना मिलता है। लेकिन क्या खाना खाकर वह हमेशा जियेगी ? खा-खाकर उसकी खानेवाली इंद्रियाँ थक जायँगी और एक दिन वह मर जायगी। इसी तरह गाँव के लोग भी दूसरों की मदद लेते रहने से सदा के लिए जिंदा न रहेंगे। मान लीजिये कि यहाँवालों को बाहरी लोगों ने खूब मदद दी और ये लोग मरने तक जिंदा रहे, क्योंकि मरने से ज्यादा जिंदा रखने की शक्ति किसीमें है नहीं। फिर भी मरने के बाद इन्हें क्या समाधान प्राप्त होगा ? क्या इन्हें यह समाधान होगा कि लोगों ने हम पर खूब उपकार किया, हमें खिलाया-पिलाया ? इन्हें समाधान तो तब होगा, जब इन्होंने किसीको खिलाया हो, दूसरों के लिए त्याग किया हो। जब अपने हाथों धर्मकार्य होता है, तभी मरते समय समाधान होता है और तभी मनुष्य की उन्नति भी होती है।

दूसरों की मदद पर निर्भर रहने में खतरा

हमारे मन में हमेशा यही सवाल उठता है कि गाँव के लोग अपने अड़ोस-पड़ोस के लोगों के लिए क्या त्याग कर रहे हैं ? सौंद्रम् अम्मा यहाँ आयी और

उसने किसी भाई को अंबर चरखा दिया। अब वह आपका सूत गांधीग्राम ले जायगी, बुनकर से बुनवा लेगी, मदुराई में जाकर बेचने की मेहनत करेगी और फिर पैसा मिलने पर आपको मजदूरी देगी। वह इतना सब करेगी, तो उसे मरने के बाद इन्द्रासन मिलेगा, लेकिन आपको क्या मिलेगा ? गाँव के लोग देख रहे हैं कि हमारे गाँव के एक गरीब का पोषण बाहरवाले कर रहे हैं, हम इसी गाँव में रहते हैं, पर गाँववालों की बनायी खादी नहीं खरीदते, फिर उन्हें इन्द्रासन कहाँ से मिलेगा ? इसलिए हमें तो तब खुशी होती है, जब गाँववाले निश्चय करते हैं कि हम अपने गाँव में बनायी खादी ही पहनेंगे। इससे गाँव के भाई-बहनों को मजदूरी मिलती रहेगी। आज सरकार खादी को मदद दे रही है। पर मान लीजिये कि कल वह सोचेगी कि "हम खादी को कहाँ तक मदद दें ?", तो फिर आपका क्या होगा ? कल महायुद्ध शुरू हो जाय और बाहर से आनेवाला और यहाँ से बाहर जानेवाला माल बंद हो जाय, तो फिर पंचवर्षीय योजना खतम हो जायगी और डॉक्टर सौंद्रम् का सारा काम खतम होगा।

आत्मनिर्भरता का महत्त्व

हम महात्मा गांधी के आश्रम में रहते थे, जहाँ साबरमती नदी बहती थी। उसका पानी गर्मी में सूख जाता था। उस वक्त पानी का कुछ हिस्सा मुख्य प्रवाह से अलग हो जाता और उसका डबरा बन जाता। हम नदी पर स्नान के लिए जाते, तो देखते कि डबरा दिन-ब-दिन सूखता ही जाता है। डबरे में मछलियों को बड़े आनन्द से इधर-उधर उछलते-कूदते देख हमारे दिल को बड़ी तकलीफ होती थी। हमें लगता कि यह डबरेवाला पानी मुख्य प्रवाह से अलग पड़ गया है, तो उसका क्या होगा ? हमें उन मछलियों पर दया आयी और हमने डबरे को मुख्य प्रवाह के साथ जोड़ दिया। उससे मछलियाँ इतनी खुश हुईं कि छलांग मारकर मुख्य प्रवाह की ओर दौड़ पड़ीं। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' एक बड़ा डबरा है। उसमें सरकार की ओर से काफी पानी आया है। किन्तु महायुद्ध शुरू होते ही वह मुख्य प्रवाह बहना बन्द हो जायगा और यह डबरेवाला पानी भी खतम हो जायगा। फिर यह अम्मा आपका

सूत न ले जा सकेगी। तब आप क्या करेंगे? इसलिए जो गाँव अपने पाँव पर खड़ा नहीं होता, उसे बाहर से कितनी ही मदद मिले, तो भी वह टिक नहीं सकता, बल्कि आगे और भी अधिक दुःखी होता है। जिन गाँवों को मदद न मिलती थी, वे किसी-न-किसी तरह निभा लेते थे और निभा लेंगे। लेकिन जिन्हें मदद मिलती है वे आज तो मजे में हैं, पर मदद क्षीण होने पर बिलकुल बेहाल, अनाथ हो जायँगे। सारांश, आपको दो बातें याद रखनी होंगी: (१) अपनी उन्नति के बारे में सोचना। आपकी उन्नति दूसरों की मदद लेकर खाते रहने से नहीं, बल्कि दूसरों के लिए त्याग करने से ही होगी। (२) जो गाँव केवल बाहर की मदद पर आधार रखेगा, उसके लिए वह खतरनाक बात है।

पैसे से झगड़े बढ़ते हैं

आपके गाँव में चर्खे बढ़ें और आपको ज्यादा पैसा मिलने लग जाय, तो यहाँ झगड़े भी शुरू हो जाने का डर है। कताई के साथ तो प्रेम आना चाहिए। गांधीजी ने कहा था कि "कताई अहिंसा की—प्रेम की निशानी है।" लेकिन गाँव में चर्खा चलता है, इसीलिए कताई चलती है, ऐसा नहीं कहा जा सकेगा। वह अहिंसावाली नहीं, पैसेवाली कताई होगी। पैसा आते ही बुद्धि में दोष पैदा होता है। यह बात हम कल्पना से नहीं कह रहे हैं। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में काम करनेवाले एक नेता ने हमें अपना अनुभव सुनाते हुए कहा कि गाँव को जितना पैसा मिलता है, उतने परिमाण में झगड़े मिटते नहीं, बल्कि बढ़ते हैं। यह दोष मिलनेवाली बाहरी मदद का नहीं, बल्कि इस बात का है कि हमने पैसे को महत्त्व दिया, श्रम और प्रेम को महत्त्व नहीं दिया। अगर गाँववाले अपने लिए कपड़ा बनाने और वही पहनने का निश्चय करते तथा बचा हुआ सूत बाहर भेजते, तो उससे गाँव में ताकत पैदा होती। आज गाँव में ताकत नहीं है। केवल बाहरी ताकत पर ही वहाँ काम हो रहा है।

केवल लोगों के हाथ में ज्यादा पैसा आने से ही काम नहीं चलता। अमेरिकावालों के पास जितना पैसा है, उसकी बराबरी दुनिया का दूसरा कोई देश नहीं कर सकता। लेकिन आज वहाँ के लोगों की क्या हालत है? हर १० मनुष्य के

पीछे एक मनुष्य को दिमागी बीमारी है, जिसे 'मेनिआ' कहते हैं। वहाँ तरह-तरह के 'मेनिआ' हैं। कोई लड़का परीक्षा में फेल हुआ, तो उसका दिमाग खराब हो गया! किसीका किसी लड़की पर प्रेम था और उसने उसके प्रेम को नहीं माना, तो वह पागल हो गया! यहाँ तक सुना है कि लड़के ने बाप से खाने की कोई चीज माँगी और बाप ने नहीं दी, तो लड़के ने बाप को पिस्तौल से मार दिया! आप यह न समझें कि अमेरिका में घर-घर ऐसा ही चल रहा है। वहाँ भी अच्छे लोग बहुत हैं। ईश्वर की दुनिया में अच्छे लोग तो होते ही हैं। फिर भी वहाँ दस में एक को दिमागी बीमारी क्यों? वहाँ पैसे की कोई कमी नहीं, बल्कि पैसे भरमार ही हैं और इसीलिए यह हो रहा है।

पहले बुनियाद बनाओ

इस गाँव में सुन्दर काम चल रहा है। उसकी बुनियाद अच्छी होनी चाहिए। नहीं तो किसीने एक बहुत बड़ा मकान बनाया, ऊँची सुन्दर दीवालें बनायीं, उन पर सुन्दर चित्र खोदे, लेकिन बुनियाद नहीं बनायी। फिर बारिश हुई और सब-का-सब—दीवालें, चित्र आदि–ढह गया। कुछ लोग कहते हैं कि हम पीछे से बुनियाद बनायेंगे। एक लड़का अपनी माँ को रसोई बनाते देखता था। उसने देखा कि रसोई में चूल्हा सुलगाना, बर्तन रखना, पानी डालना और चावल छोड़ना, ये चार चीजें होती हैं। उसने पहले चूल्हा सुलगाया, फिर उसमें चावल डाला, उसके ऊपर पानी डाला और फिर उस पर बरतन रखा। वे ही चार चीजें थीं, पर पहले जो करना था, वह नहीं किया, इसलिए भात नहीं बन सका। ग्रामदान ग्रामराज्य की बुनियाद है। बुनियाद पक्की बनाओ और फिर देखो, कैसा मकान बनता है। हमने भू-दान के पहले १५-२० साल देहात में काम किया। खूब मेहनत करने पर भी हम जैसा चाहते थे, वैसा काम नहीं बना। इसका कारण यही था कि जो काम पहले करना था, उसे हमने पीछे किया। पहले हमने सूत कातना शुरू किया, जिसमें पूनी मिल की थी। फिर ध्यान में आया कि हमें पूनी बनानी चाहिए। लेकिन रूई तो जिन की थी। फिर ध्यान में आया कि उसमें कचरा था, इसलिए धुनाई शुरू की। फिर ध्यान में आया कि कपास

चाहिए, तो जमीन से शुरू करना चाहिए, तब भू-दान-यज्ञ शुरू हुआ। १९२० में कताई शुरू हुई। फिर धुनाई, कपास पैदा करना और अब भू-दान! हमें अपने ३० साल के काम से जो अक्ल आयी, उसे हम आपके सामने रखते हैं। हम बेवकूफ बने और उसके बाद यह अक्ल आयी। हम चाहते हैं कि आप हमारे जैसे बेवकूफ न बनें।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

नयी तालीम के तीन सिद्धान्त : १८ :

नयी तालीम में काम करनेवाले आप सब अनुभवी लोग हैं। यहाँ के लोग सिर्फ तात्त्विक चर्चा करनेवाले नहीं, काम के साथ विचार-चर्चा भी करते हैं। जो लोग काम के साथ विचार-चिन्तन करते हैं, उनके विचार में सचाई आती है। इसलिए हम आप लोगों के प्रश्नों के उत्तर व्यावहारिक दृष्टि से देंगे। आपके प्रश्न बहुत अच्छे हैं। उनका अलग-अलग उत्तर देने की जरूरत नहीं। प्रश्नों का भाव ध्यान में लेकर उत्तर दे रहा हूँ। आपके प्रश्नों की मर्यादा में रहने की कोशिश करूँगा।

अहिंसा के लिए प्रेम, पर श्रद्धा हिंसा पर

जहाँ तक नयी तालीम का सवाल है, उसके पीछे एक निष्ठा है। वह अहिंसा की निष्ठा है। आज दुनिया में ऐसा कोई शख्स नहीं, ऐसा कोई समाज नहीं, जो अहिंसा को पसंद न करता हो। क्योंकि यह चीज वैसी ही मीठी है। किंतु ऐसा होने पर भी जहाँ व्यवहार का ताल्लुक आता है, वहाँ लोगों की श्रद्धा अहिंसा पर बैठती नहीं। लोगों के हृदय में अहिंसा के लिए प्रेम जरूर है, पर आज भी अगर कुछ श्रद्धा है, तो वह हिंसा पर ही। माता-पिता बच्चों को समझाने की कोशिश करते हैं। वे नहीं समझते, तो उनको डाँटते-धमकाते हैं और उससे भी वे नहीं समझते, तो आखिर उनको पीटते हैं। उस पीटने में भी उनका प्रेम होता है। उन लड़कों का भला हो, यही भावना होती है। सारांश,

आज दुनिया में जीवन की सब शाखाओं में यही विचार काम कर रहा है कि जो समझाने पर भी नहीं समझता, उसे समझाने का अचूक साधन अगर कोई है, तो ताड़न ही है। घर में यह ताड़न है, सरकार में दंड है, समाज में बहिष्कार है, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के लिए सेना है। इस तरह अपनी-अपनी जगह पर हिंसा के छोटे-मोटे रूप दीख पड़ते हैं। घर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों तक सारा आखिरी दारोमदार हिंसा पर है।

अहिंसा की प्रक्रिया सौम्य-सौम्यतर

हमने बच्चे को समझाया, पर वह न समझ सका, तो उसे अधिक प्रेम से समझाया। उससे भी वह नहीं समझ सका, तो अधिक सौम्य इलाज ले लिया। इस तरह अपना समझाने का तरीका अधिकाधिक सौम्य करते गये। यह है अहिंसा की श्रद्धा। जो काम मारने-पीटने से नहीं हो सकता, वह किंचित् धमकाने से हो सकता है। जो काम धमकाने से नहीं हो सकता, वह समझाने से जरूर होगा। जो काम समझाने से नहीं हो सकता, वह प्रेमपूर्वक सेवा करने से जरूर होगा। जो काम प्रेमपूर्वक सेवा करने से नहीं होता, वह उसके लिए प्रेमपूर्वक अधिक त्याग करने से जरूर होगा—इस तरह उत्तरोत्तर प्रयास को समझाने और परिणाम लाने के लिए सक्षम माननेकी श्रद्धा का नाम ही 'अहिंसा' है।

अभी हम भू-दान के लिए लोगों को समझा रहे हैं। गाँव-गाँव घूमते और प्रेम से माँगते हैं। मान लीजिये कि उसका अच्छा असर नहीं होता, तो अक्सर लोग यही सोचते कि इसके लिए कोई उग्र कदम उठाना पड़ेगा और अगर उस उग्र कदम से कुछ नहीं हुआ, तो उससे भी ज्यादा तीव्र कदम उठाना पड़ेगा। वे अहिंसा की मर्यादा में रहकर ही ऐसा सोचते हैं। उन्होंने अहिंसा की मर्यादा इतनी ही मान ली है कि हम किसीको मारेंगे-पीटेंगे नहीं, हम इसीको हिंसक चिंतन मानते हैं। यह अहिंसा का सोचने का ढंग नहीं। शस्त्रास्त्रों में यही तो चलता है। छोटे शस्त्रों से काम पूरा न हो, तो बड़े शस्त्र निकाले जायँ। उनसे भी काम पूरा न हो, तो अधिक तीव्र शस्त्र निकाला जाय। इसी तरह अहिंसा के लिए

भी तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम की सोचते चले जायँगे, तो वह नाममात्र के लिए अहिंसा होगी, विचार की अहिंसा न होगी। इसलिए अहिंसा में 'सौम्य, सौम्यतर और सम्यतम' ही सोचने का ढंग होगा।

कर्मपरायण लोग हमेशा प्रेम से बात करते और समझाते हैं। जहाँ सामने वाला नहीं समझता, वहाँ एकदम आवाज ऊँची हो जाती है। इसीका नाम है, हिंसा की प्रक्रिया। हमारे प्रेम से समझाने पर भी परिणाम न आये, तो तीव्र समझाने से कैसे आयेगा? इसलिए हमारा प्रेम नाकाफी होता है, तो हमें अधिक प्रेम करने की इच्छा होनी चाहिए। यह चीज हम सारे समाज के लिए कह रहे हैं। राजनीति, व्यापार-व्यवहार, सामाजिक क्षेत्र, कुटुंब, सभी के लिए यह लागू होगा। यह शिक्षण का मूलभूत सिद्धान्त है। यह विचार अगर स्पष्ट हो जाय, तो नयी तालीम की आगे की प्रक्रिया समझना आसान हो जाता है। हमें यह बात निरंतर ध्यान में रखनी चाहिए कि अहिंसा याने केवल 'मारना नहीं', 'पीटना नहीं' या केवल 'शस्त्रत्याग' इतना ही नहीं है। वह तो एक अभावात्मक वस्तु है। अहिंसा के चिंतन की प्रक्रिया ही भिन्न है।

विचार में व्यापक, कर्मयोग में विशिष्ट

दूसरी बात यह है कि जिसे हम 'हम' कहते हैं, वे कौन हैं? उसमें कुछ तो विचार का अंश है और कुछ शरीर का। अगर हम इन दोनों का मिलन करते हैं, तो हमारा कर्तव्य स्पष्ट हो जाता है। हमारी आँख बहुत दूर देख नहीं सकती। अगर चश्मा लगाया जाय, तो जरा और ज्यादा दूर देखेगी; फिर भी उसकी एक मर्यादा है। इसी तरह कान की और हाथ-पाँव की शक्ति की मर्यादा है। इसलिए हमारा कर्तव्य-क्षेत्र शरीर के आसपास होगा। जीवन का सारा ढाँचा आसपास के लोगों की सेवा के खयाल से होना चाहिए। यह सेवा का एक सूत्र हुआ। विचार में तो हम अत्यंत दूर देख सकते हैं—जमीन पर बैठे-बैठे आसमान का चिंतन कर सकते हैं। चिंतन की शक्ति बहुत व्यापक होती है। इसलिए चिंतन से हमें विश्व-मानव बनना चाहिए। अवश्य ही हम एक विशिष्ट स्थान पर रहते हैं, पर हमारा मन ऐसा होना चाहिए कि हम सारे विश्व के नागरिक हैं। चिंतन में कभी

संकोच न होना चाहिए, यद्यपि कार्य में हम नजदीक के क्षेत्र में ही काम करते रहें। दोनों में कभी विरोध न होना चाहिए। हम नजदीकवालों की ऐसे ढंग से सेवा करें कि दूरवाले को कुछ भी नुकसान न हो, बल्कि उन्हें भी फायदा हो। इस तरह विश्वहित से अविरोधी आसपास के क्षेत्र की सेवा ही हमारे जीवन का रहस्य है। हमारी तालीम इस तरह की दुहरी शक्ति से पूर्ण हो। विचार में कहीं भी संकीर्णता और संकुचितता न हो, लेकिन प्रत्यक्ष आचरण और कृतियों की योजनाएँ आसपास के क्षेत्र की ओर ही अनन्य-निष्ठा से हों।

आप जानते हैं कि भगवान् बुद्ध समस्त विश्व के लिए करुणा रखते थे, ईसा-मसीह का हृदय कुल विश्व-समाज के लिए प्रेम से भरा था। लेकिन ईसा ने फिलस्तीन के आसपास ही काम किया। आज हमारा बच्चा भी दुनिया का जितना भूगोल जानता है, उतने की भी कल्पना ईसा को नहीं थी। उनको भाषा भी एक ही आती थी। इस तरह एक ही भाषा बोलनेवाला और भूगोल का बिलकुल सीमित ज्ञान रखनेवाला शख्स सारी दुनिया पर प्यार करता था। कारण उसका हृदय विशाल था। यही हालत भगवान् बुद्ध की थी। वे पाली बोलते थे, जो उस जमाने की किसानों की भाषा थी। बिहार और उत्तर प्रदेश के एक हिस्से में वे घूमे। जितने क्षेत्र में घूमे, उसीका 'बिहार' नाम पड़ा। बिहार से बाहर की दुनिया का शायद उन्हें ज्ञान भी न था। उन्होंने बिलकुल नजदीक के क्षेत्र की सेवा की। किन्तु उनके चिंतन में सारे विश्व के कल्याण की बात भरी है। नयी तालीम के लिए भी यही मंत्र है। 'विचार में व्यापक और कर्मयोग में विशिष्ट'—यह है नयी तालीम का दूसरा विचार!

नयी तालीम में 'ब्रेड लेबर' का सिद्धांत

तीसरा विचार बहुत बड़ा विचार है। अगर हम उसे नहीं समझते, तो नयी तालीम में कर्म के लिए इतने अधिक आग्रह का रहस्य ही समझ में न आयेगा। आज हम दुनिया के तरह-तरह के काम करते हैं। कोई वकील है, तो कोई व्यापारी, कोई प्रोफेसर है, तो कोई मंत्री, कोई किसान है, तो कोई कुछ। ये सारे काम समाज के लिए मुफीद माने जाते हैं। इन्हें प्रामाणिकता से करनेवाला योग्य

लोक-सेवक माना जायगा। आज का समाज जिस तरह बना है, उस तरह उसमें कोई दोष नहीं। किन्तु नयी तालीम केवल आज के समाज को ध्यान में रखकर सेवा करनेवाली नहीं है। जो समाज आगे बनाना है, उसी खयाल से सोचनेवाली 'नयी तालीम' है।

उस समाज के आचरण का एक बड़ा सूत्र यह है कि हर कोई अपने शरीर के आहार के लिए शारीरिक परिश्रम करे। दूसरे-तीसरे बौद्धिक काम करके शरीर को खिलाना उत्तम धर्म नहीं। शरीर का पोषण शरीर-परिश्रम से ही करना चाहिए। इसीको 'ब्रेड-लेबर' कहते हैं। इसीको भगवद्गीता में 'यज्ञ' नाम दिया गया है। उसीका जिक्र ईसा ने किया है कि "अपने पसीने से जो रोटी कमाता है, वह ब्रेड-लेबर है।" नयी तालीम में यह एक मूलभूत सिद्धान्त है। इस तत्त्व को जो पूरी तरह कबूल न करेंगे, वे नयी तालीम भी पूरी तरह कबूल न करेंगे। नयी तालीम सिर्फ इतनी ही नहीं कि किसी भी क्रिया के जरिये ज्ञान प्राप्त करना। शिक्षण-शास्त्र के दूसरे भी कई विचारक कहते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ-न-कुछ काम करना चाहिए। हम ऐसे ही गणित सिखायेंगे, तो वह हवा में उड़ जायगा। लेकिन कुछ व्यवहार का काम करते हुए उसके जरिये गणित सिखायें, तो बच्चे आसानी से समझ लेंगे। यह तो बिलकुल ही मामूली शिक्षण-पद्धति का विषय है। यह नयी तालीम नहीं है।

हमारा दृढ़ विचार है कि अपने शरीर की आजीविका शरीर-परिश्रम से प्राप्त करना धर्म है। अगर हम वैसा नहीं करते, तो दूसरों के कंधों पर बैठते हैं। तब हम हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते। चाहे आप इस विचार को गलत कहें या सही, नयी तालीम के मूल में यही विचार है। वैसे लोग व्यायाम के लिए कुछ शरीर-परिश्रम करना अच्छा समझते हैं और ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ 'प्रोजेक्ट' के तौर पर काम करना अच्छा है। इस तरह जो काम करते हैं, वह भी काम है, पर वह 'ब्रेड-लेबर' नहीं। नयी तालीम 'ब्रेड-लेबर' के सिद्धान्त का आधार रखती है, श्रद्धा रखती है।

जीवन में श्रम का स्थान

लोग हमसे पूछते हैं कि "बाबा, आप पैदल यात्रा का इतना आग्रह क्यों

रखते हैं ?" इसके कई कारण हैं, पर एक कारण यह भी है कि हम चाहते हैं कि जरा शरीर-परिश्रम हो। यह मेरा 'ब्रेड-लेबर' है। लोग मुझे खाना देते हैं और मैं १०-५ मील चलता हूँ, तो मान लेता हूँ कि मेरे हाथों कुछ 'ब्रेड-लेबर' हुआ। इस तरह यात्रा के साथ मैंने 'ब्रेड-लेबर' का नाता जोड़ दिया है। पिछले ३० साल तक तो 'ब्रेड-लेबर' के सिद्धान्त पर ही मेरा जीवन चला है। साधारणतः आठ घंटे काम तो मेरा होता ही था, पर कभी-कभी ज्यादा भी होता था। कभी खेती, कभी पानी सींचना, पिसाई, भंगी-काम, कताई, बुनाई, धुलाई, बढ़ई-काम आदि तरह-तरह के काम मैं घंटों सतत तीस साल करता रहा। उससे हमारी बुद्धि की शक्ति बहुत बढ़ी, कम नहीं हुई। हम यह नहीं कहना चाहते कि जो रात-दिन केवल शरीर-परिश्रम करेगा, उसकी बुद्धि तीव्र होगी। किसी चीज की 'अति' हो जाती है, तो विकास रुक ही जाता है। हम यही कहना चाहते हैं कि जिस जीवन में शरीर-परिश्रम का अच्छा अंश और उसके साथ चिंतन भी होगा, वहाँ अच्छा बुद्धि-विकास होगा।

हमारा यही अनुभव है। बचपन में हमारी स्मरण-शक्ति अच्छी याने साधारण मध्यम से कुछ अच्छी थी, पर आज ६२ साल की उम्र में वह बचपन से बहुत ज्यादा तीव्र हुई है। जो चीज याद रखने लायक है, उसे हम नहीं भूलते। कभी किसी पुस्तक में हमने अच्छा विचार पढ़ा और वह जँचा, तो वह उस भाषा के साथ हमारे ध्यान में रहता है। इसके कई कारण हैं, पर एक कारण यह जरूर है कि जीवन में शरीर-परिश्रम का अंश रहा। हम कहना चाहते हैं कि केवल कर्म के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए कर्म के जरिये ज्ञान दिया जाय, इतना ही नयी तालीम में नहीं है। किंतु शरीर-परिश्रम से जीविका हासिल करने के एक बड़े सिद्धान्त को मान्य कर उसीके आधार पर यह नयी तालीम बनी है।

उत्तम राज्य का लक्षण

अब मैं पद्धति के विषय में कुछ कहूँगा। आजकल बिलकुल आखिरी शास्त्र राज्य-शास्त्र है। राजनीति-शास्त्रज्ञ कहते हैं कि जो राज्यसत्ता नहीं चलाता, वह सबसे श्रेष्ठ है। जो कम-से-कम सत्ता चलायेगा, वह अधिक-से-अधिक अच्छा

राज्य है। अगर कोई ऐसा राज्य हो, जहाँ दीखता ही न हो कि व्यवस्था की जा रही है, वह सर्वोत्तम राज्य होगा। आज ईश्वर का राज्य किस तरह चलता है? उसने ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी है कि खुद न जाने किस कोने में जाकर सो गया है। उसने तरह-तरह की शक्ति और बुद्धि प्राणिमात्र में बाँट दी है। वह एक परिपूर्ण विकेन्द्रीकरण है और उसके साथ-साथ सबका सहयोग करने की प्रेरणा भी। परिणाम यह है कि परमेश्वर है या नहीं, इसकी भी लोगों को शंका होने लगती है। परमेश्वर की योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि परमेश्वर है या नहीं, ऐसा कहने की लोग हिम्मत करते हैं। केवल वैसा संदेह ही नहीं करते, बल्कि नास्तिक बनकर ईश्वर है ही नहीं, ऐसा भी कहते हैं।

होना तो यह चाहिए कि दिल्ली में भारत का उत्तम राज्य चल रहा हो और कौन लोग राज्य चला रहे हैं, यह देखने के लिए कोई जाय, तो उसे कोई दीख ही न पड़े। न तो पार्लमेंट दीखे और न बड़े-बड़े मकान ही। "राज्य चलानेवाले कहाँ हैं?" यह पूछने पर जवाब मिले कि "वे खेत में काम कर रहे हैं।" अगर पूछा जाय कि "क्या ये ही राज्यकर्ता हैं?" तो जवाब मिले, "हाँ, ये ही हैं। अभी इनका काम खतम हुआ, इसलिए ये खेत में पेड़ के नीचे बैठे-बैठे आपस में बातें कर रहे हैं—क्यों रे भाई, मिस्र पर हमला हुआ है, तो उसका क्या किया जाय? उसके लिए क्या सलाह दी जाय, आदि चर्चा चल रही है।" उनसे पूछा जाय कि "आप क्या कर रहे हैं?" तो वे जवाब दें, "हम दुनिया के राज्यकर्ता हैं और हिन्दुस्तान के भी। इसलिए अपना खेत का काम होने के बाद फुर्सत से हमें ये बातें सोचनी पड़ती हैं।" "सोचकर आप क्या करते हैं?" "सलाह देते हैं।" "फिर क्या होता है?" "अगर लोगों को वह पसंद हो, तो वे मानते हैं और न हो तो नहीं मानते।" इस तरह दुनिया बड़ी अच्छी चल रही है, ऐसा जब दिखाई देगा, तभी उसे 'उत्तम राज्य' कहा जायगा। आज तो हालत यह है कि पं० नेहरू को दिल्ली से हटाने की बात हो, तो सारा देश डाँवाडोल हो जायगा। फिर कौन राज्य चलायेगा, यह सवाल पैदा हो जायगा।

सिवा आज हालत यह है कि पं० नेहरू हिन्दुस्तान का राज्य चलाने के लिए सोलह घंटा काम करते हैं। पर परमेश्वर को कुल दुनिया का राज्य चलाने के लिए

कितने घंटे काम करना पड़ता है ? हिन्दुओं से यह सवाल पूछो, तो वे कहेंगे कि परमेश्वर क्षीरसागर में सोया है। वह कुछ भी नहीं करता है। इसका मतलब यह है कि राज्य चलाना यह कोई क्रिया नहीं, वह एक विचार और चिंतन है। चिंतन से ही दुनिया का राज्य चलना चाहिए। क्रिया का, हलचल का और आयोजन का अंश जितना कम होगा, राज्य उतना ही अच्छा चलेगा। जिस राज्य में सिपाही न हों, शस्त्र-सामग्री न हो, लोगों के लिए किसी प्रकार का दंड न हो, फिर भी लोग सत्ता चलाते, उत्तम सलाह मानते और नीति का असर अपने चित्त पर होने देते हैं, वही उत्तम राज्य है।

गुप्त तालीम सर्वोत्तम तालीम

राज्य का यही न्याय हम तालीम को भी लागू करते हैं। जहाँ तालीम दी जा रही है और ली जा रही है, ऐसा भास ही न हो, वही सर्वोत्तम नयी तालीम है। आप क्या काम कर रहे हैं ? यह पूछने पर यही कहा जाता है कि मैं भोजन करता हूँ या सो रहा हूँ, मैं खेलता हूँ या पढ़ रहा हूँ। यह कोई नहीं कहता कि "हम श्वासोच्छ्वास ले रहे हैं", यद्यपि इन सोने, बोलने, पढ़ने या खानेवालों की श्वास लेने की क्रिया निरंतर जारी रहती है। नाम तो दूसरे बाहरी कामों का ही लिया जाता है। इसी तरह नयी तालीम में भी यह पूछने पर कि लड़के और शिक्षक क्या करते हैं, यही उत्तर मिलने चाहिए कि अभी खेत में काम करते हैं, बीमार की सेवा में हैं, गाँव की सफाई करते हैं। ज्ञान मिल रहा है या दिया जा रहा है, ऐसा जहाँ भास होगा, वहाँ कृत्रिमता आ जायगी।

यह पूछने पर कि आप क्या पी रहे हो ? उत्तर मिलता है कि दूध या चाय। उसमें शक्कर भी पड़ी रहती है, पर उसका कोई नाम ही नहीं लेता। कोई नहीं कहता कि मैं दूध-शक्कर या चाय-शक्कर पी रहा हूँ। शक्कर की मिठास दूध या चाय में मिली है। देखने में दीखता है कि वह दूध या चाय पी रहा है, लेकिन वह चुपके से शक्कर पी लेता है। शिक्षण भी इसी तरह शक्कर के मुआफिक होना चाहिए। उसका काम बिलकुल गुप्त चलेगा। दीखने में हाथ, नाक, कान, आँख, जीभ काम करती है, पर वास्तव में काम करता है आत्मा। अवश्य ही

आपके कान सुन रहे हैं और मेरी जीभ बोल रही है। किन्तु अगर ये कान या यह जीभ यहाँ काटकर रख दी जाय, तो क्या वह बोलेगी या वे सुनेंगे? इसी पर से पता चलेगा कि केवल जीभ नहीं बोलती और न केवल कान ही सुनते हैं, भले ही देखने में वे बोलते-सुनते हों। वास्तव में अंदर जो एक आत्मतत्त्व है, वही बोल और सुन रहा है। लेकिन वह गुप्त है। इसी तरह वही सर्वोत्तम नयी तालीम होगी, जो गुप्त होगी। जो तालीम जितनी प्रकट दीखेगी, उतनी ही उसमें न्यूनता मानी जायगी।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

सेवा के जरिये सत्ता की समाप्ति : १६ :

[तमिलनाड के प्रमुख भूदान-कार्यकर्ता एवं जिला-संयोजकों के बीच दिया गया भाषण।]

क्रान्तिकारी निर्णय

पलनी में सर्व-सेवा-संघ का जो प्रस्ताव हुआ, वह बड़ा ही क्रांतिकारी है। इन दिनों किसी भी काम को 'क्रांतिकारी' कहने का रिवाज चल पड़ा है। पर यह प्रस्ताव वैसा नहीं है। यह पूरे अर्थ में क्रांतिकारी है। अब से प्रांतीय भू-दान-समितियाँ और जिला भू-दान-समितियाँ न रहेंगी। जिसे हम आर्गनाइजेशन (संगठन) तंत्र, रचना कहते हैं, वह कुल खतम हो जायगी। उस प्रस्ताव का यही सबसे बड़ा अंश है। दूसरा अंश यह है कि आज तक हमें भू-दान के काम के लिए केन्द्रीय निधि (गांधी-निधि) से पैसा मिलता था, वह अब न लेंगे। यह भी महत्त्व की बात है, लेकिन तंत्र-मुक्ति की तुलना में इसका महत्त्व कम है। क्योंकि केंद्रीय निधि छोड़ें, तो भी जगह-जगह संपत्ति-दान के जरिये संपत्ति मिल सकती है। फिर भी उसमें यह फर्क पड़ जाता है कि स्थानीय शक्ति पैदा होती है। लेकिन भू-दान-समितियाँ तोड़ डालीं, यही मुख्य वस्तु है। उसके बदले में योजना यह है कि हमने कुल-का-कुल आन्दोलन जनता पर सौंप दिया है। भिन्न-भिन्न

राजनैतिक पक्षों के लिए भी भू-दान को चाहते हैं, तो वे भू-दान में अपना जोर लगायें। जगह-जगह तालीम देनेवाली संस्थाएँ हैं, ग्राम-पंचायतें हैं, वे सब इसमें अपना जोर लगायें। इस तरह सब जोर लगायें। किन्तु जगह-जगह एक-आध मनुष्य ऐसा होना चाहिए, जो एक जिले का मालिक नहीं, सेवक बनकर रहे। आज जो संयोजक हैं, वे मालिक के तौर पर नहीं हैं, फिर भी अधिकारी माने ही जाते हैं; क्योंकि उनके हाथ में एक समिति रहती है। फलतः लोग कहा करते हैं कि वह संयोजक और उसकी समिति ही काम करेगी। बाबा आ रहा है, उसका संदेश गाँव-गाँव पहुँचाना है, तो कौन काम करेगा? तो कहा जाता है, भूदान-समिति और संयोजक! मैं मानता हूँ कि इससे हमारी ताकत कम होती है।

विकास और निरोध की दोहरी साधना

यह आन्दोलन किसी पार्टी का नहीं है। कांग्रेस का अध्यक्ष आता है, तो कांग्रेसवालों के जरिये उसका इन्तजाम होता है। प्रजा-समाजवादी पार्टी का नेता आता है, तो उस पार्टीवाले इन्तजाम करते हैं। लोग उसमें शामिल तो होंगे, पर समझेंगे कि इन्तजाम की जिम्मेवारी हमारी नहीं, उस पार्टीवालों की है। ऐसे ही अगर लोग मानें कि बाबा के काम की जिम्मेवारी भू-दान-समिति की है, हमारी नहीं, तो भू-दान-कार्य भी एक पक्ष बन जायगा। इस पर कोई हमसे पूछेगा कि "आप यह सब जानते थे, तो फिर आपने यह सारा क्यों खड़ा किया?" बात यह है कि उसके बिना शायद इस काम का आरम्भ करना ही मुश्किल हो जाता। बाबा के हाथ में कोई संस्था नहीं थी, इसीलिए आरम्भ में वैसी योजना करनी पड़ी। किन्तु एक साल पहले से ही हम उसे तोड़ना चाहते थे। बेजवाड़ा की बैठक में हमने कहा भी था कि "यह सारा तोड़ दो और आन्दोलन जनता पर सौंप दो।" हमें लगता है कि अगर उस वक्त यह किया जाता, तो आज हमारी ताकत ज्यादा बढ़ी दीखती। पर उस वक्त मित्रों को लगा कि इससे शक्ति बढ़ने के बजाय क्षीण होगी। इसलिए हम धीरे-धीरे इसे खतम करेंगे। हमारा सालभर इस पर चिंतन चलता रहा।

हम कहना चाहते हैं कि ऐसे मामले धीरे-धीरे खतम नहीं होते, उन्हें तोड़ना ही पड़ता है। ईशावास्य-उपनिषद् में कहा है कि मनुष्य को विकास और निरोध, ऐसी दोहरी साधना करनी पड़ती है। हम रोज सुबह प्रार्थना में ईशावास्य बोलते हैं। हमें जितना परिपूर्ण विचार ईशावास्य के चंद श्लोकों में मिला, उतना दुनियाभर के साहित्य में और कहीं नहीं मिला। 'गीता' भी एक छोटा-सा ग्रन्थ है। 'कुरल' भी बड़ा नहीं। फिर भी उनमें हजार-पाँच सौ श्लोक हैं। लेकिन ईशावास्य में सिर्फ अठारह श्लोक हैं। पतंजलि के योगसूत्र १९५ हैं। वे छोटे अवश्य हैं, पर 'ईशावास्य' की बराबरी नहीं कर सकते। ईशावास्य में जीवन के लिए क्या-क्या चाहिए, इसका पूरा नक्शा ही अठारह श्लोकों में बताया है। उसमें यह आता है कि कुछ विकास चाहिए, कुछ निरोध। इतने साल विकास की कोशिश की, अब निरोध का मौका आया है। इसके बाद फिर विकास शुरू होगा, फिर कहीं निरोध। इसी तरह अपना काम चलेगा।

जिला-सेवक मध्यबिन्दु पर रहे

हमने कहा कि एक दफा पुराना ढाँचा खतम करो, फिर नया कैसे करना, यह हमें सूझेगा। नहीं तो हमें अक्ल ही न आयेगी। इस प्रस्ताव का अर्थ आपको ठीक से समझ लेना चाहिए। इसके आगे एक-एक जिले के लिए एक-एक मनुष्य रहेगा। उसके हाथ में न कोई संस्था होगी और न कोई संचित निधि ही। उसके सहयोग में किसी संस्था की योजना नहीं। जंगल में हम अपना एक-एक सिंह का बच्चा छोड़ देंगे और वह अपना नसीब देख लेगा। जिस जिले के लिए ऐसा मनुष्य न मिलेगा, हम समझेंगे कि वहाँ हमारा काम नहीं होता। वहाँ के लोग करना चाहें, तो कर सकते हैं; पर हमारी तरफ से कोई मनुष्य न रहेगा। हर जिले में काम हो, यह कोई हमने अपनी जिम्मेवारी नहीं मानी है। हमें कोई चुनाव थोड़े ही लड़ना है, जो हर जगह मनुष्य चाहिए। फिर भी हमारी कोशिश यही रहेगी कि हर जिले के लिए एक मनुष्य हो। उस मनुष्य में क्या-क्या गुण चाहिए, उस बारे में मैं कुछ कहूँगा।

वह सबका सहयोग हासिल कर सके। उसे इतना प्रेममय होना चाहिए कि

हरएक के हृदय में जो ज्योति हो, उसे वह देख सके। इसीलिए वह सब पार्टियों का सहयोग हासिल करेगा। यह कहने में भी गलत भाषा का प्रयोग होगा। वह क्या सहयोग हासिल करेगा ? वह कुछ करेगा ही नहीं, उन लोगों से करवा देगा। वह उन लोगों के पीछे तकाजा लगायेगा। ऐसा सब लोगों के साथ मिल-जुल सकनेवाला आदमी चाहिए। जो सब पर प्यार करना चाहता है, उस पर यह जिम्मेवारी आती है कि वह किसी पक्ष के साथ जुड़ा न रहे।

एक वर्तुल है, उस पर अ, ब, क, ड, प आदि १०-१५ बिन्दु हैं। अगर हम चाहते हैं कि उन सब बिन्दुओं से समान फासले पर रहें और सब पर समान प्यार करें, तो हमें कहाँ रहना चाहिए ? जो वर्तुल की परिधि (सर्कमफरेन्स) पर रहेगा, उसकी किसीके साथ ज्यादा दोस्ती होगी, तो किसीके साथ कम। वह किसी बिन्दु से ज्यादा फासले पर रहेगा, तो किसी बिन्दु से कम। इसलिए उसे वर्तुल के बीच मध्यबिन्दु में रहना होगा। वह इस संस्था में नहीं, उस संस्था में नहीं, ऐसा 'नहीं-नहीं' वाला मामला होगा। वह मध्यस्थ रहेगा। इसलिए वह किसी भी राजनैतिक पक्ष के अन्दर नहीं रहेगा और न ऐसी किसी संस्था में रहेगा, जहाँ चुनाव आदि चलते हों। चुनाव का मतलब यह है कि चन्द लोगों ने हमें पसन्द किया और उससे कम लोगों ने नापसन्द किया, तो हम चुनकर आये। अब हम सबकी सेवा करेंगे। ५१ लोग कहेंगे कि यह लायक मनुष्य है, हम इसकी सेवा स्वीकार करते हैं और ४९ कहेंगे कि यह निकम्मा मनुष्य है। किन्तु यह बात सर्वोदय की दृष्टि से बिलकुल भिन्न है।

मनु राजा कैसे बने ?

पुरानी कहानी है कि मनु महाराज किस तरह राजा बने। मनु महाराज जंगल में तपस्या और भगवान् का भजन करते थे। उन दिनों कोई राजा ही नहीं था। प्रजा में बहुत गड़बड़ी हो रही थी, इसलिए लोगों को लगा कि मनु महाराज हमारे राजा बनेंगे, तो अच्छा होगा। फिर लोग उनके पास गये और कहने लगे : "कृपा कर आप हमें मार्गदर्शन (गाइडन्स) कीजिये।" मनु बोले : "मैं आज यहाँ बैठा हूँ और जो आता है, उसे मार्ग दिखाता हूँ। किन्तु लोग उस मार्ग पर नहीं

चलते, इसके लिए क्या करूँ ? मैं भलाई की राह तो दिखा ही रहा हूँ।" आखिर मार्गदर्शन करना साइन-पोस्ट का काम है। वह दिशा बतलायेगा कि इस तरफ मदुरा है। लेकिन कोई उधर जाना ही न चाहेगा, तो क्या 'साइन-पोस्ट' उसका हाथ पकड़कर उसे ले जायगा ? लोगों ने कहा : "आपने स्वर्ग का रास्ता बतलाया है, यह सही है। किन्तु वह रास्ता छोटा (नॅरो) दीखता है, नरकवाला रास्ता अच्छा मोटर-रोड है, इसलिए हम उधर से जाना चाहते हैं।" मनु ने कहा : "ठीक है, जाओ। तुम्हारी मर्जी।" किन्तु लोग कहने लगे : "आप राजा बनिये, तब हमारा काम अच्छा चलेगा।" फिर मनु महाराज ने कहा : "मेरी दो शर्तें हैं। एक तो यह है कि कुछ लोग एक आवाज से कहें कि मनु राजा चाहिए, तब मैं जिम्मेवारी उठाने के लिए तैयार हूँ। एक भी शख्स वैसा कहने के लिए तैयार न हो, तो मैं राजा नहीं बनूँगा। दूसरी शर्त यह है कि मुझे जो भी भले-बुरे कानून बनाने पड़ेंगे, उन सबकी जिम्मेवारी, उनका सारा पाप-पुण्य आपका होगा। अगर यह आपको मंजूर हो, तो मैं राजा बनने के लिए तैयार हूँ।" लोगों ने उन्हें मंजूर किया और मनु राजा बने—एवम् मनुः राजा अभवत्।

सेवा द्वारा सत्ता की समाप्ति

यह सर्वोदय का विचार है कि हम एक मनुष्य पर भी अपनी सेवा न लादेंगे। इस पर कोई पूछेगा कि "क्या सब लोग हमें पसन्द न करेंगे, तो हम सेवा ही नहीं करेंगे ?" इसका उत्तर यह है कि "हम सेवा जरूर करेंगे, पर चुनाव के जरिये नहीं, चुनाव के बिना ही। सेवा के लिए चुनाव की जरूरत ही क्या है ? बाबा साढ़े पाँच साल से सेवा करते हुए पैदल निकल पड़ा है, उसे किसने चुना है ? खुद उसने अपने को चुना। लोग उसे यह नहीं कहते कि "आप यहाँ से चले जाइये। आपकी सेवा हम न लेंगे, हम आपको नहीं चुनते।" यहाँ चुनाव का सवाल ही क्या है ? कोई भला मनुष्य बीमार के पास जाकर कहे कि "मेरे पास दवा है, मैं तुम्हें दूँगा", तो क्या वह बीमार यह कहेगा कि "मुझे तुम्हारी दवा नहीं चाहिए। मैंने तुम्हें चुना नहीं है।" कोई भी दुःखी जीव दवा ले लेगा। सेवा के लिए चुनाव की जरूरत नहीं है, यों समझकर वह कार्यकर्ता चुनाव के

जरिये मिलनेवाला कोई भी स्थान, जिम्मेवारी या पदवी न लेगा। वह लोकनीति को मानेगा और सीधा लोकसेवक बनेगा। सरकार के जरिये लोगों को बदलने के बदले, लोगों के जरिये सरकार को बदलेगा। हमारा यह दूसरा ही पंथ है।

सब राजनैतिक पक्ष इसी वृत्ति से काम करते हैं कि हम सरकार के जरिये लोगों को बदलेंगे। हम उन पर टीका न करेंगे। उन्हींकी तरह सोचनेवाले लोग दुनिया में ज्यादा हैं। हमारा समाज छोटा है। आज दुनिया में बहुत बड़ा समाज यही मानता है कि सत्ता के जरिये सेवा करनी चाहिए। हम कहते हैं कि सेवा के जरिये सत्ता खतम करेंगे। और भी एक पंथ है, जो कहता है कि "सेवा के जरिये सत्ता हासिल करेंगे। आज हमारे हाथ में सत्ता नहीं है, हम सेवा करते-करते सत्ता हासिल करेंगे।"

कुछ लोग बाबा से पूछते हैं कि "बाबा, हमें तुम्हारा तो भरोसा है, पर तुम्हारे चेलों का क्या भरोसा? भू-दान का काम करते-करते किस क्षण वे चुनाव के लिए खड़े होंगे, कोई नहीं कह सकता।" हम कहते हैं कि सबकी परीक्षा १९५७ में हो जायगी। उस वक्त कुछ लोग इधर से उधर जायँगे, तो कुछ उधर से इधर भी आयेंगे। अभी उत्कल के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री नवबाबू उधर से इधर आये। वे एक ऐसे स्थान पर थे कि सब लोग चाहते थे कि वे वहाँ रहें। इसमें कोई शक नहीं कि उनके कारण वहाँ सरकार का काम आसान होता था। फिर भी उन्होंने देखा कि इस काम में सार नहीं है, इसलिए वे इधर आये। जो सेवा के जरिये सत्ता प्राप्त करने का विचार रखते हैं और फिर सत्ता प्राप्त होने पर सत्ता के जरिये सेवा करना चाहते हैं, तो दोनों मिलकर एक ही चीज हो जाती है। हमारा तीसरा ही विचार है—सेवा, सेवा, सेवा और उसके जरिये सत्ता की समाप्ति। इसका नाम है, जन-शक्ति का विचार। हम उसे 'लोकनीति' कहते हैं। हमारा जो भी कार्यकर्ता रहेगा, उसकी दृष्टि लोकनीति की ही होगी।

त्रिविध निष्ठावान् जिला-सेवक

हाँ, तो हमारा मनुष्य सब पर प्यार करेगा और सबसे अलग रहेगा, यह उसकी एक बड़ी योग्यता होगी। उसमें दूसरी योग्यता यह होगी कि वह सत्य,

अहिंसा में विश्वास रखता होगा और अपना जीवन अपरिग्रही बनाने की कोशिश करता रहेगा। उसमें तीसरी योग्यता यह होगी कि वह सेवा में कोई आन्तरिक, छिपा उद्देश्य न रखेगा। वह केवल सेवा के लिए निष्काम सेवा करता रहेगा। ऐसी त्रिविध निष्ठा जिसमें हो और जो अपना अधिक-से-अधिक समय इस काम में लगाये, ऐसा एक-एक मनुष्य हर जिले के लिए चाहिए।

पलनी-निर्णय के तीन संभाव्य परिणाम

हमने भू-दान-समितियाँ खतम करने का जो निर्णय लिया है, उसके तीन परिणाम हो सकते हैं :

१. आन्दोलन सब-का-सब खतम हो जाय। जो सबका काम है, वह कोई न करे।

२. सब लोग उठकर खड़े हो जायँ और काम में लग जायँ। वैसे तो हर चीज ईश्वर की मर्जी पर निर्भर रहती है, फिर भी उसने कुछ अंश हम पर भी सौंपा है। किन्तु ये दोनों बातें सर्वथा ईश्वर की मर्जी पर निर्भर हैं। यह भी सम्भव है कि अब किसीको काम की प्रेरणा ही न मिले, एक नाटक हो जाय। बाबा बेवकूफ है, इसलिए घूमता रहेगा, बाकी कुल काम खतम हो जायगा। और ईश्वर चाहेगा, तो सभी काम में लग जायँगे।

३. तीसरा परिणाम यह भी हो सकता है कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं की, चाहे वे किसी पक्ष के अन्दर हों या बाहर, आत्मा एकदम जाग जाय। यहाँ गांधीग्राम में एक संस्था चलती है। अभी तक समझते थे कि भू-दान का काम करने के लिए भू-दान-समिति है और समितिवाले हमारी मदद माँगते हैं, तो हम देते हैं। लेकिन अब कोई समिति उनके पास मदद माँगने न जायगी। तब वे समझ जायँगे कि अब तो हम पर जिम्मेवारी आयी है। अगर रचनात्मक काम करनेवाले ऐसा न समझें, तो वे उस काम की मूल-श्रद्धा को ही काट देंगे। इस-लिए अब वे लोग जाग जायँगे और अपना-अपना जो भी काम करते हों, उसके साथ भू-दान का भी काम करेंगे।

नयी तालीमवाले सोचेंगे कि हम गाँव-गाँव नयी तालीम शुरू करना चाहते

हैं। किन्तु जब तक आज की विषमता नहीं मिटती, तब तक गाँव के सब बच्चों को समान पोषण और रक्षण न मिलेगा। उस हालत में उन्हें तालीम भी कैसे दी जाय? इसीलिए आर्यनायकम्‌जी हमारे साथ पिछले ६-७ महीनों से घूम रहे हैं। अब इसके आगे वे अपनी सब संस्थाओं को हिदायत देंगे कि भू-दान का काम अपना काम है।

इसी तरह खादीवाले भी जानते हैं कि भू-दान-आन्दोलन इतना बढ़ने के बाद अब गिर जायगा, तो खादी भी गिर जायगी। आज खादी को सरकार की तरफ से इसीलिए मान्यता मिली कि इन चार-पाँच वर्षों में सर्वोदय-विचार की प्रतिष्ठा बढ़ी है। अगर भू-दान-आन्दोलन इतना ऊँचा चढ़ने पर गिर जायगा, तो सर्वोदय-विचार की प्रतिष्ठा भी खतम हो जायगी। फिर सरकार कहेगी कि "हमने खादी को मदद दी, पर इसमें पैसा बहुत खर्च होता है और काम बहुत कम। यह कोई होने-जानेवाली चीज नहीं है। इसलिए जहाँ बिल्कुल बेकारी हो, तो वहीं चर्खे चलें, बाकी तो मिलें ही चलेंगी।" फिर तो सरकार के आधार से जो खादी का काम चलता है, वह खतम हो जायगा। इसलिए अब गांधी-विचार माननेवाले कुल लोगों की आत्मा जग जायगी।

आकाश के लिए कोठरी नहीं

सर्व-सेवा-संघ के अलावा हम दूसरी भी ऐसी रचनात्मक संस्थाओं को मान्य करें, जिनमें यह त्रिविध निष्ठा हो। ऐसी सब संस्थाएँ अपने काम के साथ-साथ भू-दान का काम करेंगी। हमारे घर में सोने के लिए एक कोठरी रहती है, भोजन के लिए एक कोठरी रहती है, अनाज रखने के लिए एक कोठरी रहती है। किन्तु क्या आकाश के लिए भी कोई कोठरी होती है? आकाश के लिए स्वतंत्र कोठरी नहीं रहेगी, हर कोठरी में आकाश रहेगा। इसी तरह भू-दान के लिए कोई स्वतंत्र संस्था न होगी। हर घर और हर संस्था उसकी है।

गांधी-ग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

'हिंदी-चीनी भाई-भाई' कब ?

: २० :

हमने जमीन की मालकियत मिटाने का जो अखिल भारतीय संकल्प किया है, उसमें आपको शरीक होना चाहिए। हम जमीन की मालकियत मिटाकर जमीन सबकी बना देंगे। कारखाने वगैरह का भी लाभ सबको मिले, यही चाहेंगे। मजदूर-मालिक का भेद मिटा देंगे, सब भाई-भाई बनेंगे।

अभी चीन के प्रधानमन्त्री चाओ यहाँ आये हैं, तो दिल्ली से नारा लगता है कि 'हिंदी-चीनी भाई-भाई!' जब बुल्गानिन आया था, तो 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई' का चलता था। मैं कहता हूँ कि अरे, पहले तुम गाँव के अड़ोसी-पड़ोसी तो भाई-भाई बनो। अगर ये भाई-भाई न बने, तो क्या हिंदी-चीनी और 'हिंदी-रूसी भाई-भाई' बन सकेंगे ? हम 'वन्दे मातरम्' बोलते हैं, किन्तु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि 'वन्दे भ्रातरम्' बोलने की जरूरत है। हम अपने भाई को ही भाई न मानेंगे, तो क्या माता को सुख होगा ? अगर भारतमाता हम सबकी माता हैं, हम सब भाई-भाई हैं, तो भाई को भाई का हक मिलना ही चाहिए। अपने देश में जो कुछ भूमि, सम्पत्ति है, सबकी है, सबके लिए है।

३-१२-'५६

प्रश्न : भूदान और सम्पत्ति-दान के उसूल क्या हैं ?

दरिद्रनारायण को हर घर में प्रवेश मिले

उत्तर : भू-दान आगे बढ़ने पर हमने सम्पत्ति-दान-यज्ञ शुरू किया। भू-दान का उसूल है कि भगवान् ने जमीन सबके लिए बनायी है, इसलिए सभी काम करें और बाँटकर खायें। जिन्हें दूसरा कोई धन्धा नहीं और जो जमीन की काश्त करना चाहते हैं, उन बेजमीन मजदूरों को जमीन मिलनी चाहिए। आज जिनके हाथ में जमीन है, वे उसके मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं। इसलिए जब काम करने के लिए तैयार माँगनेवाला आता है, तो उसे जमीन देना ट्रस्टी का कर्तव्य है। इसी तरह से सम्पत्ति-दान का उसूल है कि हर मनुष्य, चाहे वह गरीब हो या अमीर, अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा समाज के लिए छोड़े। हमने कहा है कि दरिद्रनारायण के, समाज के प्रतिनिधि को यानी हमें आपके घर में स्थान चाहिए। आज मैं किसीके घर में जाऊँ और खाना माँगूँ, तो हिन्दुस्तान के किसी भी घर से इनकार न किया जायगा। लोग मुझ पर इतना व्यक्तिगत प्रेम करते हैं। लेकिन मैं व्यक्ति नहीं, दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि हूँ। मुझे किसी मनुष्य ने नहीं चुना, ईश्वर ने ही दरिद्रनारायण और समाज के प्रतिनिधि के तौर पर रखा है। मैं चाहता हूँ कि दरिद्रनारायण को हर घर में प्रवेश मिले। वहाँ उसे उसका हिस्सा मिले, उपकार के तौर पर नहीं, उसका हक समझकर। उसीका हक उसे दे देना हम अपना कर्तव्य समझें।

घर में प्रवेश, व्यापार में नहीं

सम्पत्तिवानों की सम्पत्ति उनके हाथ में एक ट्रस्ट के तौर पर है। इसलिए दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि को हर घर से सम्पत्ति का एक हिस्सा मिलना चाहिए। हम आपके घर में दाखिल होना चाहते हैं, आपके व्यापार में नहीं। इस साल व्यापार में घाटा होने पर भी व्यापारी के कुटुम्ब को खाना मिलेगा ही। उसी

खाने में हमारा हिस्सा है। आपके घर में पाँच व्यक्ति हैं, तो हम छठे हुए; अगर तीन हैं, तो हम चौथे हुए। यह एक उसूल के तौर पर, हक समझकर हम माँगते हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के हर गाँव और हर घर में दरिद्र-नारायण का हक मान्य किया जाय। यह कोई एकमुश्त का दान नहीं कि एक बार देकर पिण्ड छुड़ा लिया जाय। जैसे हम सतत खाते रहते हैं, वैसे ही हमें सतत देते भी रहना चाहिए। हमने हिस्से की माँग की है, तो छोटे से हिस्से की नहीं, बल्कि भाई के हिस्से की माँग की है। व्यापारी लोग सौ रुपये में चार आने का दान-धर्म करते हैं, यह उस प्रकार का दान नहीं। यह घर के बाहर खड़े रहकर भीख माँगनेवाले की माँग नहीं, घर के अन्दर बैठनेवाले की माँग है। इसलिए इसमें काफी बड़ा हिस्सा सतत देते रहना है।

प्रश्न : भूमिहीनों को मुफ्त में जमीन देने के बजाय उनसे कुछ थोड़ा-सा लेकर दी जाय, तो उनमें श्रद्धा और जिम्मेवारी का भान होगा।

भूमिहीनों पर पुत्रवत् प्रेम करो

उत्तर : इस विचार में कुछ सार है। किन्तु सोचने की बात है कि हम अपनी ओर से किसी गरीब को देनेवाले नहीं। गाँव की ग्राम सभा में भूमिहीनों की राय से जमीन दी जायगी। इसलिए जिसे जमीन मिलेगी, वह अपनी जिम्मेवारी महसूस करेगा। दूसरी बात यह कि अगर वह अपनी जमीन पड़ती रखेगा, तो वह उसके हाथ से चली जायगी। सिवा इसके हमारा कुल काम विश्वास और प्रेम पर चलता है। जिन भूमिहीनों को जमीन मिलेगी, वे आगे चलकर कुछ सम्पत्ति-दान देने के लिए राजी हो जायँगे। उससे करार के तौर पर लेने के बजाय बाद में वह सम्पत्ति-दान देगा, तो ज्यादा अच्छा है। इसकी अच्छी मिसाल मध्य-प्रदेश (वर्धा) में मिली। वहाँ के लोगों ने दाता और आदाता, दोनों को बुलाया और उनसे कहा कि "अब यह आन्दोलन आगे बढ़ाने का काम तुम्हारा है। आश्चर्य की बात है कि आदाताओं में से बहुत-से लोग सभा के लिए आये थे। जब उनके सामने यह बात रखी गयी कि उन्हें भी गाँव के लिए कुछ देना चाहिए, तो उन्होंने प्रेम से सम्पत्ति-दान देना तय किया। फिर दाता और

आदाता, दोनों काम के लिए निकल पड़े और उन्होंने एक दिन में १५ हजार एकड़ जमीन का बँटवारा किया। इस तरह भूमिहीनों का परिचय हम छोड़ेंगे नहीं। वे हमारे परिवार में दाखिल हो जाने पर हम उनकी मानसिक उन्नति की बात सोचेंगे। आप अपनी जायदाद का हक अपने बेटे को देते और आशा करते हैं कि वह उसका अच्छा उपयोग करेगा। इसीलिए आप उसे तालीम देते और उस पर श्रद्धा रखते हैं। वह उसका अच्छा उपयोग भी कर सकता है और बुरा भी। इसी तरह आप भूमिहीनों पर पुत्रवत् प्रेम कर उन्हें जमीन देंगे, तो उन्हें उसका अच्छा उपयोग करने की प्रेरणा मिलेगी।

प्रश्न : आपका सरकार पर वजन है, तो वजन डालकर जमीन के बारे में कानून क्यों नहीं बनवाते ? नाहक क्यों पैदल घूमते हैं ?

कानून क्यों नहीं ?

उत्तर : १. हमने पहले ही कहा था कि हमें जन-शक्ति पैदा करनी है। सरकार के जरिये काम होने पर जन-शक्ति पैदा नहीं हो सकती।

२. कानून से जमीन छीनकर बाँटी जाय, तो जमीनवाले दुःखी होंगे, उनमें और भूमिहीनों में द्वेष पैदा होगा, कचहरी में मुकदमे चलेंगे। लेकिन प्रेम से जमीन बँटेगी, तो समाज में प्रेम और सहयोग पैदा होगा। हम तो जमीन के दाताओं से भूमिहीनों के लिए बैलजोड़ी, बीज आदि अन्य साधन भी माँगते और वे देते भी हैं। क्या सरकार कानून से जमीन छीनने पर बैल भी माँग सकेगी ? उल्टे सरकार को जमीनवालों का मुआवजा ही देना पड़ेगा।

३. कानून से जमीन छीनी जाय, तो क्या कभी सरकार को अच्छी जमीन मिल सकती है ? लोग अपनी रद्दी-से-रद्दी जमीन ही सरकार को देंगे। भू-दान में भी कुछ खराब जमीन मिलती है, पर कुछ अच्छी भी मिलती है और प्रेम से मिलती है। सरकार को तो खालिस खराब ही जमीन मिलेगी।

४. कानून बनने की बात सुनकर लोग पहले ही आपस-आपस में जमीन बाँट देते हैं, जिससे सरकार के हाथ कुछ न जाय। इसीको मैं कानून का नाटक कहता हूँ।

५. 'सीलिंग' हमेशा छोटा ही बनता है। सरकार ३० एकड़ का सीलिंग बनाने की बात सोचती है। किन्तु हम तो दो-चार एकड़वाले से भी दान माँगते हैं।

६. मान लीजिये, अभी सरकार कानून बनाये, तो उसके परिणामस्वरूप गाँव-गाँव में द्वेष और असंतोष पैदा होगा। फिर महायुद्ध शुरू होने पर चीजों के दाम बढ़ने से और भी असन्तोष बढ़ेगा। उस हालत में क्या आपकी सरकार टिक पायेगी?

७. सोचने की बात है कि जो काम जन-शक्ति से होता है, वह सरकारी शक्ति से कैसे हो सकेगा? माँ बच्चे को प्यार से थपकाती है, तो बच्चा सो जाता है। किंतु दूसरा कोई उसे तमाचा मारे, तो क्या वह सोयेगा? वैसे ही भू-दान से जो काम बन सकता है, वह सरकार से नहीं बन सकता। एक प्रेम की प्रक्रिया है, तो दूसरी छीनने की प्रक्रिया। आपने यज्ञ में घी की आहुति दी। पर क्या घी के डिब्बे को आग लगने से घी जला, तो वह यज्ञ होगा? अगर कोई ब्रह्मचर्य का व्रत ले, तो उसमें कितना तेज आयेगा! पर क्या जेल में बीस साल रहनेवाले चोर को ब्रह्मचर्य का लाभ होगा? प्रेम से होनेवाले काम की बराबरी आप छीनने के काम से करते हैं, इसीका हमें आश्चर्य होता है। भू-दान में सिर्फ जमीन ही नहीं मिलती, प्रेम भी बढ़ता है। अब तो ग्रामदान भी हो रहे हैं। क्या सरकार से ग्रामदान हो सकेगा? लोकशक्ति पैदा होकर बननेवाली चीज और सरकार से लादी जानेवाली चीज में कितना अन्तर है, जरा सोचिये।

८. सबसे बड़ी बात यह है कि आप समझते हैं कि बाबा का सरकार पर वजन है। किन्तु वह वजन इसीलिए है कि बाबा उसे ज्यादा उपयोग में नहीं लाता। अगर वह ज्यादा वजन डालने की कोशिश करे, तो वजन न पड़ेगा। आप संन्यासी का आदर करेंगे, उसे खिलायेंगे। किंतु अगर वह आपके लड़के को ही संन्यास देने लगे, तो क्या आप उसे पसंद करेंगे? इसलिए बाबा का सरकार पर जो वजन है, वह उस कोटि का नहीं कि वहाँ के सभी लोगों का परिवर्तन हो। स्वराज्य के बाद जिन्होंने जमीनें बटोर लीं, उन्हींके हाथ आज

सरकार है। क्या ऐसी सरकार यह काम कर सकेगी ? वह जिस शाखा पर बैठी है, उसीको काट नहीं सकती।

९. कानून हमेशा लोकमत के पीछे-पीछे चलता है। जो चीज प्रजा को मंजूर नहीं, वह कानून के जरिये लादी नहीं जा सकती। लोकमत तैयार होने से पहले या अल्प लोकमत के आधार पर कानून बनाया जाय, तो उसका अमल करना कठिन हो जाता है। १४ साल की उम्र के नीचे शादी न होनी चाहिए, ऐसा कानून है। लेकिन आज भी १४ साल के नीचे हजारों शादियाँ हो रही हैं। छुआछूत मानना कानून में गुनाह है, फिर भी काशी-विश्वनाथ के मंदिर में हरिजनों को प्रवेश नहीं मिल रहा है। गाँव-गाँव में हरिजनों की हालत खराब ही है।

१०. भूदान 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' का कार्य है। इसमें गाँव-गाँव, घर-घर जाकर हर मनुष्य के पास प्रेम से विचार पहुँचाने का कार्य चल रहा है। इन दिनों आन्दोलन चलानेवाले देश के दस-पाँच बड़े-बड़े शहरों में घूम लेते हैं। लेकिन गाँव-गाँव कौन पहुँचता है ? सर्वोदय-विचार के प्रचार का व्यापक कार्य भूदान के जरिये चल रहा है। इसके साथ-साथ खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम का भी काम चल रहा है। ये सब बातें कानून से नहीं हो सकतीं।

पट्टीवीरम्पट्टी
१३-१२-'५६

तमिलनाड ग्रामदान के लिए अधिक अनुकूल : २२ :

जब हम उड़ीसा के कोरापुट जिले में घूमते थे, तो वहाँ सैकड़ों ग्रामदान मिल रहे थे। उस वक्त तमिलनाड के बुजुर्गों ने कहा था कि "बाबा को यहाँ कुछ जमीन मिल जायगी, पर ग्राम-दान होने का सम्भव कम है; क्योंकि यहाँ की जमीन बहुत महँगी है और लोग उसकी आसक्ति भी बहुत रखते हैं। यहाँ के लोग केवल श्रद्धा से काम नहीं करते, बल्कि सोच-विचारकर काम करते हैं।" इसका मतलब यह हुआ कि यहाँ के लोग बुद्धिमान् हैं, इसलिए यहाँ ग्रामदान न होगा, उधर मूर्खों के जरिये ग्रामदान मिलता होगा। किन्तु उसी समय हमने तमिलनाड के प्रमुख भूदान-कार्यकर्ता जगन्नाथन् को पत्र लिखा कि "तमिलनाड में ग्रामदान खूब होगा। वहाँ की हवा हिन्दुस्तान के दूसरे सब प्रान्तों से ग्रामदान के लिए ज्यादा अनुकूल है।" उस समय हम तमिलनाड में घूमते न थे, उड़ीसा में ही बैठे-बैठे हमने वह पत्र लिखा।

तमिलनाड की हवा ग्रामदान के लिए ज्यादा अनुकूल क्यों है, इसके कुछ कारण हैं : १. यहाँ के छोटे-छोटे गाँव भी किसी मन्दिर के इर्द-गिर्द खड़े हैं। गाँव में घास-फूस की छोटी-छोटी झोपड़ियाँ होंगी, लेकिन बीचोबीच एक बड़ा मन्दिर अवश्य रहेगा। यहाँ के छोटे गाँवों में भी इतने बड़े मन्दिर होते हैं, जितने उत्तर हिन्दुस्तान के बड़े शहरों में भी न होंगे। याने यहाँ के गाँव मानो भगवान् को समर्पित ही हैं। गाँव की सारी जमीन और सम्पत्ति का स्वामी भगवान् और गाँव में रहनेवाले सभी लोग उसके सेवक, ऐसी भावना इसके पीछे है।

२. तमिल भाषा में प्राचीनकाल से लेकर आज तक, 'कुरल' से लेकर 'भारतीयार' तक जितना अच्छा साहित्य निकला, उस कुल साहित्य में जमीन की मालकियत मानी नहीं गयी है। जमीन पर मनुष्य की मालकियत नहीं, सबकी

है। सब मिलकर काम करें, बाँटकर खायें, इस विचार के पचासों वचन तमिल-साहित्य में मिलेंगे।

३. भारत देश की संस्कृति शुद्ध स्वरूप में तमिलनाड में दिखाई देती है। उस पर उत्तर से बाहरी हमले हुए। परिणाम यह हुआ कि वह संस्कृति वहाँ से हटते-हटते नीचे दक्षिण में आकर स्थिर हो गयी। इसीलिए भारतीय संस्कृति का शुद्ध विचार तमिलनाड में मिलता है। संगीत की ही मिसाल लीजिये। उत्तर भारत के संगीत में दूसरे संगीत का मिश्रण है, उसके कारण कुछ खराब चीज नहीं आयी, गुण ही आया है। किन्तु मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि दक्षिण के संगीत में मिश्रण नहीं है। यहाँ के लोगों के जीवन में जो सादगी दीखती है, वह भी भारतीय संस्कृति का गुण है।...इसीलिए मैंने डेढ़ साल पहले लिखा था कि यहाँ ग्रामदान जरूर मिलेंगे। अब यहाँ उसीका अनुभव भी आ रहा है।

चतक्कुंडु (मदुरा)
३-१२-'५६

प्रेमाक्रमण : २३ :

अभी आपने माणिक्यवाचकम् का भक्तिमय भजन सुना। उसमें भगवान् की प्रीति का वर्णन किया गया है। स्वयं भगवान् भक्तों की खोज करता और उन पर कृपा करता है, जैसे माँ बच्चे के लिए करती है। बच्चा कहीं दुनिया में भटक रहा हो, अपने खेलने में ही मस्त हो, तो माँ उसकी तलाश में स्वयं जाती है और कहती है कि "अरे, कितनी देर तक खेलता रहा। तुझे भूख नहीं लगी ? खाने का समय हो गया, चल, घर चल।" वह स्वयं जाकर उसे ढूँढ़ती, उसकी भूख उसे बताती और फिर घर आकर उसे खिलाती है। यही प्रीति का लक्षण है। बच्चे को भूख लगी होगी, तो वह आयेगा और माँगेगा तो मैं दूँगी, ऐसा विचार वह नहीं करती, स्वयं ढूँढ़ने जाती है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ इसी प्रकार की बातें होती हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में इस प्रकार की प्रीति प्रकट हो जाय।

देश में प्रेम की कमी

पहले भगवान् ने जिन्हें ज्ञान दिया है, वे स्वयं ही अज्ञानी लोगों की तलाश में घूमते थे। स्वयं गाँव-गाँव जाते थे। वे तो ज्ञान के समुद्र थे; अगर अपनी जगह बैठ जाते, तो भी उन्हें शोभा देता। वे कह सकते थे कि "एक स्थान में बैठा हूँ। जो आना और ज्ञान पाना चाहे, आकर पूछ सकता है, हम उसे बतायेंगे।" लेकिन वे ऐसा नहीं करते थे। वे सारे भारत में गाँव-गाँव घूमते और लोगों को बुला-बुलाकर भगवान् की भक्ति और ज्ञान की बातें समझाते थे। आजकल तो ज्ञानी लोग कॉलेज और युनिवर्सिटी में होते हैं। वे स्वयं कभी जनता के पास नहीं जाते। लोग उनके पास जायँ, कुछ फीस दें, तभी वे ज्ञान देते हैं। ऐसा क्यों ? क्या उन्हें ज्ञान नहीं ? नहीं, ज्ञान तो है, पर प्रेम नहीं है। प्रेम होता, तो वे स्वयं लोगों के पास पहुँचते और ज्ञान देते। गाय चरने के लिए जंगल में जाती है। शाम होने पर बछड़ों को खिलाने वह दौड़ती-चिल्लाती आती और उन्हें दूध पिलाकर स्वयं तृप्त होती है। हिंदुस्तान में आज भी ज्ञान नहीं, ऐसी बात नहीं; पर अभी वहाँ जनता में उत्कट प्रेम प्रकट नहीं हुआ है।

संपत्तिवान् खुद होकर गरीबों को दान दें

वैसे ही जिनके पास संपत्ति है, उन्हें स्वयं गरीबों की तलाश में जाना चाहिए। जिन लोगों को मदद की जरूरत हो, उन्हें ढूँढ़कर वह दी जाय। भगवान् ने इतनी संपत्ति हमें दी है, तो उसका उपयोग गरीबों की सेवा में करना चाहिए। आज देश में बहुत से संपत्तिवान् हैं। दूसरे देशों जितने भले न हों, फिर भी हैं। लोग उनके पास जाकर माँगने में ही डरते हैं कि देंगे या नहीं। फिर उस संपत्ति का क्या उपयोग ? गरीब लोग आयें, माँगें और फिर हम दें, तो भी प्रेम की कमी होगी। अतः स्वयं ही गरीब की खोज में जाना चाहिए। दुःखी लोग कहाँ-कहाँ हैं, इसे ढूँढना और उनके दुःख दूर करने में अपनी संपत्ति का उपयोग करना चाहिए। इस तरह हम संपत्ति का उपयोग करेंगे, तो कितना आनन्द होगा !

अभी सन् '४०-'४२ में एक महायुद्ध हुआ। जर्मनी के लोग दुनिया जीतने के लिए निकल पड़े थे, आखिर वे लड़ते-लड़ते हार गये। उनके पाँच पचास लाख लोग मारे गये। वे बड़े शूर और शक्तिशाली थे। युद्ध के लिए और दुनिया जीतने के लिए करोड़ों रुपये का रोज का खर्च करते थे। अगर दुनिया की सेवा में इतने सारे रुपये का खर्च किये होते, तो उन्हें मरना न पड़ता और दुनिया को जीत भी लेते। अगर संपत्तिमानों को यह बात सूझेगी कि अपनी संपत्ति का उत्तम उपयोग करने के लिए ही गरीबों का जीवन है, तो बाबा को घूमना न पड़ेगा। वे ही गाँव-गाँव जायँगे, गरीबों को ढूँढ़ेंगे और उनकी मदद करेंगे।

विद्या, संपत्ति और शक्ति के साथ प्रेम भी जरूरी

किसी मनुष्य को भगवान् ने शरीर से मजबूत बनाया है, तो वह अपने बल से दूसरे को पीड़ा भी दे सकता और कमजोरों का बचाव भी कर सकता है। अगर वह अपने बल का उपयोग दूसरे को पीड़ा देने में करे, तो लोग उसे शाप देंगे और वह अगर लोगों के बचाव में करे, तो लोग निरंतर उसका स्मरण करेंगे। भगवान् की करनी है कि उसने दुनिया में तरह-तरह के लोग पैदा किये हैं। कोई संपत्तिवान् होता है, तो कोई दरिद्री। कोई शक्तिशाली होता है, तो कोई कमजोर। कोई ज्ञानी होता है, तो कोई अज्ञानी। ज्ञानी, संपत्तिवान् और शक्तिशाली लोगों को अपने ज्ञान, संपत्ति और शक्ति का उपयोग स्वयं अज्ञानी, गरीब और कमजोर के पास जाकर उनकी मदद में करना चाहिए। यह होगा तो विद्या, संपत्ति और शक्ति के साथ प्रेम भी होगा।

हृदय पर से पत्थर हटे

दुनिया में अगर ईश्वर की सबसे बड़ी कोई देन है, तो वह प्रेम है। जिसके हृदय में प्रेम प्रकट हो, निश्चय ही समझना चाहिए कि भगवान् का उस पर वरदहस्त है। हम ऐसे ही प्रेमियों को ढूँढ़ने के लिए घूम रहे हैं। हम समझते हैं कि गाँव-गाँव में ऐसे प्रेमी हैं, बल्कि हमारा तो विश्वास है कि हरएक के हृदय में प्रेम है, पर प्रेम के उस झरने पर पत्थर डाले हुए हैं। ऐसा एक भी शख्स

नहीं, जिसके हृदय में प्रेम न हो। भगवान् ने युक्ति ही ऐसी की है कि बच्चों को माता के उदर में जन्म दिया, इसलिए बचपन से ही हरएक को प्रेम का अनुभव आता है, प्रेम की तालीम मिलती है। प्रेम की कमी नहीं, पर लोभ-मोह के पत्थरों ने उसे ढँक दिया है। हम कोशिश करते हैं कि उन पत्थरों को वहाँ से हटा । पर हम यह कैसे कर सकेंगे ? इसीलिए ईश्वर से प्रार्थना करें कि भगवन्! तूने जो प्रेम दिया है, उसे प्रकट होने दे, उन पत्थरों को वहाँ से हटा दे।

जमीन सबकी, सिर्फ काश्त करनेवालों की नहीं

गाँव-गाँव में जमीन पड़ी है। हर गाँव में पानी है। हर जगह हवा है। हवा-पानी सबके लिए चाहिए। भगवान् ने सभी के लिए इन्हें बनाया है। जैसे चाहे जो हवा और पानी ले सकता है, वैसे ही जमीन भी सबको मिलनी चाहिए। ६०-७० साल पहले तो सारे हिंदुस्तान में ऐसा ही था। गाँव की कुल जमीन गाँव की होती थी। कुछ लोग खेती करते, कुछ बढ़ई, कुम्हार, चमार या लुहार का काम करते थे। इन्हें अपने काम के बदले पैसा न मिलता था। वे हर घर में काम करते थे। किसान के बुलाने पर बढ़ई उसके घर पर जाकर काम कर देता। किसी घर से किसी साल ज्यादा काम मिलता, तो वह ज्यादा करता और कम मिलता, तो कम। नहीं बुलाता, तो नहीं भी जाता। इसके लिए उसे पैसा नहीं मिलता था, लेकिन गाँव की कुल फसल का एक हिस्सा सभी दे देते थे। किसी साल कम फसल आने पर कम हिस्सा मिलता, तो ज्यादा फसल आने पर ज्यादा। इस तरह गाँव के सुख-दुःख में वह शरीक होता। किंतु उसे एक हिस्सा देना लाजिमी माना जाता।

इसका अर्थ यही हुआ कि जमीन सबकी है। चंद लोग काश्त करते हैं, इसलिए उन्हींकी नहीं। आजकल जमीन मालिकों की मानी जाती है, तो कम्युनिस्ट उसके विरुद्ध कहते हैं कि जो काश्त करेंगे, उन्हींकी जमीन है। पर जमीन सबकी है, यह बात अभी बहुतों के ध्यान में नहीं आयी। जमीन काश्तकारों की है, यह कहना गलत है। सहूलियत के लिए कुछ लोग जमीन की काश्त करते

हैं, तो दूसरे लोग दूसरे काम। पर कुछ लोग काश्तकारी में नहीं हैं, इसलिए जमीन उनकी नहीं है, सो नहीं। बाबा के विचार और पूँजीवादी या साम्यवादी विचार में यही अन्तर, भेद है। मान लीजिये कि इस गाँव में ज्यादा जमीन है और लोग कम हैं, नजदीक के गाँव में लोग ज्यादा हैं और जमीन कम, तो वहाँ के लोगों को यहाँ की जमीन देनी होगी। क्योंकि जमीन सबकी है, केवल मालिक की या काश्त करनेवालों की नहीं है। अगर लोग यह विचार समझेंगे और कुल जमीन गाँव की मानेंगे, तो समाज का नैतिक स्तर ऊँचा उठेगा और हिंदुस्तान की सांपत्तिक उन्नति का मार्ग खुल जायगा।

प्रेम का प्याला भरा नहीं

जब शुद्ध तपस्या होती है, तब मनुष्य का हृदय-परिवर्तन होता है। साढ़े पाँच साल से तपस्या चल रही है। हजारों कार्यकर्ता उसमें लगे हैं। उसीका यह परिणाम है कि लोग विचार समझने के लिए राजी हैं। उनके पास पहुँचने के लिए भी प्रेम चाहिए। गाँव-गाँव जाकर घूमना, लोगों के पास पहुँचना, उन्हें समझाना, तकलीफ उठाना, यह सब प्रेम के बिना नहीं बनता। हम कहते हैं कि ग्रामदान और भू-दान से ऐसी बुनियाद तैयार होगी, जिसे कोई भी सरकार तैयार नहीं कर सकती।

हर गाँव में ग्रामदान होना चाहिए। हम कभी निराश ही नहीं होते। जो निराश होते हैं, उन्हें हम नास्तिक कहते हैं। 'आस्तिक' की यही व्याख्या है कि जो अंदर की ज्योति पर विश्वास रखे। हम पूरी श्रद्धा और पूरे विश्वास से आपके पास आये हैं। हम आपके गाँव में भूमिहीन न रहने देंगे। आज कुछ जगह, जहाँ जाग्रति हुई है, भूमिहीन कहते हैं कि "हम जमीन लेकर छोड़ेंगे।" हमें वह अच्छा लगता है। बच्चा कहता ही है कि "माँ, मुझे भूख लगी है, मैं जरूर खाऊँगा।" अच्छा है कि भूमिहीनों में भूख की भावना जो पैदा हुई। किंतु अधिक अच्छा होगा, अगर जमीनवाले खुद कहें कि हम भूमिहीनों को जमीन देकर रहेंगे। हम चाहते हैं कि जमीनवालों, संपत्तिवानों और शिक्षितों की तरफ से ही प्रेम का हमला हो जाय। हमारे देश में यह बात जरा कम है।

प्रेमी लोग भी प्रेम का आक्रमण करने की वृत्ति नहीं रखते। आखिर प्रेम चुप क्यों बैठे ? वह चुप बैठता है, तो कहना पड़ेगा कि पूरा भरा नहीं है। किसी प्याले में आप पानी डालें, वह जब तक पूरा न भरेगा, तब तक बहेगा नहीं। अगर वह पूरा भर जाय, अंदर न समा सके, तो बहना शुरू हो जायगा। इसी तरह प्रेम इसीलिए आक्रमण नहीं करता कि उसका प्याला अभी पूरा नहीं भरा है।

बाबा ने तय किया है कि एक-एक के हृदय में भर-भरकर प्रेम डालें। वह भर जायगा, तो बहना शुरू हो ही जायगा। दूसरे की मिसाल क्यों, बाबा अपनी ही मिसाल देता है। वह साढ़े पाँच साल से सतत घूम रहा है। उसे ४० लाख एकड़ जमीन मिली है। बाबा के पेट के लिए तो एक-दो एकड़ काफी है। बाबा का शरीर कमजोर है, बीच-बीच में उसे बीमारी आती रहती है। फिर भी वह घूम रहा है; क्योंकि अंदर से प्रेम की प्रेरणा हो रही है, वह उसे बैठने नहीं देती। इसके परिणामस्वरूप वह लोगों के हृदय को छूता है। एक पश्चिमी लेखक ने बाबा पर एक लेख लिखा। और तो खैर, जो वर्णन किया सो किया, लेकिन उसे आश्चर्य यह लगा कि "बाबा को लाखों एकड़ जमीन मिली, पर बाबा ने अपने लिए कुछ नहीं रखा।" बाबा को लाखों एकड़ जमीन क्यों चाहिए ? वह तो ५-५० एकड़ हासिल कर बैठ जाता और अच्छी फसल पैदा कर पेट भरता। यह जो 'फेनेटीसिज्म' (पागलपन) है, प्रेम का प्रभाव है, वह बैठने नहीं देता, वही घुमा रहा है।

प्रेम की प्रेरणा

परसों ही हमारे एक प्रेमी मित्र से बातें हुईं। बीच में हम बीमार पड़े थे, इसलिए उन्होंने दयालु होकर कहा : "पहले बाबा के पाँव मजबूत दीखते थे, अब कमजोर दीख रहे हैं।" बाबा के पाँव में अन्दर भरे गोश्त का जोर नहीं, प्रेम की प्रेरणा का जोर है। उसका तो विश्वास है कि जब तक उसके पाँव चलेंगे, तब तक वह चलता ही रहेगा। लेकिन बाबा घूमेगा और आप लोग बैठे रहेंगे, तो क्या आपका भला होगा ? कभी नहीं। आप उठ खड़े होंगे, बाबा का काम अपने हाथ में लेंगे, तभी आपका भला होगा। अभी तक तो लोगों को बहाना था कि

"भूदान-समिति है, वही काम करेगी।" लेकिन वह कितने गाँवों में जायगी? जमीन तो गाँव-गाँव में पड़ी है। हमने पहली जनवरी से भू-दान-समिति खतम कर दी। अब तो आप ही उठ खड़े होइये और काम कीजिये। किन्तु हरएक को अपना-अपना हिस्सा देना होगा।

भूमि-वितरण के बाद ग्राम-पंचायत

यह काम हमने बिना सोचे हाथ में नहीं लिया है। पहले बाबा खादी, ग्रामोद्योग, गो-सेवा, नयी तालीम, हरिजन-सेवा, कन्याओं का शिक्षण आदि सब काम ३० साल तक कर चुका है। आप पूछेंगे कि वह सब छोड़कर बाबा भू-दान के लिए क्यों निकला? मिसाल के सहारे इसका जवाब सुनिये। एक किसान था। उसके खेत में पानी की व्यवस्था न थी। बीच में दो साल बारिश नहीं हुई, तो उसने कुआँ खोदना शुरू किया। लोग उससे पूछने लगे: "अरे, किसान होकर कुआँ खोदता है? तूने खेती करना छोड़ दिया?" किसान बेचारा क्या उत्तर दे? उसने यही कहा कि "अरे, मैं अच्छा किसान हूँ, इसीलिए खेती छोड़कर कुआँ खोद रहा हूँ। कुआँ बनाने के बाद फिर देखो मेरी खेती।" बाबा ने भी खादी, ग्रामोद्योग आदि का काम क्षणभर बाजू में रख दिया, क्योंकि वह कुआँ खोद रहा है। गाँव-गाँव के लोग ग्रामदान देंगे, फिर बाबा उनसे यह न कहेगा कि तुम्हारा काम खतम हो गया, बल्कि यही कहेगा कि तुम्हारा काम अभी शुरू हो रहा है। अब तुम्हें खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, गो-सेवा, गाँव की पंचायत, गाँव की दूकान, गाँव के झगड़े गाँव में ही निपटाने की व्यवस्था आदि करना होगा।

आज तो सरकार की तरफ से कोशिश होती है कि गाँव-गाँव में पंचायत हो। उन लोगों ने पंचायत के बारे में हमारी राय पूछी, तो हमने कहा कि बात तो अच्छी है, पर पहले क्या करना चाहिए, यह आप नहीं सोचते। पहले पंचायत बनाना गलत बात है। पहले गाँव-गाँव में जमीन का बँटवारा नहीं होता, गाँव की सम-विषम संपत्ति के लिए कुछ नहीं किया जाता और एकदम ग्राम-पंचायत बना लेते हैं, तो वह ग्राम-पंचायत जमीनवालों, संपत्तिवालों के हाथ में रहती है। जिनके हाथ में जमीन, संपत्ति और विद्या थी तथा जिनका कांग्रेस

और सरकार पर वजन था, उन्हींके हाथ में ग्राम-पंचायत की भी सत्ता आ गयी। इससे गाँव को लूटने का पूरा-पूरा इन्तजाम हो गया। इसलिए पहले भूमि का बँटवारा होना चाहिए, उसके बाद सबकी राय से ग्राम-पंचायत बने। ऐसी ग्राम-पंचायत 'सेवकों की पंचायत' होगी।

आज की सतानेवाली पंचायत

एक शख्स ने चावल पकाना शुरू किया। पहले चूल्हा सुलगाया, उस पर बरतन रखा, बरतन में पानी डाला और फिर उसमें चावल डाला, तो भात तैयार हो गया। दूसरे शख्स ने देखा कि भात बनाने के लिए चूल्हा, बरतन, चावल और पानी, इन चार चीजों की जरूरत होती है। उसने पहले चूल्हा सुलगाया, उसमें चावल डाला, फिर पानी डाला और आखिर में उस पर बरतन रखा। तो क्या भात तैयार होगा? वे ही चार चीजें हैं, पर क्रम बदल जाने से भात न बन सका। इसलिए पहले ग्रामदान और पीछे ग्राम-पंचायत होनी चाहिए। तभी वह ग्राम-पंचायत कल्याणकारी और वरदान होगी। आज की विषम स्थिति में ग्राम-पंचायत बनाने का अर्थ होगा, लोगों के हाथ में दूसरों पर सत्ता चलाने का अधिकार देना। आज के शासक कहते हैं कि "हर गाँव में जल्द-से-जल्द ग्राम-पंचायत बननी चाहिए, क्योंकि हमें सत्ता बाँटनी है। सारी सत्ता दिल्ली में रहे, यह अच्छा नहीं।" यह ठीक बात है, किंतु आज की हालत में सत्ता बाँटने का अर्थ यही होता है कि ५० शेरों में से, जो मद्रास में रहते हैं, एक-एक शेर एक-एक गाँव पर छोड़ा जाय। उन्हें एक जगह न रहना चाहिए, बँट जाना चाहिए। इसलिए हर गाँव में सत्ता बाँट दी जाय, तो हर गाँव को सताने की योजना बन जायगी। पंचायत सत्ता चलानेवाली संस्था नहीं, सेवा करनेवाली संस्था होनी चाहिए। इसलिए पहले ग्रामदान और पीछे ग्राम-पंचायत बननी चाहिए। यह सब आप करेंगे, तभी प्रेम की बात ध्यान में आयेगी। इसलिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह यह सब करने की आपको प्रेरणा और सद्बुद्धि दे।

कल्लुपट्टी (मदुराई)
५-१२-'५६

हर परिवार कार्यकर्ता का दान दें

साढ़े पाँच साल से भू-दान का काम देश के जिले-जिले में चल रहा है। उसके लिए सर्व-सेवा-संघ ने एक-एक जिला-भू-दान-समिति बनायी थी। उनके लिए कुछ पैसे की मदद भी ली जाती थी, तो कुछ लोग अपना प्रबन्ध अपने स्थान से ही कर लेते थे। अब आंदोलन इतना फैल जाने के बाद सर्व-सेवा-संघ ने निर्णय किया है कि एक जनवरी से प्रांत-प्रांत की और जिले-जिले की सभी भू-दान-समितियाँ खतम की जायँ।

जनक्रान्ति-कार्य बनाने के लिए ही संस्था-मुक्ति

बहुतों को यह प्रस्ताव सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि आजकल विचार का जो प्रवाह चल रहा है, यह उससे बिलकुल उल्टी बात है। कांग्रेस, समाजवादी, प्रजा-समाजवादी, साम्यवादी आदि सभी कोशिश करते हैं कि हमारा संगठन हर फिरके, हर जिले और हर प्रांत में मजबूत बने। पर भू-दान में तो बिलकुल उल्टी बात हो गयी! हर प्रांत और जिले में सर्व-सेवा-संघ की ओर से एक-एक संयोजक रखा गया था। हरएक जिले में भू-दान-समिति भी बनायी गयी थी। वह सब तोड़ दिया गया। अवश्य ही आज के वातावरण में यह एक आश्चर्यकारक घटना घटी, किन्तु सर्व-सेवा-संघ ने यह निर्णय इसीलिए किया कि वह चाहता है कि यह आंदोलन कुल जनता का आंदोलन बने। आज की कई राजनैतिक संस्थाएँ यद्यपि बहुत बड़ी हैं, फिर भी वे 'पार्टी' हैं; उनमें कुल जनता का समावेश नहीं होता। बहुत बड़ी पार्टी में लोगों का बहुत बड़ा हिस्सा आता है, फिर भी कुल जनता नहीं आती। सर्व-सेवा-संघ चाहता है कि भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन कुल जनता का हो और हर मनुष्य, हर परिवार इसे अपना कर्तव्य समझे। इसका यह अर्थ नहीं कि क्या सर्व-सेवा-संघ ने अपनी कोई जिम्मेवारी

ही नहीं मानी ? जैसे कुल हिन्दुस्तान की जिम्मेवारी है, हर परिवार की जिम्मेवारी है, वैसे ही सर्व-सेवा-संघ की भी है। आन्दोलन को गति देने के लिए हमने आरंभ में कुछ थोड़ा-सा संगठन कर लिया था। किंतु देशव्यापी, अहिंसात्मक, लोक-क्रान्ति का कार्य संस्थाओं के ढाँचे में बद्ध रहकर नहीं हो सकता। उसके लिए उसकी मुक्त-धारा बहनी चाहिए। अगर वह बंधनों में रहेगा, तो बहुत हुआ तो बड़ा तालाब बन जायगा, समुद्र नहीं।

सर्व-सेवा-संघ के परिवार की ओर से दान

सर्व-सेवा-संघ भी दूसरों के समान अपनी जिम्मेवारी समझता है। वह एक बड़ा परिवार है। कोई परिवार पाँच व्यक्तियों का होता है, कोई दस का, तो कोई पचास का। सर्व-सेवा-संघ की तरफ से जो सम्मेलन होते हैं, उनमें ३-४ हजार प्रतिनिधि आते हैं और बाकी प्रेक्षक के तौर पर आते हैं। वे ३-४ हजार लोग सर्व-सेवा-संघ के परिवार के लोग हैं। वह परिवार भू-दान के लिए अपनी तरफ से हर जिले के लिए एक-एक मनुष्य देगा। वह कोई शासन नहीं चलायेगा। उसके हाथ में कोई समिति न रहेगी, वह एक 'सेवक' होगा। इस तरह हर परिवार अपने-अपने परिवार की तरफ से एक-एक मनुष्य दे। किसी परिवार में पाँच भाई हैं, चार भाई सारा कारोबार अच्छी तरह देख सकते हैं, तो वे पाँचवें को इस काम के लिए छोड़ सकते हैं। जो अच्छा, परिपक्व-विचारवाला हो, वही परिवार की तरफ से इस काम के लिए दिया जाय। इस तरह देश में परिवार की तरफ से एक-एक मनुष्य मिलेगा, तो हिंदुस्तान में ५.० लाख कार्यकर्ता खड़े हो जायँगे। हमारे धर्म में तो ऐसी रचना थी कि ४०-४५ साल की उम्र के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन के समान रहना और घर का कारोबार लड़कों पर सौंपकर, समाज-सेवा में लग जाना चाहिए। इसीको 'वानप्रस्थाश्रम' कहते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि जंगल में जायँ, बल्कि यही है कि समाज-सेवा करें, कुटुम्ब-सेवा तो बाकी के लोग करते ही हैं। इस तरह हर परिवार से नहीं, तो कम-से-कम हर गाँव से एक मनुष्य मिले, तो भी ५ लाख कार्यकर्ता हो जायँगे।

हर परिवार कार्यकर्ता दें

यह तो छोटे परिवारों की बात हुई। कुछ बड़े परिवार भी होते हैं, जैसे स्कूल। मान लीजिये कि किसी स्कूल में १६ शिक्षक हैं, तो उनका एक परिवार हो गया। वे भू-दान-विचार को पसंद करते हैं, उसका अध्ययन करते हैं, तो १६ शिक्षक मिलकर अपने में से किसी एक को, जो भू-दान का प्रेमी हो, इस काम के लिए दे सकते हैं। हर कोई अपनी तनख्वाह में से ५) देगा, तो उसके लिए ७५) हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि हमने अपने परिवार की तरफ से—अपने हाईस्कूल की तरफ से भू-दान के पवित्र कार्य के लिए एक मनुष्य दे दिया। इसी तरह पंचायतें और विभिन्न रचनात्मक संस्थाएँ भी अपनी-अपनी संस्था की तरफ से हमें तनख्वाह के साथ एक आदमी दे सकती हैं। फिर उसके काम का सारा पुण्य उस संस्था को मिलेगा। भू-दान को चाहनेवाली संस्थाएँ यह कर सकती हैं। उसे न चाहनेवाले और न समझने-वालों पर कोई भार नहीं। यही बात हमने यहाँ के कांग्रेसवालों के सामने रखी, तो उन्होंने प्रांतीय कांग्रेस की तरफ से एक मनुष्य दे दिया। लेकिन इसी तरह जिला कांग्रेस-कमेटी, तालुका-कमेटी भी अपनी तरफ से एक-एक मनुष्य दे सकती है। अवश्य ही ऐसा मनुष्य इस काम में पड़ेगा, तो उसका पुण्य उसकी संस्था को मिल जायगा, फिर भी वह इसमें अपने पक्ष की बात न करेगा। कोई व्यापारी फर्म हो, तो वह भी अपनी तरफ से एक मनुष्य दे सकती है। इस तरह इसके लिए देश में इच्छा-शक्ति अनुकूल हो जाय, तो जगह-जगह कार्यकर्ता खड़े होंगे।

अगर कोई यह खयाल करेगा कि इसके आगे सर्व-सेवा-संघ की तरफ से हर जिले के लिए जो मनुष्य होगा, वही काम करेगा, वह उस जिले का अधिकारी होगा, तो वह गलत है। आखिर वह क्या अधिकार चलायेगा ? उसके हाथ में न तो कोई फंड रहेगा और न कोई कमेटी ही। उसे आज्ञा देने का कोई अधिकार न रहेगा। २५ लाख जन-संख्या के एक जिले के लिए हमने एक मनुष्य दिया, तो उसका उपयोग यही होगा कि बाकी लोग उसे सलाह पूछ

सकते हैं और वह लोगों के पास जाकर तगादा लगा सकता है। बाकी वह इधर-उधर घूमता रहेगा। सर्व-सेवा-संघ की तरफ से भू-दान के लिए वह एक देन (कंट्रीब्यूशन) होगी। बाकी यह आंदोलन आप लोगों के हाथ में सौंपा जायगा।

तारक देवता को नैवेद्य चढ़ाइये

हमने मदुरा जिले में यह हवा देखी कि लोगों का मन भू-दान, ग्राम-दान के लिए तैयार है। कोई जाता है और प्रेम से विचार समझाता है, तो लोगों का मानस उसके लिए अनुकूल हो जाता है। कोई नहीं कह सकता कि इसका एक ही कारण हो सकता है। किन्तु साढ़े पाँच साल से परमेश्वर के नाम से हवा में यह बात फैलती रही है, वह हरएक के हृदय को छू गयी है। १९१८ में सारे हिन्दुस्तान में 'इन्फ्ल्यूएंजा' की बीमारी फैली थी। उस समय करीब-करीब हर परिवार में एक-एक मनुष्य बीमार पड़ा था। हमारे परिवार में तीन व्यक्ति बीमार पड़े थे, जिनमें से दो मर गये। इस तरह इंफ्ल्यूएंजा के लिए हर घर से देन दी गयी। चार महीनों में ३० करोड़ लोगों में से करीब ६० लाख मर गये और उससे दुगुने बीमार पड़े। हिन्दुस्तान के लोगों ने इंफ्ल्यूएंजा के लिए इतने आदमी दिये, तो भू-दान के लिए क्यों न देंगे? जैसे इंफ्ल्यूएंजा की हवा फैल गयी, कोई नहीं जानता कि कैसे फैली, वैसे ही भू-दान की हवा फैल रही है। देश का बच्चा-बच्चा बोल रहा है कि भू-दान और ग्राम-दान होना चाहिए, जमीन की मालकियत नहीं हो सकती। इस हालत में कार्यकर्ता काम के लिए जायगा, तो सारी दुनिया पर उसका असर पड़ेगा। प्रेम के तरीके से जमीन का मसला हल करने की युक्ति हिन्दुस्तान को सधी, तो हिन्दुस्तान की नैतिक ताकत बढ़ जायगी और सारी दुनिया बच जायगी।

मैं आशा करता हूँ कि हर परिवार के लोग सोचेंगे कि हम अपनी तरफ से भू-दान के लिए एक मनुष्य देंगे। यह कोई १०-५ साल देने की बात नहीं, १-१॥ साल की बात है। इस तरह होगा, तो इस काम में इंफ्ल्यूएंजा से कम गति न आयेगी। जहाँ वह मारनेवाला था, वहीं यह तारनेवाला है। आपने मारक

देवता के सामने अपना नैवेद्य समर्पण किया, तो अब तारक देवता के सामने कितना समर्पण करोगे ? आप इस पर सोचें। बाबा तो प्रेम के लिए घूमेगा, क्योंकि उसे सिर्फ भू-दान का काम नहीं करना है। भू-दान के बाद गरीबों को बसाना है, उनके संस्कार सुधारने हैं, ग्रामराज्य की स्थापना करनी है, सर्वत्र नयी तालीम शुरू करनी है। ग्रामदान तो बुनियाद है, उसके आधार पर सर्वोदय का मकान बनाना है।

तेर्नी (मदुराई)
६-१२-'५६

सर्वोदय याने शासन-मुक्ति : २५ :

इस प्रदेश में सर्वोदय-विचार माननेवाले कम नहीं। राजनैतिक पक्षों में और सरकार के अन्दर काम करनेवालों में भी सर्वोदय पर श्रद्धा रखनेवाले कई सज्जन हैं। लेकिन सर्वोदय का एक मूलभूत विचार अभी लोगों को समझना बाकी है। वह सारी दुनिया को समझना बाकी है और तमिलनाड को भी समझना बाकी है।

सर्वत्र स्वतन्त्र राज्य-संस्थाएँ

कुल दुनिया में लोगों ने एक राज्यसंस्था बनायी है। पहले वह केवल एक व्यक्ति के हाथ में थी, जो 'राजशाही' कहलायी। एक जमाने में कुल दुनिया में उस प्रकार की राजशाही चली। पुराने जमाने में विभिन्न देशों के बीच बहुत अधिक सम्पर्क नहीं था। दिल्लीवालों को, जो उस समय 'हस्तिनापुरवाले' कहलाते थे, रोम का ज्ञान न था। रोमवालों को दिल्ली का भी कोई खास ज्ञान नहीं था। लेकिन दोनों प्रदेशों में राजा ही राज्य करते थे। पुराने यूनान में भी राजा होते थे। पुराने चीन, हिन्दुस्तान और दूसरे देशों में भी राजा ही राज्य करते थे। दुनिया के कुल लोगों ने एकत्र बैठकर उन राजाओं को पसंद किया था, सो नहीं, बल्कि जैसा कि मैंने अभी कहा, विभिन्न देशों का एक-दूसरे के साथ खास परिचय भी न था। अवश्य ही कई

व्यापारी इधर-से-उधर जाते थे, लेकिन वे थोड़े थे। कुछ प्रवासी भी आते-जाते थे। 'ह्यू-एन-त्संग' चीन से यहाँ आया था और यहाँ से भी 'परमार्थ' नाम का मनुष्य उधर गया था। इस तरह विचारों का कुछ-न-कुछ आदान-प्रदान होता रहा, फिर भी विभिन्न देशों में जो राज्य-संस्थाएँ बनीं, वे स्वतन्त्र ही थीं। उनमें वे स्वाभाविक ही बनीं, याने लोगों को यही सूझता था कि अच्छा राज्य-कारोबार चलाने के लिए कोई राजा होना चाहिए।

मेंढक और राजा

पुरानी कहानी है। एक बार मेंढकों को राजा की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा, बिना राजा के अपना इंतजाम अच्छा नहीं होता। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि "हे भगवन्, हमें कोई राजा भेज दो।" भगवान् ने प्रार्थना सुन ली और एक बैल भेज दिया। बैल नीचे उतरा, तो पाँच-पचास मेंढक उसके नीचे दबकर मर गये। उन्होंने भगवान् से कहा, "हमें ऐसा राजा नहीं चाहिए। दूसरा कोई राजा भेज दीजिये।" भगवान् ने एक बड़ा भारी पत्थर ऊपर से नीचे फेंक दिया। उसके नीचे दो-चार सौ मेंढक खतम हो गये। वे बहुत घबराये। उन्होंने पुनः भगवान् से कहा, "आपने हम पर बड़ी आफत डाली।" भगवान् ने उत्तर दिया, "हमने जो बैल भेजा, वह हमारा वाहन है। पर उससे आपका काम नहीं बना, तो हमने एक स्फटिक-शिला भेजी, जिस पर हम हमेशा आसन लगाकर बैठते हैं। वह भी आपको अच्छी नहीं लगी। अब कौन-सा राजा भेजा जाय? इसलिए बिना राजा के ही आपका काम अच्छा चलेगा, यही आप समझ लीजिये।" तब से मेंढकों ने 'राजा' का नाम छोड़ दिया।

राज्य-संस्था का निर्माण और विलयन

मनुष्यों का भी ऐसा ही हाल है। जगह-जगह राजा की माँग होती गयी। पहले तो जो राजा हुए, वे जिम्मेवारी के साथ हुए। पुराणों में मनु महाराज की कहानी आती है। मनु जंगल में तपस्या करते थे। वे महाज्ञानी थे, तत्त्वज्ञान के चिन्तन में लगे रहते थे। कोई राजा न होने से लोगों का कारोबार न चलता था। उन्हें इच्छा हुई कि कोई राजा हो तो अच्छा! उन्होंने सोचा कि चलो,

मनु के पास चलें। बहुत से बड़े-बड़े लोग मनु के पास गये और उनसे कहा, "महाराज, आप हमारे राजा बन जायँ, तो हमारा काम चले। कृपा करके हमारे राजा बनिये।" मनु महाराज ने दो शर्तें रखीं। वे बोले : "आप सब लोग एकमत से हमें कबूल करें, तभी हम राजा बनेंगे। हम बहुमत से राजा न बनेंगे। ५१ लोग पसन्द करें और ४९ लोग न करें, तो हम राजा न बनेंगे। ९९ पसन्द करेंगे और १ न करेगा, तो भी हम राजा न बनेंगे। उस हालत में हम सलाह दे सकते हैं, लेकिन राजा नहीं बन सकते। एक तो यह शर्त है। दूसरी शर्त यह है कि राजा होने में जो कुछ पाप होंगे, उनकी जिम्मेवारी आप लोगों पर रहेगी, क्योंकि 'राज्यान्ते नरकप्राप्तिः।'—जो राज्य करेगा, वह सीधा नरक में चला जायगा। इसलिए पाप की जिम्मेवारी आप लोग उठाओ। तभी मैं राजा बनना कबूल करूँगा, नहीं तो नहीं।" लोगों ने कबूल किया और मनु राजा हो गये।

इस तरह मनु ने तो उत्तम राज्य चलाया, लेकिन प्रश्न उठा कि उनके बाद दूसरा राजा कौन हो? कभी तो वे मरनेवाले थे ही। तय हुआ कि उनके बाद उनका बेटा राजा हो। पुत्र-परंपरा से राजा होने का निश्चय हुआ। उसमें कभी अच्छे राजा हुए, तो कभी बुरे भी। युधिष्ठिर, अशोक, कृष्णदेव राय बड़े अच्छे राजा हो गये। अकबर बहुत ही अच्छा आदर्श राजा था। यह तो लोगों को अच्छे राजाओं का अनुभव आया। लेकिन यह अनुभव कभी मीठा होता था, तो कभी कड़ुआ भी। अकबर हुआ तो औरंगजेब भी हुआ। मैंने अच्छे राजाओं के नाम दिये, अब बुरे राजाओं के नाम लेकर उन्हें अमर बनाना नहीं चाहता। लेकिन लोगों को मीठे और कड़ुए दोनों अनुभव बहुत आये। किस समय कैसा राजा आयेगा, कोई भरोसा नहीं। इसलिए हम सब लोगों का नसीब किसी एक राजा के हाथ में सौंपना गलत बात है, यह सोचकर लोगों ने राजाओं को छोड़ दिया और हिंदुस्तान में से सब राजाओं का विसर्जन हुआ। पुराने राजा 'राजप्रमुख' बन गये। अब तो 'राजप्रमुख' भी मिट गये। अब सिर्फ उनकी पैसे की थैली बची है।

लोकशाही में राज्य-संस्था का ही प्रतिबिंब

अब सवाल है कि इनके बदले में राज्य-संस्था चाहिए या नहीं? अगर चाहिए,

तो उसका तरीका क्या हो ? आज तो पाँच साल में एक बार चुनाव या सिर-गिनती होती है। ५१ लोगों की एक राय पड़ी और ४९ लोगों की दूसरी राय पड़ी, तो ५१ लोगों के मतानुसार ही राज्य चलता है। पर ऐसा क्यों ? राजसत्ता पर ४९ लोगों का प्रतिबिंब क्यों न पड़े ? क्या इसका कोई उत्तर है ? क्या ४९ लोगों का कोई विचार ही नहीं ? सबके विचारों का मिश्रण होकर राज्य चले, यह अलग बात है। किन्तु यहाँ तो सिर्फ गिनती से राज्य चलता है। वह भी हरएक के सिर की एक गिनती ! सिर्फ रावण को दस मत का अधिकार रहेगा, बाकी सब लोगों को एक ही मत का अधिकार ! यह भी कोई राज्य-व्यवस्था है ?

उसमें भी जो लोग चुनकर आते हैं, वे कभी अच्छे होते हैं, तो कभी बुरे। राजाओं के जमाने में भी कभी अच्छे राजा आते थे, तो कभी बुरे। हाँ, उस समय कोई राजा यह दावा नहीं कर सकता था कि "मैं प्रजा की तरफ से यह सब कर रहा हूँ।" अगर वह गोली चलाता, तो अपनी जिम्मेवारी से चलाता था। लेकिन आज की सरकार गोली चलायेगी, तो यही कहेगी कि "लोगों की तरफ से, लोगों के हित के लिए गोली चलायी गयी।" इसका मतलब यह हुआ कि आज जो गोली चलायी जायगी, उसकी पूरी जिम्मेवारी जनता पर आयेगी। राज्य-संस्था में और लोकशाही में इतना ही फर्क पड़ा और कुछ भी नहीं। यहाँ कोई मुख्यमंत्री बनता है, तो वह अपना एक मंत्रिमंडल बनाता है। उसके मंत्रिमंडल में वे ही लोग रहते हैं, जिन्हें मुख्यमंत्री चुनता है। यह तो बिलकुल राजाओं की-सी ही व्यवस्था हो गयी। मुख्यमंत्री सारे मंत्रियों को चुनता और प्रधानमंत्री (प्राइम मिनिस्टर) केन्द्रीय मंत्रिमंडल को चुनता है—याने एक राजा और उसके चन्द सरदार, यही हुआ। पहले भी राजा अकेला राज्य न करता था, उसे भी दूसरे मंत्रियों की जरूरत पड़ती थी। अकबर के मंत्रिमंडल में ९ मंत्री थे ही। उसने टोडरमल, अब्दुल फैजी आदि मन्त्रियों को चुना और सबने मिलकर राज्य चलाया।

केन्द्रित सत्ता के दोष

अब अगर प्रधानमंत्री अच्छा रहा, तो राज्य अच्छा चलेगा और वह

अक्ल खो बैठेगा, तो आप सभी खतम हो जायँगे। आज सारी दुनिया को आग लगाने की शक्ति आइक, बुलगानिन, ईडन, चाओ और माओ के हाथ में आ गयी है। उनमें से किसी एक के भी दिमाग में दुनिया को आग लगाने का विचार आये, तो वह लगा सकता है। सारी दुनिया को आग लगाने के लिए इन चार-पाँच लोगों के एकमत की भी जरूरत नहीं! किसी एक का दिमाग बिगड़ जाय, तो भी काफी है। किन्तु अगर दुनिया में शान्ति रखनी है, तो उन सबको एकमत होना पड़ेगा। यह कितनी भयानक हालत है! कुल दुनिया के २५० करोड़ लोगों ने अपनी सत्ता आठ-दस लोगों के हाथ में सौंप दी है। आजकल सर्वत्र इन्हीं आइक-माइक और चाऊ-माऊ की चर्चाएँ चलती हैं, इन्हींकी चर्चाओं से अखबार भरे रहते हैं। कारण लोग घबराये हैं कि न मालूम ये लोग कब आग लगायेंगे! स्वेज नहर का मामला अभी कुछ सुलझ रहा है। अगर वह नहीं सुलझता, तो आपकी ४,४०० करोड़ रुपये की पंचवर्षीय योजना खतम ही थी। तब उससे गाँव-गाँव के लोगों को तकलीफ ही होती, वस्तुओं के दाम ऊँचे चढ़ जाते, किसीके हाथ में कुछ न रहता।

दो दिन पहले हमने अखबार में पढ़ा कि कोयम्बतूर जिले के धारापुर में मक्खन का भाव छह रुपये से चार रुपया हो गया। अब बेचारे मक्खन बेचनेवालों की क्या हालत होगी? अभी लड़ाई शुरू नहीं हुई, तब ऐसी हालत है, तो महायुद्ध शुरू होने पर दाम कहाँ-से-कहाँ बढ़ जायँगे, कोई नहीं कह सकता। हिन्दुस्तान के देहातों के लोग सर्वथा दुःखी हो जायँगे। इन सबका एकमात्र कारण कुल देश का भला-बुरा करने का अधिकार एक शख्स के हाथ में सौंपना ही है। आज का चित्र तो यह है कि हरएक देहात में किस तरह का काम हो, इसकी योजना दिल्ली में बनती है और वह भी वे लोग बनाते हैं, जो देहात का दर्शन करने की भी जरूरत नहीं मानते। वे ही तय करते हैं कि जितने बुनकर हैं, सबको लैसंस ले लेना चाहिए, जैसे कि शराब की दूकान खोलने के लिए लैसंस लेना पड़ता है। यह है लोगों की तरफ से चुनी हुई सरकार की योजना!

विकेन्द्रित सत्ता से ही शान्ति

आज बिहार में शराब-बंदी नहीं है। वहाँ गंगा के समान शराब की नदी बहती है, पर वहाँ गोवध-बंदी है। इधर आपके मद्रास में शराब-बंदी है, पर गोवध-बंदी नहीं। आखिर एक ही देश के इन दो प्रान्तों में इतना फर्क क्यों? क्या यहाँ का लोकमत चाहता है कि गाय कटे और बिहार का लोकमत चाहता है कि वहाँ शराब की नदी बहे? नहीं, लोकमत का कोई सवाल ही नहीं, लोकमत की कुछ चलती ही नहीं। ५१ लोगों की ४९ लोगों पर पाँच साल के लिए राजसत्ता चल रही है! ४९ लोगों की कुछ भी न चलेगी। इन ५१ में भी उनकी पार्टी-बैठकों में बहुमत से प्रस्ताव पास होगा, याने ५१ में २६ लोगों की चलेगी और २५ लोगों की नहीं। मजे की बात है कि १०० में से ४९ लोग पहले ही खतम कर लिये और बाकी ५१ को महत्त्व दिया गया। उन ५१ की पार्टी-बैठक में भी २५ को खतम किया और २६ को महत्त्व दिया गया। याने १०० लोगों पर २६ की चलेगी। उसमें भी उनका एक पार्टी-व्हिप (सचेतक) होगा, जो कुछ बातों में चुप रहने के लिए कहेगा, तो सबको चुप रह जाना पड़ेगा। वह दल का अनुशासन है। फिर प्रधानमंत्री स्वयं अपने लोग चुनेगा। यह परमात्मा की कृपा है कि आपका प्रधानमंत्री अक्ल रखनेवाला मनुष्य है। फिर भी हम तो वैसे ही पराधीन रहे, जैसे राजाओं के जमाने में थे। इसलिए दुनिया को सच्ची शान्ति और सच्ची आजादी तभी मिलेगी, जब राज्य-व्यवस्था विकेन्द्रित हो जायगी।

इसका अर्थ यह हुआ कि गाँव-गाँव के लोगों का कारोबार उन्हीं लोगों के हाथ में हो। अपने-अपने गाँव में कौन-सी चीज का आयात-निर्यात किया जाय, यह गाँववाले ही तय करें। गाँव की कुल सत्ता गाँववालों के ही हाथ में रहे। गाँव का करोबार पार्टी के ढंग से या बहुमत से भी नहीं, सबकी राय से चले। सब गाँवों का संयोजन करने के लिए कुछ लोग ऊपर रहें, जिनके हाथ में भौतिक शक्ति कम और नैतिक शक्ति अधिक हो। वे सिर्फ दो गाँवों के झगड़ों के बीच पड़ें, बाकी परदेश के साथ सम्बन्ध रखें। उसी तरह के काम उनके हाथ में रखे

जायँ। इस तरह जब राज्य-सत्ता बँटेगी, तभी लोगों में शान्ति होगी। गाँव में भी जो सत्ता चलेगी, वह सत्ता नहीं, सेवा होगी। सब मिलकर सबकी सेवा करेंगे।

सर्वोदय याने शासन-मुक्ति

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि सर्वोदय क्या है, यह विचार अभी समझना बाकी है। 'सर्वोदय' याने अच्छा शासन या बहुमत का शासन नहीं, बल्कि शासन-मुक्ति या शासन का विकेन्द्रीकरण ही है। कोई भी काम बहुमत से नहीं, सर्वसम्मति से और गाँव की जन-शक्ति से होना चाहिए। तमिलनाड में दूसरे किसी प्रान्त से कम श्रद्धा-बुद्धि नहीं है। यहाँ सर्वोदय के लिए भी प्रेम है, पर सर्वोदय क्या है, वह अभी समझना बाकी है। जो काम लोकशक्ति से होगा, उसीसे सर्वोदय होगा, इसका ज्ञान अभी तमिलनाड को नहीं हुआ है। इसीलिए बहुत से लोगों के दिमाग अभी राजनीति में कैद हैं।

सरकार को तोड़ो

ये सभी राज्य चलानेवाले अगर शरीर-परिश्रम में लग जायँ, तो सारी दुनिया का कारोबार अच्छा चलेगा। आज तो ये लोग थोड़ा-सा काम करते और बहुत-सी छुट्टियाँ लेते रहते हैं। प्रोफेसर छह महीने की छुट्टी लेते हैं, विद्यार्थियों को तीन-तीन महीने की छुट्टी मिलती है, इस तरह अनेक को छुट्टी मिलती है।

मैंने एक बार सुझाव रखा कि इन राज्य करनेवालों को दो साल की छुट्टी देकर देख लेना चाहिए कि उनके बिना देश में क्या-क्या गड़बड़ी होती है। क्या मक्खन बनानेवाला मक्खन नहीं बनायेगा? क्या तरकारी बेचनेवाला तरकारी न बेचेगा? खरीदनेवाला उसे न खरीदेगा? क्या लोगों की शादियाँ न होंगी? क्या बच्चे जन्म न पायेंगे? मरनेवाले न मरेंगे? उन्हें जलाने के लिए जानेवाले न जायँगे? माताएँ बच्चों को दूध न पिलायेंगी? क्या लोग अपने घर के आँगन में झाड़ू न लगायेंगे? माता-पिता अपने बच्चों को कहानी, रामायण आदि न सुनायेंगे? आज जो यह सब होता है, उनमें से क्या नहीं होगा, यह बताइये। हाँ, झगड़े न होंगे, इसलिए वकीलों को काम न मिलेगा, तो उनकी कुछ दूसरी व्यवस्था कर दी जायगी। किंतु सरकार

अगर दो साल छुट्टी ले ले, तो लोगों का भ्रम-निरसन तो हो जाय कि इन राज्य करनेवालों के बिना दुनिया का कुछ नहीं चल सकता। हाँ, अगर यह सूर्यनारायण न उगे, तो दुनिया खतम हो जायगी। दान और तप न होगा, ऊपर से परमेश्वर की कृपा की बारिश न हो, तो दुनिया खतम हो जायगी। ईश्वर की कृपा की बारिश की जरूरत है, सरकार की नहीं।

किन्तु इन दिनों तमिलनाड़ में उल्टी बात चल पड़ी है। यहाँवाले कहते हैं कि हमें ईश्वर नहीं, सरकार चाहिए। क्या नसीब है! बेचारे ईश्वर के पीछे पड़े हैं, उसे मिटाने की बात करते हैं, लेकिन सरकार को तोड़ने की बात नहीं करते। भाई, ईश्वर को क्यों मिटाते हो? वह तो एक कोने में बैठा है, उससे आपका क्या बिगड़ता है? आप कहें कि वह 'है' तो है, नहीं तो नहीं है। आश्चर्य की बात है कि जो बेचारा आपके कहने पर निर्भर है, उसके पीछे आप हाथ धोकर पड़े हैं, लेकिन जो सत्ता आपके सिर चढ़ बैठी है, जिसके नीचे आप खतम हो रहे हैं, उसे और भी सिर पर दृढ़ रखते जायँ। हम समझ नहीं पाते कि यह कैसी अक्ल है? जो ईश्वर बेचारा गरीब है, 'नहीं है' कहने पर उसे भी सह लेता है, उसके पीछे क्यों लगे हैं और जो आपके सिर पर प्रतिक्षण नाचते हैं, उन्हें सिर पर क्यों उठा रहे हैं? मैं यह केवल 'हिन्दुस्तान सरकार' की बात नहीं करता और न 'मद्रास सरकार' की ही बात करता हूँ। उनका जिक्र करने का कोई कारण ही नहीं है। हम उनकी कोई हस्ती ही नहीं मानते। आप लोगों ने चुना है, तो वे सरकारें वहाँ बैठी हैं। हम तो आप लोगों की कीमत मानते हैं। गड़रिया भेड़ों की रक्षा करता था। एक बार भेड़ों को मताधिकार दिया गया। तब से भेड़ें चुनने लगीं कि फलाना गड़रिया हमारा है। अब वह चुना हुआ गड़रिया भेड़ों का रक्षण करता है। पर भेड़ तो भेड़ ही है। चाहे अपना स्वतन्त्र गड़रिया चुना आया हो, तो भी क्या हुआ? जब वे यह कहेंगी कि हमें गड़रिया नहीं चाहिए, तभी भेड़ें मिटेंगी और वे मानव बनेंगी। इसीका नाम है, 'सर्वोदय' और इसीका नाम है, 'शासन-मुक्ति'!

बोड़ीनायकन्नुर (मदुराई)
१० १२-'५६

अभी तक हमें करीब पन्द्रह सौ ग्रामदान मिले हैं। वे लोग सुखी हुए, इसमें कोई शक नहीं। जब सारा गाँव एक हो जाता है, तो सबकी सम्मिलित अक्ल से काम होता है। इसलिए सब मिलकर सुखी होने की राहें खुल जाती हैं। फिर भी हम वचन नहीं देते कि "ग्रामदान से आप सुखी होंगे, इसलिए ग्रामदान दें।" हम स्वराज्य के बारे में लोगों को समझाते रहे कि अंग्रेजों के राज्य में सुख होता होगा, तो भी हमें वह सुख नहीं, स्वराज्य चाहिए। हमें स्वराज्य में कम खाना मिले और विदेशी सत्ता में पूरा खाना मिलता हो, तो भी पूरा खाना देनेवाली विदेशी सत्ता हमें नहीं चाहिए। यह अलग बात है कि अंग्रेजों के राज्य में विदेशी सत्ता थी और खाना भी पूरा न मिलता था, तो दोनों संकट इकट्ठे हो गये। दोनों दुःख थे, इसलिए कोई सवाल ही न था। किन्तु अगर दोनों दुःख न होते और खाना-पीना पूरा मिलता, तो भी हम स्वराज्य ही माँगते! ग्रामदान के लिए भी यही बात लागू है। 'ग्रामदान' याने गाँव का स्वराज्य! आज ग्रामराज्य कहाँ है? आज तो स्वराज्य का पार्सल लंदन से दिल्ली तक आया है और अधिक-से-अधिक दिल्ली से मद्रास तथा शायद मदुरा तक आया हो। अभी स्वराज्य का पार्सल गाँव-गाँव नहीं पहुँचा है। जब तक गाँव-गाँव स्वराज्य न पहुँचेगा, तब तक मद्रास-मदुरा में स्वराज्य आ जाने पर भी उससे गाँववालों को क्या लाभ होगा?

शेफील्ड की छुरी और बकरा

एक था गाँव! वहाँ कसाई लोग रहते थे। वे बकरे को 'शेफील्ड' की छुरी से काटते थे। फिर स्वराज्य आ गया, तो तय हुआ कि अब 'शेफील्ड' की नहीं, अलीगढ़ की छुरी से बकरे काटे जायँगे। फिर भी बकरे चिल्लाते ही रहे। कसाई कहने लगा: "मूर्ख, अब क्यों चिल्लाता है? अब तो तू शेफील्ड की नहीं, अलीगढ़ की छुरी से काटा जा रहा है।" क्या यह सुनकर बकरा खुश

होगा ? सारांश, स्वराज्य दिल्ली में आ जानेभर से कुछ नहीं बनता। मैं धूप में घूम रहा हूँ, बहुत प्यास लगी है, बहुत दुःखी हो रहा हूँ। एक पेड़ के नीचे प्यास के मारे बैठ जाता हूँ। मित्र कहता है, "अरे, नदी पाँच मील की दूरी पर भी नहीं है।" थोड़ा चल लेता हूँ। मित्र फिर से कहता है, "अरे, अब तो नदी दो मील की दूरी पर ही है। क्यों रोता है ? पहले पाँच मील पर थी, तब रोते थे, तब तो ठीक था; लेकिन अब तो दो मील पर ही है।" पर नदी पाँच मील की दूरी पर से दो मील दूर रह जाय, तो क्या उससे प्यास बुझ जायगी ? प्यासे को तो तभी समाधान होगा, जब पानी पेट में जायगा। वह दस हाथ दूरी पर हो, तो भी उसे समाधान न होगा। इसी तरह जब सब लोगों के अनुभव में स्वराज्य आयेगा, तभी गाँव-गाँव में स्वराज आयेगा।

ग्रामदान 'ग्रामराज्य' की बुनियाद

ग्रामदान ग्रामराज्य की बुनियाद है। क्या स्वराज्य आते ही एकदम से उत्पादन बढ़ गया ? नहीं, उसके लिए कोशिश हो रही है। वैसे ही ग्रामदान होने पर एकदम उत्पादन नहीं बढ़ेगा। उसके लिए कोशिश होगी। कोशिश करने का अधिकार आपके हाथ में आयेगा, तभी कोशिश करोगे न ? आज तो समाज ही नहीं बना है। जो करेगा, वह अपने घर के लिए ही करेगा। जैसा कि मैंने कहा, अभी अपने देश में परिवार बना है। इसलिए हमें पहला काम गाँव-गाँव में समाज बनाने का करना है। ग्रामदान से ग्रामसमाज बनेगा। उसके बाद ही उसे सुखी बनाने की बात आयेगी। जहाँ समाज ही बना नहीं, वहाँ उसे सुखी बनाने की बात ही क्या ? इसलिए पहले समाज बनाओ, फिर उसे सुखी बनाने की बात करो। यह बात बिलकुल साफ होनी चाहिए। इसी तरह गाँववालों को समझाना चाहिए।

कागीलपुरम्
१५-१२-'५६

ग्रामदान में धर्म, अर्थ और विज्ञान का विचार

'ग्रामदान' एक अत्यन्त परिशुद्ध धर्म-विचार है। हम यह भी कहना चाहते हैं कि यह एक अत्यन्त आधुनिक अर्थशास्त्रीय विचार है, अत्यन्त परिशुद्ध वैज्ञानिक विचार है। याने इसमें धर्म-विचार, अर्थ-विचार और विज्ञान-विचार, तीनों इकट्ठे हुए हैं। तीनों विचारों की कसौटी पर ग्रामदान का विचार अच्छी तरह खरा उतरता है।

ग्रामदान का धर्म-विचार

धर्म कहता है कि किसी एक को भी दुःख हो, तो उसके दुःख में सबको हिस्सा लेना चाहिए। गाँव में किसी एक को भी फाँका करना पड़े, तो सब लोग फाँका करें, याने किसीको फाँका करने न दें, खुद कम खाकर उसे खिलायें। आप जानते हैं कि चावल के ढेर से एक सेर चावल निकाल लिया जाय, तो वहाँ एक सेर के आकार का गड्ढा पड़ जाता है। लेकिन कुएँ से बालटीभर पानी निकाल लें, तो वहाँ बालटी के आकार का गड्ढा नहीं पड़ता, बिल्कुल पहले जैसा समतल रहता है, सिर्फ स्तर कुछ नीचे गिर जाता है। दोनों में यह फर्क इसीलिए पड़ा कि पानी की बूँदों में परस्पर इतना प्रेम है कि वे एकदम मदद के लिए दौड़ी आती हैं। आपने कुएँ से बालटीभर पानी निकाला और उसमें गढ़ा पड़ने की तैयारी हुई कि बाकी सारी बूँदें उस गढ़े को भरने के लिए दौड़ी जाती हैं। धर्म कहता है कि समाज में पानी की बूँदों के समान प्रेम हो। इसके विपरीत ज्वार के ढेर में गढ़ा पड़ता है, क्योंकि ज्वार के दाने अपने को अलग-अलग मानते और गढ़ा भर देने में मदद नहीं देते। उनमें भी कुछ महात्मा दाने होते ही हैं, जो गढ़ा भर देने के लिए अन्दर कूद पड़ते हैं, लेकिन वे थोड़े होते हैं। बाकी के दानों को कोई परवाह नहीं होती। जिस समाज के लोग ज्वार के ढेर के समान हैं, वहाँ धर्म नहीं और जिस समाज-रचना में पानी का सद्भाव आ जाय, वहाँ धर्म है। आपके गाँव में पाँच घरों को खाना नहीं मिल रहा हो, वहाँ गड्ढा

पड़ रहा हो और बाकी के सभी लोग उनकी मदद में पहुँच जायँ, खुद कम खाकर उन्हें खिलायें और गढ़ा भरें, तो उसीका नाम धर्म-विचार है। इसीको 'करुणा' और 'प्रेम' कहते हैं। यही परमेश्वर का रूप है।

ग्रामदान से फाँका करने का मौका मिलेगा

ग्रामदान के काम में करुणा प्रत्यक्ष प्रकट होती है। उससे पहला लाभ यह होगा कि हमें दूसरों के लिए फाँका करने का मौका मिलेगा। हम इसे अपना बहुत बड़ा भाग्य समझते हैं। माता पर बच्चे के लिए फाँका करने की नौबत आती है, यह उसके लिए गौरव की बात है। माता खुद फाँका कर बच्चों को खिलाती है, यही गृहस्थाश्रम का वैभव है। एक ऐसा जवान है, जिसकी शादी नहीं हुई है। अगर वह रास्ते में पेड़ पर आम देखेगा, तो तोड़कर खा लेगा। लेकिन शादी होने के बाद वह आम तोड़कर खायेगा नहीं, बच्चों को खिलाने के लिए घर ले आयेगा। क्या गरीब मनुष्य शादी करता है, तो उससे उसकी आमदनी बढ़ जाती है? शादी के पहले उसके घर में जो दूध था, उसे वह खुद पी लेता था। किंतु शादी के बाद वह उसे बच्चों के लिए रखता है, खुद नहीं पीता। अगर उससे पूछा जाय कि तुझे दूध क्यों नहीं मिलता, तो कहेगा कि "घर में एक ही गाय है, उसका दूध बच्चों के लिए ही पर्याप्त है, ज्यादा नहीं है।" अगर उससे पूछा जाय कि तू क्यों नहीं पीता, तो वह कहेगा कि पहले बच्चों का हक है। इस तरह त्याग की कल्पना आती है। इसीलिए गृहस्थाश्रम को 'धर्म' माना गया है।

जिसकी शादी न हुई हो, उसे कोई भी अच्छी चीज देखकर खाने की इच्छा होती है। लेकिन शादीशुदा, बाल-बच्चेवाले की खुद खाने की नहीं, वह चीज घर लाने की इच्छा होती है। अगर कोई उसे पूछे कि "शादी करने से तुम्हारी उपज कितनी बढ़ी और क्या अब तुम्हें खाना-पीना अच्छा मिलने लगा?" तो १०० में से ६६ का उत्तर यही होगा कि शादी करने के बाद हमें उतना अच्छा खाना-पीना नहीं मिलता। फिर भी उसमें उन्हें आनंद महसूस होता है। त्याग करने का मौका जो मिलता है। हमें भी लोग पूछते हैं कि क्या ग्रामदान

के बाद गाँव की उपज बढ़ेगी ? आज हमें जितना अच्छा खाना मिलता है, उससे ज्यादा अच्छा मिलेगा ? हम कहते हैं कि ऐसा कोई वचन हम नहीं देते। हम इतना ही कहते हैं कि ग्रामदान के बाद आपको अपने गाँव के दुःखी लोगों के दुःख में हिस्सा लेने का मौका मिलेगा। यह है ग्रामदान का धर्म विचार !

ग्रामदान से अर्थोत्पादन में वृद्धि

अब ग्रामदान के अर्थ-विचार के बारे में देखिये। आज गाँव में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हैं। कुछ के पास बहुत ज्यादा जमीन है, कुछ के पास कम है, तो कुछ के पास कुछ भी नहीं। क्या किसी खेत में कुछ टीले और कुछ गढ़े हों, तो वहाँ अच्छी फसल आयेगी ? टीलों पर सारा पानी बह जाने से फसल न होगी, तो गढ़ों में पानी भरा रहने से वह सड़ जायगी, इसलिए अच्छी फसल न होगी। सभी किसान जानते हैं कि टीलों की मिट्टी काटकर गढ़ों में डाली जाय और खेत समतल बना दिया जाय, तो अच्छी फसल आयेगी। इसी तरह आज समाज में कुछ सम्पत्ति के टीले हैं और कुछ बिलकुल भूखे दरिद्री गढ़े। ऐसे समाज में अच्छा अर्थोत्पादन हो नहीं सकता। जिस समाज में ऐसे ऊँचे टीले और गढ़े न होंगे, सबकी संपत्ति इकट्ठा होकर समता और सहयोग का भाव आया होगा, वहीं अर्थोत्पत्ति बढ़ेगी।

समता का यह अर्थ नहीं कि बिलकुल ही समान हो जाय, जैसे हाथ की अँगुलियों को काटकर एक समान बनाया जाय। हम कहते हैं कि समाज में पाँचों अँगुलियों जैसी समता होनी चाहिए। अँगुलियों में कुछ छोटी-बड़ी जरूर होती हैं, पर एक अँगुली एक इंच लम्बी, तो दूसरी एक फुट, ऐसा नहीं होता। अगर ऐसा हो, तो हाथ से बालटी उठाना भी संभव न होगा। अँगुलियों में परस्पर कुछ कमी-बेशी अवश्य है, फिर भी वे करीब-करीब समान हैं। हरएक में अपनी अलग-अलग ताकत है और सब मिल-जुलकर काम करती हैं। इसलिए उनसे हजारों काम बनते हैं। पाँचों अँगुलियों के इकट्ठा होने पर ही काम होते हैं। इसी तरह से कुछ काम तभी बनते हैं, जब सब इकट्ठे होते हैं, सब सावधान रहते हैं और सब सहयोग करते हैं। यह है अर्थ-विचार !

ग्राम-भावना आवश्यक

आज गाँव के सभी लोग बाहरी कपड़ा खरीदते हैं, गाँव के बुनकरों का कपड़ा नहीं खरीदते। बेचारे बुनकर अपना कपड़ा लेकर बाहर बेचने जाते हैं और वहाँ वह न बिका, तो सरकार के सामने आकर रोते हैं। किन्तु अगर बुनकर और किसान इकट्ठे होकर निश्चय करें कि "किसान जो सूत कातेंगे, उसे ही बुनकर बुनेंगे और बुनकर जो बुनेंगे, वही कपड़ा किसान पहनेंगे" तो दोनों जियेंगें। आज भी गाँव में बुनकर और तेली हैं। लेकिन गाँव का बुनकर अपने ही गाँव के तेली का तेल यह कहकर नहीं खरीदता कि वह महँगा पड़ता है। वह शहर की मिल का ही तेल खरीदता है। इसी तरह गाँव का तेली भी गाँव के बुनकर का कपड़ा महँगा कहकर नहीं खरीदता और शहरी मिल का खरीदता है। दोनों एक ही गाँव में रहते हैं, पर न तेली का धन्धा चल रहा है और न बुनकर का, क्योंकि दोनों एक-दूसरे की मदद नहीं करते। मान लीजिये, बुनकर ने तेली का तेल खरीदा, वह थोड़ा महँगा पड़ा और बुनकर की जेब से तेली के घर दो पैसे ज्यादा गये। फिर तेली ने बुनकर से कपड़ा खरीदा, वह थोड़ा महँगा था और तेली की जेब से दो पैसे बुनकर के घर गये, तो क्या फर्क पड़ा? इसके घर से उसके घर में पैसे गये और उसके घर से इसके घर में गये। मौके पर दोनों को मदद मिली, तो क्या नुकसान हुआ? मेरी इस जेब से पैसा उस जेब में गया और उस जेब से इस जेब में आया, तो मेरा क्या नुकसान हुआ? आखिर क्योंकि दोनों जेब मेरी ही हैं।

एक ही गाँव में बुनकर, किसान, चमार, तेली, सभी हैं। लेकिन तेली के तेल के लिए, बुनकर के कपड़े के लिए और चमार के जूतों के लिए गाँव में ग्राहक नहीं, यह क्या बात है? गाँव में इतने सारे लोग पड़े हैं, वे क्यों नहीं ग्राहक बनते? कारण स्पष्ट है। ऐसा कोई सोचता ही नहीं कि "यह मेरा गाँव है।" अगर एक गाँव में रहकर भी "यह मेरा घर है" इतना ही सोचेंगे, तो गाँव का काम न बनेगा। गाँव के किसी एक घर में चेचक हो, तो सारे गाँव को उसकी छूत लग जाती है, क्या उसे रोक सकते हैं? गाँव में एक घर को आग लगे, तो पड़ोसी के घर को भी लगती है, क्या उसे रोक सकते हैं? इसलिए कुल

गाँव एक परिवार समझो, तभी काम बनेगा। अगर हम चाहते हैं कि यह जगह साफ रहे और यहाँ के दो घरवाले उसे साफ रखें, पर दूसरे दो घरवाले यहीं अपने लड़कों को पैखाने के लिए बैठाते हैं, तो क्या यह जगह साफ रहेगी? यह जगह तो तभी साफ रहेगी, जब चारों घरवाले मिलकर निश्चय करें कि हम उसे साफ रखेंगे। इसलिए गाँव का काम, गाँव की उन्नति और साथ-साथ घर की भी उन्नति तब होगी, जब गाँववाले सारे गाँव को अपना एक परिवार मानेंगे। ग्रामदान से यह कार्य होगा। यही इसका अर्थशास्त्रीय विचार है।

ग्रामदान के पीछे विज्ञान का विचार

नया जमाना विज्ञान का जमाना है। इस जमाने में हम मिल-जुलकर काम न करें, अलग-अलग करें, तो टिक नहीं सकते। इस जमाने में कोई भी देश दूसरे देश की मदद के बिना टिक नहीं सकता। कोई भी प्रदेश दूसरे प्रदेश की मदद के बिना टिक नहीं सकता। कोई भी ग्राम दूसरे ग्राम की मदद के बिना टिक नहीं सकता। कोई भी घर दूसरे घर की मदद के बिना टिक नहीं सकता। बाबा ने चश्मा पहना है। अगर वह चश्मा नहीं होता, तो बाबा यात्रा ही नहीं कर सकता; क्योंकि वह अंधा हो जाता। लेकिन यह चश्मा बाबा ने नहीं, दूसरों ने बनाया है। अभी हम जिस लाउड-स्पीकर का उपयोग करते हैं, वह गाँववालों ने नहीं, दूसरों ने बनाया है। इसी तरह हम जीवन में ऐसी पचासों चीजें देखेंगे, जो दूसरों ने बनायी हैं। विज्ञान के इस जमाने में हम टुकड़े-टुकड़े नहीं कर सकते। हम छोटे-छोटे फिरके बनायेंगे, तो टिक नहीं सकते। इसलिए राष्ट्रों, प्रान्तों और ग्रामों का सहयोग अत्यावश्यक है। ग्रामदान के पीछे यही विज्ञान का विचार है।

धर्म-विचार करुणा सिखाता है, अर्थ-विचार अर्थोत्पादन बढ़ाने की बात सिखाता है और विज्ञान बताता है कि सहयोग से ही शक्ति पैदा होती है। विज्ञान शक्ति की शोध करता है, अर्थशास्त्र संपत्ति और धर्म-शुद्धि की शोध करता है। तीनों कार्य ग्रामदान में सधते हैं।

काडुविलारपुर
१८-१२-'५६

ग्रामदान से जनशक्ति का निर्माण : २८ :

मदुरा जिले में हमने ज्यादा-से-ज्यादा जोर ग्रामदान पर लगाया। करीब सात महीनों से हम तमिलनाड़ में घूम रहे हैं। वैसे तो ग्रामदान की बात पहले से ही समझाते आ रहे हैं। किन्तु तमिलनाड़ में इसके पहले कुछ बहुत काम नहीं हुआ था। इसलिए हवा तैयार करने में ही इतने महीने बीत गये। हम कहीं जायँ और महीने-दो महीने में यह सारा काम कर डालें, ऐसी आशा रखना गलत ही है। जहाँ पहले से ही बीज बोया हो, वहीं मनुष्य काटने के लिए जा सकता है। नहीं तो पहले से ही मेहनत करनी होगी, बीज बोना होगा। उसके बाद ही फसल काटनी होगी। इस तरह हमारे पाँच-छह महीने पूर्व-तैयारी में चले गये। अब कार्यकर्ताओं के ध्यान में यह बात आ गयी है। यों तो ग्रामदान का यह काम दूसरे प्रान्त में एक-डेढ़ साल से चल रहा है। उड़ीसा में करीब १२०० से भी ज्यादा ग्रामदान हो चुके हैं। वहाँ सर्व-सेवा-संघ का भी काम चलता है। फिर भी तमिलनाड़ के रचनात्मक कार्यकर्ता किसी दूसरे काम में लगे थे, जिससे वे इसके लिए फुरसत नहीं निकाल सकते थे या उनमें इसकी हिम्मत ही नहीं थी।

जो भी हुआ हो, उन्होंने साल-डेढ़ साल उसमें ध्यान ही नहीं दिया। अब जब से हम आये हैं, एक प्रकार की भावना निर्माण हुई है। ये लोग अब भी रचनात्मक काम में लगे हैं और हम रचनात्मक काम छोड़कर भू-दान में लगे हैं। रचनात्मक काम हम भी ३० साल तक करते रहे, इसलिए उसका अनुभव तो हमें है। किन्तु हमने देखा था कि जब तक जनता का मानस तैयार न हुआ हो, क्रांति की भावना निर्माण न हुई हो, तब तक रचनात्मक काम हमारी अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो सकता।

'प्रोटेक्शन' की नीति

गांधीजी ने स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आशा की थी कि उनका रचनात्मक कार्य

सरकार उठा लेगी, पर इसके बारे में उन्हें घोर निराशा हुई। उनके निराशा के उद्‌गार हमने कई बार सुने हैं। उनके जाने के बाद कई प्रकार के संकट देश पर थे, इसलिए रचनात्मक काम की तरफ बहुतों का ध्यान नहीं गया, तो हम उन्हें दोष नहीं देते। किन्तु आज भी सरकारी नीति में गांधीजी जो चाहते थे, वैसी कोई चीज नहीं है। सोचा जाता है कि अगर दूसरे ढंग से देश की समस्या हल हो सके, तो कोई आवश्यकता नहीं कि गांधीजी के विचार के अनुसार ही देश चले। पर अभी तक जो अनुभव आया, उस पर से तो स्पष्ट है कि देहातों के लिए गांधीजी की योजना से भिन्न कोई योजना हो ही नहीं सकती।

हमने एक गाँव में दस-पंद्रह साल बिताये। इतने समय में दस-पाँच-पचास लोग खादीधारी हुए, पर पूरा-का-पूरा गाँव या आधा भी गाँव खादीधारी होने का अनुभव नहीं आया। जिस तरह लोक-जीवन में खेती है, वे अपना अनाज खुद पैदा कर लेते हैं, उसी तरह कपड़ा और ग्रामोद्योग उनके जीवन का एक अंग होना चाहिए। इसके लिए दो ही उपाय हो सकते हैं। एक तो यह कि उनके खिलाफ खड़ी मिलों पर सरकार रोक लगाये। खुली प्रतियोगिता (ओपन काम्पिटीशन) में मिलों के खिलाफ यह चीज टिकेगी, यह आशा रखना व्यर्थ है। अगर गाँव का भला ग्रामोद्योग से होता है, तो उसे सरकार से पूरा संरक्षण मिलना चाहिए। पर वह तो नहीं हो रहा है।

वास्तव में जनहित में 'प्रोटेक्शन' (संरक्षण) देना सरकार का रिवाज और कर्तव्य है। टाटा के लोहे के कारखाने को या देश की चीनी मिलों को सरकार की ओर से कितना संरक्षण दिया गया? इंग्लैंड में २०० साल पहले हिन्दुस्तान का बहुत ज्यादा कपड़ा जाता था। उस समय हिन्दुस्तान में मिलें तो नहीं थीं। लोग हाथ से ही कातते और करघे पर ही बुनते थे। लेकिन यहाँ से व्यापारी इतने दूर कपड़ा ले जाकर व्यापार चलाते थे, तो वहाँ के लोगों को वह सस्ता पड़ता और अच्छा भी लगता था। उस समय आवागमन के साधन भी नहीं थे। बहुत मुश्किल से व्यापारी वहाँ पहुँचते थे। फिर भी अंग्रजों को उसका भी भय खड़ा हुआ और इंग्लैंड ने उस पर प्रतिबंध लगाया। इसलिए यह मानी हुई बात है कि लोक-हित में इस तरह पाबन्दियाँ

लगाना सरकार का कर्तव्य है। अर्थशास्त्र का उसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं। फिर भी अगर सरकार वह नहीं करती, क्योंकि उसे उसमें विश्वास नहीं, तो उस हालत में ग्रामोद्योग कैसे टिकेगा? उसके लिए कोई दूसरा उपाय होना चाहिए।

ग्रामोद्योग के लिए ग्राम-संकल्प

हम ३० साल से इस पर चिंतन करते आये हैं। फलस्वरूप हमें इसका यही उपाय मिला कि हम लोकमत तैयार करते रहें और लोग अपनी तरफ से ग्रामोद्योग को संरक्षण दें। गाँव के लोग ही सामूहिक संकल्प करें कि हम गाँव में बाहर की चीजें काम में न लायेंगे। हिंदुस्तान के लोग गाय का मांस नहीं खाते, भले ही वह सस्ता हो या खाने के लिए अनाज न मिले। आखिर यह किस तरह हुआ? स्पष्ट है कि महापुरुषों ने लोगों में एक भावना निर्माण की। सरकार से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं, लोगों ने अपना फैसला स्वयं कर लिया। इसी तरह अगर लोग अपना फैसला कर लें, तो सरकार के संरक्षण की कोई जरूरत नहीं रहेगी।

यही सोचकर हम ग्राम-संकल्प की खोज में निकल पड़े। उसमें हमें भूदान-यज्ञ का मौका मिला। हमने उससे लाभ उठाया। हमने छोटी-सी बात से आरंभ किया, "अपनी जमीन का एक अंश हमें दीजिये।" फिर छठा हिस्सा जमीन की माँग की। उसके बाद कहा कि "गाँव में कोई भूमिहीन न रहे।" अब हमने यह बोलना शुरू किया कि "पूरा-का-पूरा ग्रामदान मिलना चाहिए, गाँव की मालकियत हो और व्यक्तिगत मालकियत मिटे।" इस तरह हम छोटी-सी चीज लेकर बड़ी बात तक पहुँच गये। ग्रामदान या जमीन की मालकियत न होने की बात तो हम तेलंगाना में भी कहते थे, पर उस पर ज्यादा जोर न देते थे; क्योंकि वह चीज उस समय संभव न थी। धीरे-धीरे जन-मानस तैयार हुआ, तो इस काम को हमने यह रूप दे दिया।

हमने यह इसलिए किया कि ग्रामदान में गाँव का एक संकल्प होता है। वह यह कि गाँव अपने लिए अपना आयोजन कर लेंगे। दिल्ली में जो भी

योजना होगी, उसका कोई ताल्लुक इसके साथ न रहेगा। गाँववाले निश्चय करें कि हम फलानी चीज करेंगे, तो वे कर सकते हैं। फिर मिल का कपड़ा घर बैठे दो आने गज मिलता हो या मिल का एजेण्ट पहले अनुभव के लिए मुफ्त ही कपड़ा बाँटता हो, तो भी गाँववाले कहेंगे कि हमें वह नहीं चाहिए। इसीको हम 'जन-शक्ति' कहते हैं। अब मदुरा जिले में इसी जन-शक्ति का दर्शन हमें हो रहा है। रोज एक-एक, दो-दो ग्रामदान सुनाई दे रहे हैं। अच्छी-अच्छी जमीनवाले गाँव ! लोग पूरे विचार के बाद ग्रामदान दे रहे हैं।

अलग-अलग चित्र

कल एक भाई ने माँग की कि ग्रामदान का चित्र सामने रखा जाय। किन्तु जब फोटो खींचते हैं, तो वह एक ही ढंग का निकलता है। पर हाथ से चित्र खींचते हैं, तो तरह-तरह के आते हैं। मिल का कपड़ा एक ही ढंग का होता है, पर हाथ के सूत में विविधता होती है। हारमोनियम में 'भो ओ' की ही आवाज आती है, पर मनुष्य गाने लगता है, तो तरह-तरह से गाता है। इसी तरह यह हर गाँव के लोगों का काम है, इसलिए हर गाँव का चित्र भी अलग-अलग होगा। कहीं कुल जमीन का एक फार्म बनायेंगे, कहीं एक ही गाँव में दो-चार फार्म बनायेंगे, कहीं चार-पाँच किसान मिलकर एक हो जायँगे, तो कहीं अलग अलग परिवारों में जमीन बाँटी जायगी। इस तरह चित्र भिन्न-भिन्न होंगे, पर हर हालत में जमीन की मालकियत न रहेगी। हम इस प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रयोग करते रहेंगे और उनमें जो सबसे ज्यादा अनुकूल होगा, उसीको आगे बढ़ायेंगे। फिर भी सभी चित्रों के मूल में यही चीज रहेगी कि कुल दुनिया से वह राज्यसत्ता मिटानी है, जो आज सरकार के रूप में आयी है।

अनार-दाना जैसा राज्य

ग्रामदानवाले गाँवों के अनेक प्रकार के चित्र हो सकते हैं; पर चित्र को जो रंग देना चाहें, वह दे सकते हैं। गाँववाले अपनी योजना करें। अपने गाँव का आयात-निर्यात तय करने का अधिकार उन्हींको रहे। हमने हिंदुस्तान के बड़े-बड़े नेताओं से इसके बारे में बातें की हैं। उन्हें लगता है कि "यह कैसे होगा ? यह

तो 'स्टेट' का अधिकार है। एक स्टेट के अंदर दूसरी स्टेट कैसे हो सकती है ?"
लेकिन यह तो आज के राजनैतिक चिन्तन का ही परिणाम है। हम मानते हैं कि लोकशक्ति से यह काम हो सकता है। जैसे अनार में हर दाना अलग-अलग होता है, वैसे ही स्टेट के अंदर अलग-अलग स्टेट बन सकती हैं। प्रत्येक दाना पूर्ण स्वतन्त्र होता है। उसके लिए वहाँ अलग पेशी होती है, उसमें वह भरा रहता है। फिर सब मिलकर एक अनार का फल बन जाता है। इसी तरह हरएक गाँव एक स्वतन्त्र स्टेट, ऐसी असंख्य स्टेटें मिलकर एक बड़ी स्टेट और ऐसी अनेक बड़ी स्टेटें इकट्ठा होने पर एक दुनिया की स्टेट—ऐसी ही रचना ग्रामदान के जरिये हमें करनी है। उसमें ग्राम के लिए परिपूर्ण स्वतन्त्रता होगी। हम नहीं कहते हैं कि अमुक दूकान हमारे गाँव में हो, तो उस चीज को हम रोक सकते हैं। मान लीजिये कि बाहर से मिठाई आयी। हमने उसे न खाने और घर की रसोई ही खाने का तय किया, तो वह मिठाई मक्खियों के लिए छोड़ देंगे। मक्खियों ने बाहर की चीज न खाने का प्रस्ताव तो किया नहीं है। फिर दूकान-वाले को अगर मंजूर हो कि मक्खियों के लिए दूकान चलायी जाय, तो वह चलाये। जाहिर है कि लोगों की इच्छा के विरुद्ध वह दूकान न चला सकेगा। इसीका नाम है 'लोकशक्ति'! इस लोकशक्ति को कोई रोक नहीं सकता। इस तरह का आत्म-विश्वास प्रजा में निर्माण होना चाहिए कि अपना राज्य हमें चलाना है और उसे हम चला सकते हैं।

जनता संकल्प करे

यही आत्म-विश्वास निर्माण करने के लिए ग्रामदान है। फिर ग्रामदानमूलक खादी आयेगी। अभी तक जो खादी थी, उसे ग्रामदान की बुनियाद का आधार न था। बिना बुनियाद के यदि मकान खड़ा किया जाय, तो तूफान आते ही वह गिर जायगा। हमें इसका कितनी बार अनुभव आया है। यह इसलिए होता था कि एक अच्छा विचार हम लोगों के सिर पर लादते थे, स्वयमेव जनता संकल्प न करती थी। जनता संकल्प करती है कि अमुक तारीख को हम दीवाली मनायेंगे, तो सारे हिंदुस्तान में उसी दिन दीवाली मनायी जाती है। ऐसा करते हैं, तो उसमें सरकार की किसी प्रकार की न कोई रुकावट है और न कोई मदद है।

सरकार से मदद अपनी शर्तों पर

एक भाई ने हमसे सवाल पूछा कि "क्या आप ग्रामदान के गाँवों में सरकार की मदद न लेंगे?" सरकार से हमारा बहिष्कार नहीं है। वह हमसे टैक्स लेती है। उसे वापस लेने में हमें क्या हर्ज हो सकती है? इसलिए हम उसकी मदद न लेंगे, सो नहीं। हमें उससे असहयोग नहीं करना है, उसे मिटाना ही है। पर जब तक वह नहीं मिटती, तब तक हम उसकी मदद ले सकते हैं। फिर भी वह मदद हम अपनी शर्त पर लेंगे। किन्तु अगर शर्त मंजूर नहीं करती, तो ग्रामदान के गाँव उससे मदद न लेंगे। ग्रामदान का मुख्य लाभ यह है कि गाँव का कुल काम गाँव की सामूहिक इच्छाशक्ति से होगा। किसीको खयाल ही नहीं था कि इस तरह ग्रामदान हो सकता है, मालकियत मिट सकती है। पर जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ पहाड़ भी चलने लगते हैं। हम मानव-हृदय पर श्रद्धा रखते हैं कि वह सच्ची चीज जरूर मंजूर करेगा। यहाँ आप क्या चमत्कार सुन रहे हैं। लोग हमें ग्रामदान दे रहे हैं। अब हम कार्यकर्ताओं से कहते हैं कि ग्रामदान तो पुरानी चीज हो गयी। ग्रामदान की गंगा का पानी तो हम कोरापुट से यहाँ लाये। क्या यहाँ से हम वही लेकर जायँ? हम तो यहाँ से समुद्र का पानी लेकर जायँगे। हमें 'फिरका-दान' दे दो। सन्तोष की बात है कि हमारे कार्यकर्ता कहते हैं कि यह 'फिरका-दान' हो सकता है। जिन्हें एक गाँव में भी जमीन की मालकियत मिट सकना मुश्किल लगता था, वे ही कार्यकर्ता कह रहे हैं कि फिरका-दान हो सकता है। सारे सर्वोदय-विचार की बुनियाद ग्रामदान है। उसके परिणामस्वरूप लोगों को सिर्फ सुख ही न होगा। हमें सुख की विशेष चिन्ता नहीं, उसका कोई आकर्षण नहीं। आखिर सुख तो दुःख का भाई ही है। दोनों साथ-साथ आयेंगे। जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता ही है, वैसे ही सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता ही है। सुख-सुख चिल्लाते रहने से केवल सुख न मिलेगा। आपको सुख-दुःख, दोनों लेने की तैयारी करनी होगी।

चिंगकटले (मदुरा)

२३-१२-'५६

खुशी की बात है कि इस जिले में जहाँ भी आप जाइये, लोग ग्रामदान-विचार सुनने के लिए बड़े उत्सुक हैं। क्या इस जिले में और जिलों से कुछ विशेष बात है? कुछ होगी, लेकिन हम उसे बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देते। हमने विभिन्न प्रान्तों में लोगों की श्रद्धा समान ही देखी। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होता है कि कहीं व्यापारी आदि बसे हों, सम्पत्ति और स्पर्धा भी बढ़ी हो, तो वहाँ का वातावरण दूसरा ही बन जाता है। पर ऐसी जगहों में भी हमने कम श्रद्धा नहीं देखी।

ग्रामदान के लिए सभी दलों की सहानुभूति

यहाँ तो ग्रामदान की हवा ही बन गयी है। इसका एक कारण यह है कि सभी दलों के लोग इसमें लगे हैं। हम अब मदुरा शहर में जानेवाले हैं, तो हमारे स्वागत के लिए वहाँ एक समिति बनी है। मदुरा एक बहुत पुराना शहर है, जहाँ धार्मिक, भक्ति के संस्कार हैं। वहाँ हमारे स्वागत में भू-दान और सम्पत्ति-दान के काम को बढ़ावा देने के लिए एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उस सभा में जो घटना हुई, वैसा अनुभव मद्रास राज्य में दूसरे किसी काम के लिए नहीं आया। अब तो चुनाव नजदीक आ रहे हैं, इसलिए पार्टियों की कशमकश बढ़ रही है। फिर भी उस सभा में एक ही प्लैटफार्म पर सभी दलों के लोग आये। कांग्रेस, प्रजा-समाजवादी दल, कम्युनिस्ट दल, द्रविड मुन्नेट् कळगम् और रचनात्मक कार्यकर्ता, सब दलों के वक्ताओं ने कहा कि इस काम को बढ़ावा देना चाहिए। कम्युनिस्टों ने भी नयी बात कही।

हमें यह कहने में खुशी होती है कि जब से भू-दान-यज्ञ का विचार शुरू हुआ, तब से हमें कम्युनिस्टों की कुछ-न-कुछ सहानुभूति हासिल होती गयी और ग्रामदान के बाद जब से हमने मालकियत मिटाने की बात जोरों से शुरू की, तब से तो इनकी पूरी सहानुभूति हमारे साथ है। हमने तो तेलंगाना में ५॥ साल पहले ही उनसे कहा था कि तुम लोग रात में आकर क्यों लूटते हो,

हमारे साथ आकर दिन में लूटो। उस वक्त कम्युनिस्ट जंगल में छिपे थे और रात को आकर हमला करते थे। उनके खिलाफ सरकार की सेना खड़ी थी। दोनों के बीच भू-दान-यज्ञ चला। हमने दोनों दलों के दोष स्पष्टता के साथ जाहिर किये। "कम्युनिस्ट कोई जंगल के शेर नहीं कि शिकार से खतम हो जायँगे। उनके विचारों का समाधान करना ही होगा"—यह बात हमने सरकार के सिपाहियों के सामने रखी थी। कम्युनिस्टों से कहा कि "आओ, हम तुम्हें सिखाते हैं कि दिनदहाड़े कैसे लूटा जाता है।" उस वक्त उन्हें विश्वास न था। उन्हें लगता था कि यह आदमी बड़े लोगों का एजेण्ट है और हमारे आन्दोलन को दबा देने के लिए आया है। फिर उड़ीसा में हमारी कम्युनिस्टों से मुलाकात हुई और उन्होंने हमारी बात कबूल की थी। उसके पहले उत्तर प्रदेश और बिहार में भी कम्युनिस्टों से मुलाकात हुई थी। लेकिन तब हम उनके मन में विश्वास पैदा न कर सके थे।

ध्यान रहे कि इस आन्दोलन की शुरुआत केवल एक व्यक्ति से हुई है। कोई एक व्यक्ति ऐसी समस्या न हाथ में ले सकता है, न हल ही कर सकता है। इसलिए सबकी सहानुभूति हासिल करना ही उसका मुख्य बल है। इतिहास में लिखा जायगा कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन इस ढंग से चलाया गया, जिसमें किसी पार्टी की गलतफहमी नहीं रही और उसे सभीकी सहानुभूति हासिल हुई। किन्तु हमें सबको एक करने में तमिलनाड में सबसे ज्यादा सफलता मदुरा जिले में मिली। इन सब दलों को एक करने में हमें इसलिए सफलता मिली है कि यह कार्य ही सबको पसन्द है। लेकिन जहाँ एक ही पार्टी के अन्दर गुट होते हैं और उनमें आपस-आपस में मत्सर चलता है, वहाँ हमें सबको एक करने में सफलता नहीं मिली है; क्योंकि जहाँ आपस में मत्सर के कारण विरोध होता है, वहाँ सार्वजनिक काम में बाधा पड़ती है। खुशी की बात है कि यहाँ का वातावरण अच्छा है।

सम्पत्तिदान का प्रवाह बहता रहे

आपको मालूम हुआ होगा कि एक जनवरी से सारी भूदान-समितियाँ टूट रही हैं और तमिलनाड में तो यह काम अभी से हो चुका है। हमने सिर्फ अपने

साथ सम्पर्क रखने के लिए एक-एक जिले के लिए एक-एक निर्गुण, निराकार मनुष्य चुन लिया है। वह और कुछ नहीं कर रहा है, सिवा इसके कि भिन्न-भिन्न दलों और दूसरे भी लोगों से सम्बन्ध बनाये रखे और कामों के लिए तगादा करता रहे। हमें यह कहने में खुशी होती है कि भूदान और ग्रामदान के गाँवों की मदद के लिए सम्पत्ति-दान का प्रवाह बह रहा है। हमने पहले सम्पत्ति-दान पर ज्यादा जोर नहीं दिया था। तमिलनाड़ में ही हमने उस पर जोर देना शुरू किया है। यहाँ हम सिर्फ भूदान और ग्रामदान ही नहीं चाहते, बल्कि ग्रामदान की बुनियाद पर 'ग्रामराज्य' बनाना चाहते थे। इसलिए यहाँ हमने ग्रामदान के साथ और तीन बातें जोड़ दी हैं। हमने कहा कि ग्रामदान के साथ ग्रामोद्योग भी आयेंगे, जिनमें खादी मुख्य होगी। इसी तरह नयी तालीम चलेगी और जातिभेद के निरसन का भी काम होगा। इस तरह यहाँ हम ग्रामराज्य का पूरा चित्र खड़ा करना चाहते हैं। संपत्तिदान का जोरदार झरना बहता रहेगा, तभी यह कार्य होगा।

बाहरी मदद में खतरा

कार्यकर्ता जगह-जगह संपत्ति-दान के लिए कोशिश कर रहे हैं। पर हम ग्रामदान के गाँववालों को एक महत्त्व की बात समझाना चाहते हैं। आप लोगों को बाहर से मदद दिलाने का हम कुछ प्रयत्न जरूर करेंगे, लेकिन उसे हम बहुत महत्त्व नहीं देते। ग्रामदान का मुख्य वैभव इसी बात में है कि गाँव के सब लोग मिलकर गाँव का स्वराज्य स्थापित करें। हम यह इसलिए कह रहे हैं कि हमें एक भय है। अभी मद्रास-सरकार सोच रही है कि ग्रामदान के गाँवों को किस तरह मदद दी जाय। सरकार इस तरह सोचती है, यह बड़ी खुशी की बात है और उसका वह कर्तव्य भी है। अपने राज्य में सैकड़ों ग्रामदान होते हों, लोग जमीन की मालकियत मिटा रहे हों और सरकार उदासीन रहे, यह हो नहीं सकता। वैसी हालत में या तो इस आंदोलन का कसकर विरोध करना या उसका समर्थन करना ही सरकार का कर्तव्य होगा। पूँजीवादी सरकार उसका विरोध करेगी। जो यह समझती होगी कि चंद लोगों के हाथ में

जमीन रहे तो अच्छा है, जो व्यक्तिगत मालकियत की बहुत कीमत करती होगी, वही सरकार ग्रामदान को खतरा समझेगी। किंतु हमारी यह सरकार तो दावा कर रही है कि वह समाजवादी रचना बनाने जा रही है। हम नहीं जानते कि सरकार या कांग्रेस 'समाजवाद' का अर्थ क्या करती है, क्योंकि दुनिया में उसके पचासों अर्थ किये जाते हैं। फिर भी जो भी अर्थ किया जाय, वह ग्रामदान के खिलाफ नहीं जाता। इसीलिए ऐसी सरकार ग्रामदान के प्रति उपेक्षा की वृत्ति नहीं रख सकती, उसे कुछ-न-कुछ मदद देने की उसकी वृत्ति होनी ही चाहिए। वह ऐसा कर रही है, यह खुशी की बात है।

किंतु उसमें यह भय है कि गाँव के लोग यह समझेंगे कि अब तो हम पर ऊपर से खूब मदद बरसेगी। पर सोचने की बात है कि आसमान से परमेश्वर की मदद मिलती ही है। वह भी अगर आप काम नहीं करते, तो आपके काम में नहीं आती। लोग मेहनत-मशक्कत करते हैं, बीज बोते हैं, इसीलिए उन्हें बारिश की मदद मिलती है। वे मेहनत न करें, तो वर्षा होने पर सिर्फ घास ही उगेगी, फसल नहीं। फसल तो तभी उगती है, जब किसान बारिश के पहले उसकी तैयारी करता है। किसान स्वयं मेहनत न करता, तो परमेश्वर की मदद भी उसके काम न आती। इसलिए हम काम न करें, तो बाहर के संपत्ति-दान-वालों की, सरकार की और अन्य सज्जनों की मदद हमें हरगिज न मिल सकेगी। मुझे लगा कि यह बात मैं स्पष्ट कर आपको आगाह कर दूँ।

दुनिया सरकाररूपी रोग से पीड़ित

मेरे मन में और एक बात है, जो मैं आपके सामने कह देना चाहता हूँ। क्योंकि इस छोटी-सी जिन्दगी में हम अपने विचार छिपाना नहीं, खोल देना चाहते हैं। हमारा मुख्य विचार है कि सारी दुनिया को सरकारों से ही मुक्ति मिले। इसलिए यदि हम सरकारी मदद पर ही निर्भर रहेंगे, तो वह चीज नहीं बनेगी। आज सारी दुनिया अगर किसी रोग से पीड़ित है, तो वह इस सरकार-रूपी रोग से पीड़ित है। आज राम-नाम की जगह 'सरकार' नाम ने ले ली है। १९४७ से हम लोग ज्यादा गुलाम बन गये हैं। उसके पहले लोग समझते थे

कि हमें सरकार की मदद न मिलेगी। जो कुछ करना है, हमें ही करना होगा। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोग समझने लगे हैं कि सरकार की मदद तो हमें मिलनेवाली ही है। अगर ऐसा सोचकर वे पहले से दस गुना परिश्रम करते, तो हिन्दुस्तान बहुत आगे बढ़ता। पर लोग आज उल्टा ही समझने लगे हैं। वे समझते हैं कि हमें कुछ करना-धरना तो है नहीं, जो कुछ करना है, सरकार को ही करना है। लोग समझते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में आकाश से पानी बरसता था और अब भी सिर्फ पानी ही बरसेगा, तो ज्यादा क्या हुआ? अब स्वराज्य हो गया है, तो मृग नक्षत्र में आसमान से कपड़ा नीचे गिरेगा, आर्द्रा नक्षत्र में केला गिरेगा और पुनर्वसु में सारा अनाज गिरेगा। वे कहते हैं कि "स्वराज्य के पहले भी हमें काम करना पड़ता था और अब भी करना पड़ता है, तो हम सुखी तो नहीं हुए।" पर मैं कहता हूँ कि स्वराज्य के बाद आपने क्या छोड़ा? उससे पहले आप आपस में लड़ते थे, क्या अब वह छोड़ दिया? पहले आप झूठ बोलते थे, एक-दूसरे को ठगते थे, क्या अब उसे छोड़ दिया? अगर आपने वे सारे दुर्गुण नहीं छोड़े, तो परिस्थिति में क्या फर्क होगा?

स्वराज्य के बाद त्याग की जरूरत

स्वराज्य आया, तो परिस्थिति के कारण आया, गांधीजी के कारण आया और कुछ गफलत में भी आया, ऐसा समझ लो। क्योंकि लंका और ब्रह्मदेश ने कौन-सा बड़ा प्रयत्न किया, जो उन्हें स्वराज्य मिला? इसलिए हमने कोई बहुत बड़ा पराक्रम किया, इसलिए हमें स्वराज्य मिला, इस भ्रम में मत रहो। हाँ, हमने स्वराज्य के पहले इतना पराक्रम किया कि एक-दूसरे के बहुत-से गले काटे। हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि के जो झगड़े चले, उसका पराक्रम बहुत हुआ। आखिर गांधीजी ने कह दिया कि लोगों ने जो अहिंसा रखी, वह वीरों की अहिंसा नहीं, लाचारों की अहिंसा थी। अगर वीरों की अहिंसा होती, तो ३१ सालों के अन्दर आप भारतभर में एक चमत्कार देखते। लेकिन उसके लिए हमें निराश नहीं होना है। हमें समझना चाहिए कि आगे हमारा कर्तव्य क्या है। गाँव-गाँव के लोगों को अपने पाँव पर खड़े होना चाहिए, त्याग की मात्रा बढ़नी

चाहिए, हरएक को समझना चाहिए कि मुझे अपने गाँव के लिए त्याग करना है। ये सारे गुण गाँव-गाँव में आने चाहिए और गाँव-गाँव को अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

आईने में अपना ही प्रतिबिंब दीखता है

आज कुल दुनिया में एक भ्रम पैदा हुआ है कि सरकारों के कारण हम बचते हैं, अगर सरकार न होती, तो हम बच न पाते। आज ही हमने सुना कि जापान की सरकार सेना की बात कर रही है और वहाँ की जनता को वह जँच नहीं रही है। पाकिस्तान के जो मित्र हमसे मिले, उन्होंने भी कहा कि वहाँ की सरकार ने किया हुआ सैनिक समझौता वहाँ की जनता पसंद नहीं करती। उधर फ्रान्स की सरकार फ्रेंच लोगों को २-४ महीने से ज्यादा पसंद नहीं आती, सालभर में दो-तीन बार सरकार बदला करती है। फिर भी दुनिया के लोगों को यह भ्रम है कि सरकार के बिना हमारा काम चल नहीं सकता। हम यह समझ सकते हैं कि लोगों का काम खेती के बिना न चलेगा, उद्योगों के बिना न चलेगा, प्रेमभाव के बिना न चलेगा, धर्म के बिना न चलेगा। हम यह भी समझ सकते हैं कि यदि शादी की विधि न हो, कुटुम्ब-व्यवस्था न हो, तो लोगों का काम न चलेगा। लेकिन ऐसी वस्तुओं में हम सरकार की गिनती नहीं करते।

वास्तव में जनता को सरकार की कोई जरूरत नहीं। वह तो एक समाज के प्रवाह में चीज बन गयी। समाज में एकरसता निर्माण करने में हम समर्थ सिद्ध न हुए। समाज में अनेकविध भेद पड़ गये। हमें अविरोध से काम करने का पूरा शिक्षण नहीं मिला। उसके बदले में हम राज्यसत्ता से काम लेना चाहते हैं। जो काम लोगों को शिक्षित करने से हो सकता है, उसे हम दंडशक्ति से करना चाहते हैं। हरएक सरकार तालीम के लिए जितना खर्चा करती है, उससे कई गुना खर्चा सेना पर करती है। पाकिस्तान की सरकार कहती है कि "हिन्दुस्तान के डर के कारण हमें सेना और शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं, उस पर खर्चा करना पड़ता है।" हिन्दुस्तान की सरकार कहती है कि "पाकिस्तान का रुख अच्छा नहीं है, इसीलिए हमें सेना पर जोर देना पड़ता है।"

उधर रूस कहता है कि "अमेरिका का खयाल गलत है, इसीलिए उसके डर से हमें शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं।" अमेरिका भी रूस के लिए वही बात कहती है। आखिर सही बात क्या है? पाकिस्तान के डर से हिन्दुस्तान को डरना पड़ता है या हिन्दुस्तान के डर से पाकिस्तान को? अपना प्रतिबिंब ही आईने में दीखता है। वहाँ वह तलवार लेकर खड़ा है। हमें उसका डर मालूम होता है, हम अपनी तलवार मजबूती से पकड़ते हैं, तो वह आईनेवाली तस्वीर भी वैसा ही करती है। हमें यह पहचानना है कि सामने जो दीख रहा है, वह हमारा ही प्रतिबिम्ब है। अगर हिन्दुस्तान देश कम-से-कम सेना रखने की हिम्मत करेगा, तो हम समझते हैं कि वह सारी दुनिया में नैतिक शक्ति प्रकट करेगा।

सारांश, जब तक हम दुनियाभर के सब लोग ये सारी सरकारें अपने सिर पर उठाये रहेंगे, तब तक यह काम न बनेगा। क्योंकि आज चन्द लोग समझते हैं कि हम करोड़ों लोगों के लिए जिम्मेवार हैं और वे करोड़ों लोग भी समझते हैं कि ये लोग ही हमारी रक्षा करते हैं। इसीलिए उनके चित्त सदा भयभीत रहते हैं। जहाँ चित्त भयभीत होता है, वहाँ सारा दारोमदार सेना पर आ जाता है और सेना पर जितना भार रखा जाता है, उतना भय बढ़ता है।

मानव को स्वजाति का भय

दुनिया में ऐसा कोई प्राणी नहीं, जिसे अपनी ही जाति के डर से संहारक शस्त्र बनाने पड़े हों। फफुंदिया एक छोटा-सा जीव है, पर वे मिल-जुलकर काम कर बड़े-बड़े मकान बनाती हैं। उसे स्वजाति का भय नहीं मालूम होता है। जंगल का एकआध हिरन कभी दूसरे हिरन के साथ लड़ लेता है। पर एक हिरन की जाति दूसरी हिरन की जाति से डर रही हो और उससे बचने के लिए शस्त्रास्त्र बना रही हो, ऐसा कहीं नहीं दीखता। किसी जमाने में दुनिया में जंगल बहुत थे। इसलिए मनुष्य को जंगली जानवरों का डर था। उनका मुकाबला करने के लिए मानव ने बाणों और तलवार का उपयोग किया। आखिर वह सब सफल हुआ। आज तो वे बेचारे प्राणी मनुष्य की दया से ही जंगलों में सुरक्षित रखे जाते हैं। फिर भी आज मानव मानव के ही डर से बड़े-बड़े भयानक शस्त्रास्त्र बना रहा है। यह एक अजीब-सी बात है।

शिक्षित देश भी भयभीत

किसी भी देश के किसान दूसरे किसी देश के किसानों पर हमला करने के लिए जाते नहीं दीखते। वे जमीन की तलाश में दूसरे देशों में जाते हैं, पर यह कभी नहीं होता कि किसानों ने उठकर दूसरे देश पर हमला किया हो। फिर पाकिस्तान का हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तान का पाकिस्तान को क्या भय है? जापान का चीन को और चीन का जापान को भय क्या है? भय है, वहाँ के नेताओं को दूसरे देश के नेताओं का। इस देश के महत्त्वाकांक्षी लोगों को उस देश के महत्त्वाकांक्षी लोगों का भय है और वे अपनी-अपनी जनता को अपना भय सिखाते हैं। फिर जनता भी कहती है कि हाँ, हमारी रक्षा करनी चाहिए। कुल दुनिया में एक ऐसा भ्रम पैदा किया गया है, जिसके कारण लोग लाचार होकर बैठे हैं। केवल तालीम से, जिसे हम पढ़ना-लिखना कहते हैं, यह बीमारी हट नहीं सकती। हिन्दुस्तान अशिक्षित देश है, पर जापान, जर्मनी, इंग्लैंड तो शिक्षित देश है। फिर भी वहाँ की जनता में पूरा भय छाया हुआ है।

सरकार के कारण हम असुरक्षित

लोकशाही का सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चन्द लोगों पर है। उसमें लोग अपने हाथ में अपना जीवन नहीं रखते। उसमें कुछ लोगों के हाथ में सत्ता दी जाती है और सभी आशा रखते हैं कि सरकार हमारी रक्षा करेगी। इसमें लोकमत का कोई सवाल नहीं, मुख्य व्यक्ति की अक्ल के अनुसार ही काम चलता है। यह बहुत ही शोचनीय बात है। आज कांग्रेस की सरकार चलती है, कभी दूसरी भी चलेगी। दूसरे देशों में दूसरी सरकारें चलती हैं। हमें इन सरकारों में कोई दिलचस्पी नहीं। हमें किसी खास सरकार के खिलाफ नहीं, कुल सरकारों के खिलाफ कहना है। हम मानते हैं कि जब तक हम यह सरकाररूपी सत्ता अपने सिर पर उठाये रहेंगे और उससे खुद को सुरक्षित मानते रहेंगे, तब तक हम अत्यन्त असुरक्षित हैं।

अच्छे राज्य का डर

पाकिस्तान ने अमेरिका से शस्त्र-संधि कर ली। उस समय पं० नेहरू ने देश को सँभाल लिया और कहा कि "इससे हिन्दुस्तान भयभीत न होगा।" लेकिन अगर वे कहते कि यह भय करने की बात है, सबको इसी वक्त सेना में भर्ती होना चाहिए, तो कुल हिन्दुस्तान को दूसरा रुख मिलता। लेकिन हमें यह भी अच्छा नहीं लगता कि किसी एक मनुष्य की अक्ल के कारण देश सँभलता रहे। हमें दुर्जन राज्य-कर्ता के बुरे राज्य से उतना दुःख नहीं, जितना सज्जन राज्यकर्ता के अच्छे राज्य से होता है। हम अच्छे राज्यकर्ताओं से ज्यादा डरते हैं, क्योंकि जहाँ अच्छे राज्य चलते हैं, वहाँ लोगों को शासन में से मुक्त होने की बात नहीं सूझती। किन्तु आज अच्छा राज्य है, तो कल खराब भी राज्य आ सकता है। इसलिए जब तक लोग अपनी ताकत से, स्वावलंबन से उससे मुक्ति नहीं पाते, तब तक यह बला न टलेगी।

आत्मावलंबन

इसीलिए ग्रामदान में सरकार और बाहर की भी मदद मिलती है, तो हम उसे लेते जरूर हैं, पर चाहते यही हैं कि ग्राम-दान के लोग अपनी आत्मा का बल बढ़ायें। आत्मबल की तालीम हरएक लड़के को मिले। जब तक हम एक देह में बँधे रहेंगे, तब तक आत्मबल न बढ़ेगा, ग्रामदान से आत्मज्ञान बढ़ना चाहिए। मैं यह छोटी-सी देह नहीं, सिर्फ ये २-४ लड़के ही मेरे लड़के नहीं हैं। कुल गाँव और दुनिया मेरा रूप है। जितने लड़के हैं, सब मेरे लड़के हैं, सब भाई मेरे भाई हैं, ऐसा व्यापक आत्मज्ञान होना चाहिए। जब तक संकुचित देहबुद्धि रहेगी, तब तक हम डरते रहेंगे। लोगों को यह शिक्षण मिलना चाहिए कि हम इस देह से भिन्न हैं। ग्रामदान से लोगों को यह तालीम मिलती है। ग्रामदान देनेवाले लोग समझते हैं कि मालकियत हमारी नहीं, परमेश्वर की है। जमीन, हवा, पानी आदि जो शक्तियाँ परमेश्वर ने हमें दी हैं, वे सिर्फ हमारे लिए नहीं, सबके लिए हैं। हम अपनी शक्तियाँ समाज को समर्पण करते हैं, इसीलिए हम ग्राम की कीमत करते हैं। आप लोगों को यह सब विचार अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए।

हमने ग्रामदान किया, अब हमें क्या मिलेगा, यह मत सोचो। बल्कि यही सोचो कि हमने ग्रामदान किया, अब हम क्या करेंगे। करनेवाले हम ही हैं; जैसा चाहे कर सकेंगे। परमेश्वर की सृष्टि में कर्म का फल मिलकर रहता है। अगर हम बबूल का बीज बोते हैं, तो हमें आम न मिलेगा और आम की गुठली बोते हैं, तो बबूल न मिलेगा। यह ईश्वर की सृष्टि है। इसलिए हम अच्छा काम करेंगे और गाँव को अच्छा बनायेंगे।

हमने ग्रामदान दिया, तो अब बाहर के लोग हमारे लिए क्या करते हैं, ऐसा मत सोचो। आपके लिए दूसरों को क्या करना है? आपके लिए तो आपको ही करना है। आपका देखकर फिर दूसरे गाँव भी वैसा ही करेंगे। क्या पाँच लाख गाँवों में ग्रामदान होगा, तो सब-के-सब गाँव सरकार से मदद माँगेंगे? सरकार के पास कौन-सी चीज है, जो आपके पास नहीं है? एक-एक गाँव की अपेक्षा सरकार के पास जरूर ज्यादा शक्ति है। पर पाँच लाख गाँवों के पास जो शक्ति है, उससे ज्यादा शक्ति सरकार के पास नहीं है। ग्रामदान होंगे, तो पाँच लाख गाँवों में होंगे। क्या आप समझते हैं कि भगवान् ने आपको ही अक्ल दी है, दूसरों को नहीं, इसलिए ग्रामदान की बात आपको ही सूझेगी, दूसरों को नहीं? यह बात तो पाँच लाख गाँवों को सूझेगी। इसलिए यह समझ लें कि ग्रामदान 'आत्मावलंबन' ही है।

पेरियुर (मदुरा)
२४-१२-'५६

सज्जनों की राय और दंड : ३० :

[आसपास के गाँवों के मुखिया और कल्लुपट्टी-आश्रम में ग्राम-सेवक की ट्रेनिंग पानेवाले विद्यार्थियों के बीच दिया गया प्रवचन ।]

'सर्वोदय' शब्द छोड़ने में गलती

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सबसे पहले करने की चीज तालीम देकर सेवकों का निर्माण करना है। उसके पूर्व सेवकों का मुख्य कार्य स्वराज्य प्राप्त करना और बाहरी हुकूमत दूर करना ही था। उसके लिए बहुत ज्यादा तालीम की जरूरत न थी, हृदय में भावना भर जाना ही पर्याप्त था। किन्तु स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोगों के सामने 'सर्वोदय' का मंदिर बनाने का विशाल कार्यक्रम आया।

'सर्वोदय' शब्द बहुत से लोग मान्य करते हैं। फिर भी उसे यह कहकर टालने की भी कोशिश होती है कि यह उच्च शब्द है, शायद उतना हम न कर पायें, इसलिए 'समाजवादी समाज-रचना' शब्द अच्छा रहेगा। लेकिन वह ऐसा गोलमटोल शब्द है कि उसके पचासों अर्थ होते हैं। उसका प्रयोग करना और न करना, दोनों बराबर है। हिन्दुस्तान के पूँजीवादी भी कह रहे हैं कि हमें 'समाजवादी समाज-रचना' मान्य है। इसलिए अब उस शब्द से ज्यादा हिन्दुस्तान का कोई बहुत उद्धार होगा, ऐसी बात नहीं। समाजवादी समाज-रचना में व्यक्ति और समाज के बीच विरोध माना जाता है। आजकल यूरोप में समाजवाद 'उत्पादन बढ़ाओ और लोगों को सुखी करो' में ही समाप्त हो जाता है। किन्तु केवल चंद धंधों के सरकारी बना लेने और उस पर सरकार की सत्ता लागू करनेभर से 'आम जनता की शक्ति' निर्माण नहीं होती। उत्पादन बढ़ाने और लोगों को आज से अधिक समृद्ध बनाने की कोशिश से भी जन-शक्ति का निर्माण नहीं होता। पूँजीवादी समाज-रचना में भी उत्पादन बढ़ाने का और सबको सुखी करने का विचार मान्य किया जाता है। अवश्य ही वह 'साम्ययोग' नहीं मानता, पर 'सब लोग सुखी हों' यह वे मान्य करते ही हैं। याने सबके समान सुख की बात वे कबूल नहीं करते, पर सबके सुखी होने की बात वे भी मान्य करते ही हैं।

इसीलिए 'वेलफेअर स्टेट' (कल्याणकारी राज्य) कोई जन-शक्ति बढ़ानेवाली चीज नहीं। मैं मानता हूँ कि श्रीहर्ष और कृष्णदेव राय का राज्य 'वेलफेअर स्टेट' था, लेकिन इनके राज्य में जनता की कोई ताकत बढ़ी नहीं। अकबर गया, जहाँगीर आया। औरंगजेब आया, तो लोगों की हालत बुरी होने लगी! अकबर के राज्य में अच्छी हालत थी। अगर जनता में शक्ति निर्माण हुई होती, तो फिर सदा के लिए लोगों की हालत अच्छी हो जाती। न तो वह पुराने राजाओं से हो सका और न पूँजीवादी राज्य-व्यवस्था या आजकल की समाजवादी समाज-रचना की यूरोपीय बात से होगा। आधुनिक लेखक इसे कबूल करते हैं, इसलिए 'वेलफेअर स्टेट' या 'समाजवादी समाज-रचना' कहने से हम कोई बहुत ज्यादा प्रकाश डालते हैं, सो नहीं! अतएव 'सर्वोदय' नाम से जो सुंदर शब्द अपनी सभ्यता में से निर्माण हुआ है, उसे कबूल करना चाहिए। उस शब्द को एक सुंदर शब्द के तौर पर मान्य करके भी 'शायद वैसा हम न कर सकें' इस भय या विनम्रता से उसे दूर रखना भी हम गलत समझते हैं।

लक्ष्यबिंदु का भान और स्थानबिंदु का ज्ञान

हमारा धर्म कहता है कि हम मुक्ति के लिए कोशिश कर रहे हैं, हम मुक्तिवादी हैं। हम मोक्ष से तो बहुत दूर हैं, लेकिन जहाँ ध्येय की बात आती है, वहाँ हम मोक्ष से कम की बात नहीं करते। सभी धर्मवाले 'सालवेशन' (मुक्ति) शब्द का उपयोग करते हैं, पर इस शब्द से हम बहुत ही दूर हैं। फिर भी उस शब्द के बिना हमें समाधान नहीं होता। आज हम जहाँ हैं, वह तो हमारा स्थानबिन्दु है। पर जहाँ हमें जाना है, वह तो अंतिम बिन्दु है। वही हमारा लक्ष्य-बिंदु है। दोनों बिन्दु निश्चित हैं। जब दोनों बिन्दुनिश्चित होते हैं, तभी रास्ता बनता है। मनुष्य को इसका स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि आज हम कहाँ हैं और हमारी हालत क्या है! हमें इसका भान होना चाहिए कि अन्त में कहाँ जाना है या हमारा क्या लक्ष्य है? अगर हम कोशिश करें, तो आज की हालत का हमें ज्ञान हो सकता है। पर अन्तिम लक्ष्य की कितनी भी कोशिश करें, तो भी उसका पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। फिर भी उसका भान होना ही चाहिए। किसी भी धर्मवाले

से पूछें कि "क्यों भाई, कहाँ जा रहे हो ? तुम्हें कहाँ जाना है ? क्या लक्ष्य है ?" तो जवाब मिलता है "परमात्म-दर्शन या मोक्ष।" लेकिन उससे 'मोक्ष' की व्याख्या करने को कहें, तो वह नहीं कर सकता। फिर भी उसके सामने भावना स्पष्ट है। मोक्ष क्या नहीं है, यह वह बता सकेगा, लेकिन वह क्या है, यह नहीं बता सकता। वह कहेगा : हम अनन्त विकारों से भरे हैं। वे विकार वहाँ नहीं हैं, जहाँ हमें जाना है। इसके लिए 'ईश्वर-दर्शन', 'मुक्ति', 'सालवेशन', 'परफेक्शन' (पूर्णता), ये सारे अलग-अलग शब्द हम इस्तेमाल करते हैं, पर यह चीज क्या है, यह नहीं बता पाते। वह क्या नहीं है, यह हम बता सकते हैं और वह है, यह हम जानते हैं। इसीको कहते हैं 'भान'।

शिव और शक्ति अलग न हों

हमें सर्वोदय का स्पष्ट भान होना चाहिए। हम इस शब्द को कभी न छोड़ें ! जो इसे छोड़ते हैं, वे बड़ा भारी रत्न खोते हैं। परिणामस्वरूप आज देश के सेवकों में दुविधा हो रही है। यहाँ एक अजीब-सा दृश्य दीख रहा है। एक ओर कुल रचनात्मक कार्यकर्ता इकट्ठे हैं, चाहे उनमें से कुछ कांग्रेस में हैं, कुछ प्रजा-समाजवादी दल में, कुछ और कहीं, तो कुछ कहीं भी नहीं हैं। लेकिन उन सबका दिल 'सर्वोदय' शब्द से जुड़ा है। दूसरे ऐसे लोग हैं, जो किसी-न-किसी कारण इस शब्द को टालते हैं। इसी कारण देश की शक्ति नहीं बन पाती।

'तिरुवाचकम्' में लिखा है कि "शक्ति तेरा (शिव का) रूप है, तूही शक्ति है।" इस तरह जब शक्ति और शिव एक हो जाते हैं, तभी भक्तों की सुरक्षा होती है। सर्वोदय 'शिवम्' है और जिसे आप 'राज्यसत्ता' कहते हैं, वह है, 'शक्ति'। जब शिवम् से वह शक्ति अलग पड़ जाती है, तब वह क्षीण होती है और शक्ति से शिव अलग पड़ जाता है, तो वह वैराग्यवान् है ही। उसका वैराग्य कोई छीन नहीं सकता। पर उसके साथ शक्ति जुड़ जाय, तो वैभव प्रकट होगा।

किन्तु आज लोगों ने समाज-रचना करने की सत्ता जिन्हें सौंपी है, वे लोग और समाज सेवा की तीव्र भावना रखनेवाले लोग, दोनों के बीच भेद आ गया है। इस तरह इस देश में दो विभाग पड़ गये हैं। हमारी कोशिश है कि

ये दोनों एक हो जायँ। उधर से भी कोशिश हो रही है कि दोनों एक हो जायँ। वे कोशिश करते हैं कि सभी हमारे पक्ष में आयें। इस तरह हम एक-दूसरे को खाने बैठे हैं। हमें विश्वास है कि हम ही उन्हें खा लेंगे, क्योंकि शक्ति जड़ वस्तु है और 'शिवम्' चेतन है। वह जहाँ जाता है, वहाँ हृदय का स्पर्श होता है और वह जहाँ जाती है, वहाँ लाठी जाती है। एक ओर डंडा है। डंडे से भय पैदा कर सकते हैं। इससे ज्यादा वह कुछ नहीं कर सकता। डंडे से कभी नियमन नहीं हो सकता। इसीलिए शास्त्रकारों ने यति, संन्यासियों के हाथ में ही दंड दिया—ज्ञानियों के हाथ में दंड दिया। आज तो पुलिस के हाथ में दंड है—जिन्हें कम-से-कम अक्ल है, उनके हाथ में डंडा है।

कानून से ग्रामदान नहीं हो सकता

हिन्दुस्तान में ऐसा कोई कानून बन नहीं सकता कि ग्रामदान देना ही चाहिए, सबको जमीन दी जायगी, सबको स्वामित्व में से मुक्त किया जायगा। बहुत हुआ, तो सरकार ऋण माँगेगी, उसे दान माँगने की हिम्मत ही नहीं। वह ताकत उसने खो दी और दंड को ही सामने रखा है। दंड-शक्ति के पास 'दान' नामक वस्तु है ही नहीं। यह सर्वोदय की ही शक्ति है। सर्वोदय दान माँगता है। एक मनुष्य जमीन देता है, तो उसे हम किसी भूमिहीन को दे देते हैं। खेत में बोने के लिए उसे बीज चाहिए, तो हम उससे पूछते हैं कि "जमीन तो दी, लेकिन बीज न दोगे?" वह कहता है : "हाँ, थोड़ा दूँगा।" दान में यह ताकत है। मान लीजिये, कानून से जमीन छीनी जायगी, तो क्या इस तरह बीज भी मिलेगा? आपकी कन्या कोई अपहरण कर ले और आप किसीको उसे प्रेम-पूर्वक समर्पित कर दें, दोनों में कोई फर्क है या नहीं? लोग हमें पूछते हैं कि "बाबा, यह दान की बात क्यों करते हो? कानून के जरिये काम क्यों नहीं करवाते?" यह वैसा ही पूछना हुआ कि "आप लड़के के बाप होकर किसीके घर जाकर प्रेम से कन्या क्यों माँगते हैं? छीन क्यों नहीं लेते? जल्दी कार्य हो जायगा!" पर क्या वह 'कल्याण' (विवाह) होगा? यह एक सीधी-सी बात है, फिर भी ऐसे सवाल पैदा होते हैं; क्योंकि शिव और शक्ति, दोनों अलग हो गये हैं। शिव

से शक्ति अलग पड़ जाती है, तो वह राक्षसी बन जाती है और उससे जुड़ी रहती है, तो दैवी बनती है। अब जब कि ग्रामदान हो गये हैं और सरकार मदद दे रही है, तो शोभादायक बात है। किन्तु बड़ी बात तो यह है कि लोक-हृदय में प्रेम पैदा हो और वे प्रेम से व्यक्तिगत मालकियत समाज को समर्पण करें।

जमीन के साथ ज्ञान भी दीजिये

इस कलिकाल में आपकी आँखों के सामने मदुरा जिले में २५-५० गाँवों ने मालकियत का समर्पण कर दिया है। यहाँ कुछ गाँवों के मुखिया भी आये हैं। हम उनसे पूछना चाहते हैं कि जिन लोगों ने ग्रामदान किया, उन्होंने मूर्खता का काम किया या अक्ल का ? इस पर आप लोग सोचिये। गाँव-गाँव के मुखिया अगर सचमुच मुखिया बनना चाहते हैं, तो उन्हें क्या करना चाहिए, इसे समझिये! 'मुखिया' याने मुख! शरीर में जैसे मुख है, वैसे ही गाँव में मुखिया हैं। मुँह में लड्डू डाल दिया जाय और वह ऐसा स्वार्थी बन जाय कि चबाकर पेट में धकेले ही नहीं, तो मुँह फूल जायगा, जबान ही न खुलेगी, मुँह बिलकुल बेकार हो जायगा। अगर वह जरा उदार बनकर लड्डू को अच्छी तरह पीसकर पेट में धकेल दे और खाली हो जाय, तो वह मुखिया बन जाता है। रामायण में तुलसीदास सुना रहे हैं कि 'मुखिया मुख सो चाहिए।' मुखिया सिर्फ मेहनत करने का अधिकारी है।

लोग पूछते हैं कि "आप तो भूमिहीनों को जमीन दिलाना चाहते हैं। किन्तु वे तो मूर्ख हैं, उन्हें काश्त का कोई ज्ञान नहीं। क्या ऐसे मूर्खों के हाथ जमीन देंगे ?" बात ठीक है। वैसा-का-वैसा पूरा लड्डू अगर पेट में धकेल देंगे, तो पेट उसे हजम न कर सकेगा। इसलिए मुखिया लोगों, ज्ञानी लोगों का ही काम है कि जिनके पास जमीन पहुँचायें, उनके पास अक्ल भी पहुँचायी जाय। अगर हम यह न कर सकें और कहें कि "ये तो मूर्ख हैं, इन्हें जमीन कौन दे ?" तो उसका अर्थ होगा कि उन्हें भूमिहीन रखा और मूर्ख भी। उन्हें काम करने का मौका नहीं दिया और जिम्मेवारी भी नहीं डाली, इसलिए वे अज्ञानी रहे। जमीन तो उनके हाथ

में सौंपनी ही चाहिए, साथ ही हमारे पास जो ज्ञान है, उसे भी उनके पास पहुँचाना होगा। आपको कन्या उचित वर के हाथ में सौंपनी चाहिए। साथ ही अगर वह दरिद्र है, तो उसका निर्वाह, संसार अच्छी तरह चले, इसकी चिन्ता भी आपको करनी चाहिए। उसे कन्या सौंपनी चाहिए और साथ ही घर का मालिक भी बनाना चाहिए। उसे आपको पुत्रवत् मानना चाहिए। अंग्रेजी में दामाद को 'सन-इन-ला' याने 'क़ानून से पुत्र' कहते हैं। जो अधिकार पुत्र का होता है, वही दामाद का होता है।

कहने का मतलब यह है कि ग्रामदान में हम अपनी जमीन पर की मालकियत छोड़ते हैं, उसे गाँव की बनाते हैं, इसलिए गाँव के भूमिहीनों को जमीन मिलेगी और सब मिल-जुलकर काम करेंगे, तो अक्ल का बँटवारा भी होगा। फिर गाँव में कितने परिवार हैं, यह देखकर जमीन के अलग-अलग फार्म बनायेंगे या छोटे गाँव का एक ही फार्म बनायेंगे। परिवार में कितने मनुष्य हैं, यह देखकर जमीन बाँट देंगे या कुछ जमीन बाँटकर कुछ जमीन सामूहिक फार्म के लिए अलग रख लेंगे। ये सब तो बिलकुल गौण प्रश्न हैं। उस-उस गाँव की हालत देखकर ही गाँववाले इसे तय करेंगे। हमें बड़ा आश्चय होता है कि जगह-जगह यह चर्चा चलती है कि बँटवारा कैसे होगा? एकत्र रहेंगे या अलग? यह मामूली बात है। यह तो प्रयोग की बात है। जिस तरह लाभ होगा, उसी तरह किया जायगा। एक गाँव में एक तरीका चला, तो दूसरे गाँव में दूसरा भी चल सकता है। फिर अलग-अलग अनुभव आयगा और उनकी तुलना की जायगी और उसमें से एक चीज बनेगी। यह कोई बड़ी बात नहीं। मालकियत हमारी नहीं, व्यक्तिगत माल-कियत गलत है, यही बात बड़ी है।

शत्रुनाश का सर्वोत्तम शस्त्र प्रेम

आज हम ईसामसीह के जन्म-दिन पर बोल रहे हैं। उन्होंने कहा था कि "पड़ोसी पर वैसा ही प्रेम करो, जैसा अपने पर करते हो।" एक सादा-सा, छोटा-सा वाक्य है। अर्थ समझने में जरा भी कठिन नहीं। लेकिन दुनिया में चलता क्या है? सबसे ज्यादा प्रेम मुझे 'अपने' पर है। नम्बर '२' का प्रेम पति को अपनी

पत्नी पर या पत्नी को अपने पति पर ! नंबर '३' अपने मित्रों पर ! इस तरह करते-करते आखिर कुछ लोगों से प्रेम नहीं, नफरत भी पैदा होती है। यह तो एक बात है, लेकिन उससे भी बुरी बात है, भाइयों को भाइयों से मत्सर ! अड़ोसी-पड़ोसी के आपसी झगड़े, यह दूसरी बदतर बात ! एक तो कमानी-सा चढ़ता-उतरता प्रम और दूसरे नजदीक-से-नजदीकवालों और दूरवालों से भी झगड़े ! आज कुल दुनिया में यही चल रहा है। किन्तु वह शख्स, जो प्रेममूर्ति था, कहता है कि जैसा अपने पर प्रेम करते हो, वैसा ही अपने पड़ोसी पर करो। ज्यादातर हमारा मुकाबला पड़ोसी से होता है, इसीलिए उसने पड़ोसी का नाम लिया। दुश्मन का सवाल निकला, तो उसने कहा : "लव्ह दाइ एनिमि" (दुश्मन पर प्यार करो)। लोग कहते हैं कि शत्रु पर प्रेम करना अजीब-सी बात है। पर इसमें कोई आश्चर्य नहीं, यही विज्ञान है। हमें सोचना चाहिए कि वह दुश्मन मुझसे द्वेष करता है, आग लगा रहा है। उसके पास अग्नि है, तो वह मुझे बुझानी है। मैं अगर दूसरी आग लगाता हूँ, तो वह और बढ़ जायगी और अगर मैं उस पर पानी डालता हूँ, तो वह खतम हो जायगी। यही विज्ञान का नियम है। ईसा ने शत्रु का विनाश करने का सर्वोत्तम उपाय बताया है। आज तक इससे बढ़कर दूसरा कोई शस्त्र नहीं निकला। आजकल ये लोग एटम बम आदि बनाते हैं, तो वे शत्रुनाश नहीं, सर्वनाश करते हैं। वे शत्रुत्व बढ़ा सकते हैं, भय पैदा कर सकते हैं, पर प्रेम नहीं। इसलिए शत्रुनाश के लिए वे बिलकुल बेकार औजार हैं। शत्रुनाश का सबसे श्रेष्ठ साधन प्रेम ही हो सकता है और यही ईसा ने बताया। मजे की बात यह कि सिर्फ 'प्रेम करो' इतना कहने से उनका समाधान नहीं हुआ, 'अपने समान प्रेम करो' यह कहा।

ग्रामदानी ज्ञानियों की राह पर

पड़ोसी पर अपने समान प्रेम क्यों करना चाहिए, यह आपको वेदांत ने समझाया है। शंकराचार्य और रामानुज उसका कारण बतलाते हैं। जितना प्यार हम अपने बायें कान पर करते हैं, उतना ही दायें कान पर भी। जितना प्यार हम अपनी दायीं आँख पर करते हैं, उतना ही बायीं आँख पर भी। उसमें हम दायें-बायें

का भेद नहीं करते। दायीं आँख बायीं आँख से बिलकुल अलग नहीं। वह हमसे जुड़ी चीज है। इसी तरह समाज में अलग-अलग व्यक्ति दीखते हैं, लेकिन वे अलग-अलग नहीं, सब मिलकर एक चीज हैं। जैसे एक ही वृक्ष की अलग-अलग शाखाएँ और पल्लव होते हैं, वैसी ही ये सारी शाखाएँ और पल्लव हैं। यह बात हमें वेदांत सिखाता है। सर्वोदय का मूल आधार यही वेदांत है। 'मैं' और 'मेरा' खतम होना चाहिए। यही वेदांत है, यही सर्वोदय है और यही ग्रामदानी गाँवों के लोग कर रहे हैं। पूछा जा सकता है कि तब क्या वे वेदान्त के ज्ञानी बन गये? नहीं, वे वेदांत के ज्ञानी नहीं बने। वेदांत के ज्ञानी तो दूसरे हैं। ये तो उन ज्ञानियों के पीछे चलनेवाले बन गये। रेडियो की शक्ति की जिसने खोज की, वह तो एक ज्ञानी पुरुष था। अब रेडियो का उपयोग करनेवाले को इतने ज्ञान की जरूरत नहीं। वेदान्त तो हमें शंकर और रामानुज ने सिखाया तथा प्रेम का सिद्धान्त ईसा ने। उनका ज्ञान हमें नहीं (नसीब में होगा तो कभी आगे आयेगा। उसकी तीव्र वासना होगी, तो वह जरूर प्राप्त होगा); किन्तु जो ज्ञान उन्होंने हमें दिया, उसका अमल करने के लिए ज्यादा ज्ञान की क्या जरूरत है? ग्रामदान देनेवाले छोटे-छोटे लोग हैं, लेकिन वे शंकर, रामानुज और ईसामसीह की सिखावन पर अमल कर रहे हैं। इससे उन्हें अच्छा अनुभव आयेगा। उनका प्रेम बढ़ेगा। उन्होंने एक प्रेम प्रकट किया। अब उसके अनुभव से देश में एक ज्योति प्रकट होगी। फिर सारा देश बदल जायगा और जहाँ देश बदला, वहाँ दुनिया बदली ही!

शान्ति-शक्ति की जीत

हम चाहते हैं कि आप इस विचार का अच्छा अध्ययन करें। जो यह कार्य हो रहा है, वह छोटा कार्य नहीं। शस्त्र-शक्ति से किसी देश को पराजित कर उस पर काबू पाना आसान है। वह कोई बड़ी घटना नहीं। किन्तु ग्रामदानवाली घटना बड़ी घटना है। यह शांति-शक्ति की जीत है। इसकी बराबरी युद्ध में प्राप्त होनेवाले विजय से नहीं हो सकती। आज की लड़ाई ऐसी है कि जो जीतेगा, सो हारेगा और जो हारेगा, वह तो खतम ही होगा। आज ऐसे शस्त्र

निर्माण हुए हैं कि उनसे जीतने और हारनेवाले, दोनों ही खतम हो जायँगे। इसमें किसीकी जीत और किसीकी हार का सवाल ही न रहेगा। हमला करने के लिए आपके पास आने की जरूरत ही नहीं, यहीं से बैठे-बैठे ठीक कोण जमाया, तो यहाँ बम गिरेगा। अब ये शस्त्र विभिन्न देशों के हाथ में आ गये हैं, अतः विजय प्राप्त करने के लिए ये औजार बिलकुल बेकाबू हो गये हैं।

इस काम के लिए कानून अधिक मदद दे सकता था अगर, जैसा कि मैंने कहा, कानून के पीछे दंड-शक्ति का जोर न होता। बिना शस्त्रास्त्र के कानून धर्मशास्त्र के कानून माने जायँगे। मैं ऐसा एक कानून आपके सामने रखता हूँ, जिस पर आप बिना किसी दंड के अमल कर रहे हैं। 'दोपहर का खाना बिना स्नान किये नहीं खाना चाहिए।' कानून की सब किताबों को देख डालिये, कहीं भी यह कानून लिखा नहीं है और उस पर कोई अमल न करे, तो सरकार की तरफ से भी कोई दंड नहीं है। फिर भी इतने सब लोग बैठे हैं, लेकिन इनमें से कोई भी ऐसा न होगा, जो बिना स्नान किये दोपहर में खाता हो। कोई शख्स बीमार पड़ा हो या कोई खास दूसरा कारण हो, तो अलग बात है, पर बाकी सभी लोग श्रीमान्-गरीब, पढ़े-लिखे या अपढ़ इस नियम का पालन करते हैं। आखिर यह नियम आया कहाँ से? उसका अमल क्यों होता है? इसके दो कारण हैं। एक तो वह कल्याणकारी नियम है; दूसरे, उसके पीछे कोई दंड लगा नहीं है। ऐसी कितनी ही बातें हमारे जीवन में बिना दंड के चल रही हैं। इन्हींमें से दंड-शक्ति से बिलकुल अलग रहकर समाज में क्रांति लाने का एक काम आपकी आँखों के सामने हो रहा है।

हजारों ग्रामदान होंगे

हम आशा करते हैं कि गाँव के मुखिया लोग इस पर सोचेंगे। यहाँ ५० ग्रामदान हुए हैं। ये सैकड़ों और हजारों क्यों न हों, इसका हमें कोई कारण नहीं दीखता। ५० गाँवों के लोग भोजन कर सकते हैं, तो क्या पाँच लाख गाँवों के लोग भोजन नहीं कर सकते? आखिर यह अच्छी चीज है न? मीठी लगती है या कड़वी? अगर वह मीठी लगती है, तो कौन इसे चीज स्वीकार न

करेगा ? इसलिए ५-५० ग्रामदानों से कार्य समाप्त नहीं होता। हरएक गाँव का ग्रामदान हो सकता है और होना चाहिए। आप सब लोग इस पर सोचें, इसका अभ्यास करें, अपनी मालकियत छोड़ें और सबकी मालकियत बना दें और फिर लोगों के पास माँगने जायँ। फिर लोग देते हैं या नहीं, देखा जायगा। माँगनेवाला प्रेमी हो, जानकार हो और त्यागी हो। इन तीन गुणों से युक्त होकर जाइये और माँगिये, तो फिर कहीं भी जायेंगे और जो भी माँगेंगे, सो मिलेगा।

कल्लुपट्टी (मदुरा)
२५-१२-'५६

भक्ति-मार्ग की सीढ़ियाँ : ३१ :

अभी आपने एक सुन्दर भजन सुना। उसमें भक्त ने कहा है कि "दुनिया में बहुत से ज्ञान हैं, उन्हें मैं नहीं जानता।" कहते हैं, कुल मिलाकर १४ विद्याएँ और ६४ कलाएँ दुनिया में कुछ-न-कुछ काम में आती हैं। किन्तु सबसे बड़ी कला और विद्या तो इनसे भिन्न ही है। अगर वह विद्या और कला रहती है, तो दूसरी कलाओं और विद्याओं का उपयोग होता है; नहीं तो सारी विद्याएँ तथा कलाएँ निकम्मी हो जाती हैं। देह में आँख, नाक, हाथ, पाँव आदि कई प्रकार की शक्तियाँ हैं। पर सबसे बड़ी चीज है प्राण! अगर प्राण हाजिर है, तो आँख आँख का काम करेगी, पाँव पाँव का और हाथ हाथ का। अगर प्राण न रहा, तो ये सारे अंग बेकार हो जायँगे। इसी तरह अगर सबसे बड़ी विद्या न हो और दूसरी विद्याएँ हों, तो उनसे हम सुखी नहीं हो सकते।

भक्ति के विना लक्ष्मी बढ़ाने में कल्याण नहीं

आजकल सरकार की पञ्चवर्षीय योजना चलती है, जिसमें कहा जाता है कि अगले पाँच साल में हम इतनी दौलत बढ़ायेंगे। इतने नये उद्योग-धंधे खड़े करेंगे, इतने कारखाने बनायेंगे, नदियों पर इतने-इतने पुल बँधवायेंगे,

इतनी-इतनी लम्बी नयी-नयी सड़कें और रेलवे लाइनें बनवायेंगे। इतने-इतने गाँवों में हम बिजली लायेंगे, जहाँ रात को प्रकाश-ही-प्रकाश फैल जायगा। एक गाँव की कहानी सुनाता हूँ। उस गाँव में होकर हम आये हैं। वह गाँव सरकार के 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में आया है। कम्युनिटी प्रोजेक्ट से उस गाँव की दौलत कुछ बढ़ गयी है। किन्तु जब से दौलत बढ़ी, तभी से गाँव में द्वेष और झगड़े शुरू हो गये, यह बात गाँववालों ने हमसे कही। क्योंकि पैसा तो आया, पर अन्दर की चीज नहीं आयी। अगर अन्दर की विद्या होती, तो बाहर की सम्पत्ति से भी लाभ होता। अन्दर की विद्या होती और बाहर की सम्पत्ति न होती, तो भी मनुष्य सुखी रहता। यह अन्दर की विद्या क्या है? उसीको हमारे महापुरुषों ने 'भक्ति' नाम दिया है। भक्ति अगर होती है, तो लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति काम में आती हैं, पर भक्ति के बिना ये तीनों होने पर भी कल्याण नहीं होता।

भक्ति का अर्थ क्या?

भक्ति क्या चीज है? मन्दिर में मूर्ति खड़ी कर दें और लोग उसका दर्शन करें, पूजा करें, उसका नाम लें, तो क्या भक्ति पूरी हो जायगी? नहीं, वह तो भक्ति का नाटक होगा। वास्तव में भक्ति सीखने के लिए वह नाटक है। 'क, ख, ग' सीख लेनेभर से विद्वान् नहीं बन सकते। इसी तरह मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ आदि करना 'ओनामा' है। मन्दिर में हम भगवान् का प्रसाद प्राप्त करते हैं, तो हमारे हृदय में कुछ भावना निर्माण होती है, यही उसका उपयोग है। किन्तु उस भावना का बल प्राप्त कर जब हमारे जीवन में सब प्राणियों के लिए प्रेम, करुणा, दया पैदा होती है, तभी वह 'भक्ति' है। अगर हम यह समझें कि चिदम्बरम् मन्दिर है, उसमें मूर्ति है और वही भगवान् हैं, तो हम कुछ नहीं समझे। हमें पहचानना चाहिए कि चिदम्बरम् तो यहाँ मनुष्य के हृदय में है। वहाँ एक ज्योति है, वहाँ एक मूर्ति है, उसी पर प्यार होना चाहिए, उसके लिए पूज्यभाव होना चाहिए। इस तरह समाज में परस्पर प्रेम रखने की विद्या हो, तो हमें भक्ति प्राप्त है, ऐसा कह सकते हैं। ऐसी भक्ति जहाँ होती है, वहाँ बाकी सभी शक्तियाँ मददगार हो जाती हैं।

'मैं, मेरा' मिटने से आरम्भ

पंचवर्षीय योजना में भक्ति की बात नहीं है। वह सरकार कर ही नहीं सकती। राजनैतिक पक्ष भी वह काम नहीं कर सकता। वह सब लोगों को तोड़ने का काम करेगा, तो भक्ति आप सब लोगों को जोड़ने, एकत्र करने का काम करती है। दो मनुष्य चुनाव में खड़े हो गये। एक कहता है, "दूसरे मनुष्य को वोट देंगे, तो वह आपको नरक में ले जायगा। मुझे चुनोगे, तो मैं स्वर्ग में ले जाऊँगा।" दूसरा भी ऐसा ही कहेगा। कुछ लोग इसे वोट देंगे, तो कुछ लोग उसे। इससे आपस-आपस में झगड़े पैदा हो जायँगे। इस तरह गाँव-गाँव अलग करने का काम किया जायगा। याने यह भक्ति की प्रक्रिया से बिलकुल उल्टी प्रक्रिया हो गयी। भक्ति कहती है कि तुम सब लोग एक हो। तुम सबके हृदय में ज्योति है। तुम सभी मिलकर काम करो। अपनी मालकियत मत रखो। जितना तुम्हारे पास है, सारा समाज का समझो। समाज को सब अर्पण कर दो और उसकी सेवा में लग जाओ। उससे प्रसादरूप जो मिले, उसीका भक्षण करो। यह मेरा खेत, यह मेरा घर, यह मेरी संपत्ति, ये मेरे बाल-बच्चे, इस तरह छोटी-छोटी बातें करना समाज के टुकड़े करना है। भक्ति हमेशा इन सब पर प्रहार करती है। जाति, धर्म, जन्म—ये सब बातें गलत हैं। इनके अंदर फँसकर सभी चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। तुम इनमें से निकल जाओ।

पूछा जा सकता है कि जाति मिथ्या, मतभेद मिथ्या, जन्म-मृत्यु मिथ्या, मैं-मेरा मिथ्या, तो सत्य क्या है? मेरा नहीं, हमारा! पहले मेरा आयेगा, फिर हमारा और उसके बाद तेरा आयेगा। यही भक्ति है। यह मेरा गाँव नहीं, हमारा गाँव है। यह मेरा खेत नहीं, हमारा खेत है। प्रथम अपनी मालकियत मिटाओ और समाज की मालकियत बनाओ। मैं और मेरा निकाल दीजिये। हम और हमारे पर आओ। यही ग्रामदान है। आज हम किसीसे पूछते हैं कि तुम्हारे पास कितनी जमीन है, तो कोई कहता है, २०० एकड़, कोई ५०, कोई ५, तो कोई कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है। पर ग्रामदान के गाँव में सभी कहेंगे कि हमारी ४०० एकड़ जमीन है। सभी एकदम बड़े हो जायँगे। आज किसी माँ से

पूछा जाता है कि तुम्हारे कितने बच्चे हैं, तो "दो, तीन, चार", ऐसा छोटा जवाब मिलता है। पर ग्रामदान के गाँव की माँ से पूछा जाय, तो वह कहेगी, "मेरे दो सौ लड़के हैं, गाँव में जितने बच्चे हैं, वे सब मेरे हैं।" इस तरह पहले सब छोटे-छोटे थे, पर ग्रामदान के बाद सब बड़े हो गये। ग्रामदान होता है, तो पहले व्यक्तिगत मालकियत मिटती है। मैं और मेरा मिटता है और हम और हमारा शुरू होता है। यहीं से भक्ति-मार्ग शुरू हो जाता है।

फिर वह भक्ति-मार्ग आगे बढ़ता है और बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँचता है कि देह का सारा अभिमान छूट जाता है। जब शरीर, समाज और गाँव का भी अभिमान छूट जायगा, तब 'हमारा' भी न रहेगा, 'तेरा' (भगवान् का) ही रहेगा। वह 'हमारा' नहीं, 'तेरा' कहेगा। मेरा तो पहले ही कट गया, अब तो हमारा भी कट गया, अब तो तेरा ही आया। इसीका नाम है भक्ति की पूर्णता। हमारे पूर्वज तो इससे भी आगे गये थे। वे कहते थे, "तेरा भी नहीं, तू ही है।" आखिरी हद पर पहुँच गये, लेकिन इसका आरंभ 'मैं और मेरा' काटने से होता है। जब तक 'मैं-मेरा' नहीं कटता, तब तक 'हम-हमारा', 'तू और तेरा' या 'तू ही तू' नहीं आता। एक-एक के बाद एक-एक चढ़ने की सीढ़ियाँ हैं। हम चाहते हैं कि समाज एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता जाय। सादी-सी बात है। प्रथम सीढ़ी हमने शुरू कर दी है। अपना गाँव पूरा-का-पूरा ग्रामदान में दे दो। फिर उन गाँवों में जाति मिट जायगी, ऊँच-नीच-भेद मिट जायँगे, स्वार्थ के भेद मिट जायँगे, यह पक्ष मेरा और वह तेरा, यह मिट जायगा। फिर सारा गाँव मिलकर एक हो जायगा! कितनी ताकत बढ़ेगी! उसके बाद जो योजना करेंगे, वह सफल होगी। फिर गाँव में धंधे बढ़ायें, लक्ष्मी बढ़ायें, ताकत बढ़ायें, तो सभीको लाभ होगा।

तिरुमंगलम् (मदुरा)
२८-१२-'५६

प्रेम का प्रवाह बहने दो

: ३२ :

हमारा काम बहुत आसान है! लोगों से हम सिर्फ इतना ही कहते हैं कि प्रेम से रहो। यह कोई नयी बात नहीं, पुराने साहित्य में प्रेम की महिमा भरी पड़ी है। लेकिन हमने आपके सामने नयी बात, प्रेम करने का एक व्यावहारिक कार्यक्रम रखा है।

प्रेम सड़ने लगा

आज प्रेम नहीं, ऐसी बात नहीं; पर वह रुका हुआ है। पानी बहता है, तो स्वच्छ निर्मल रहता है; पर उसका बहना बंद हुआ, तो वह सड़ना शुरू हो जाता है। उसी तरह आज प्रेम का संचय होने लगा है। लोग यही कहते हैं कि मेरे बच्चे, मेरे भाई-बहन और मेरे माता-पिता! यहाँ तक कि पत्नी आने और बच्चे होने पर सारा प्रेम उन्हीं पर हो जाता है, माता-पिता से भी प्रेम हट जाता है। इस तरह प्रेम का क्षेत्र बिलकुल संकुचित हो जाता और उस संकुचित क्षेत्र में प्रेम इतना गहरा बन जाता है कि उसे आसक्ति का रूप आ जाता है। गधे को भी प्रेम है, पर उसका कुल-का-कुल प्रेम एक शरीर में भर गया है। वह उससे ज्यादा बाहर जाता ही नहीं, केवल शरीर के भोग में ही रह जाता है। जिनका प्रेम कुटुम्ब तक सीमित है, वे गधों से जरा आगे बढ़े हैं।

परमेश्वर ने प्रेम तो सारी दुनिया में रखा है, कोई भी जगह खाली नहीं, जहाँ प्रेम न हो। किन्तु प्राणियों का और मनुष्यों का प्रेम उन-उन शरीरों तक या चंद व्यक्तियों तक सीमित रहता है। बिना प्रेम के कोई प्राणी नहीं और बिना प्रेम के किसीको भी समाधान नहीं। लेकिन जहाँ वह प्रेम सीमित हो जाता है, वहाँ एक जगह आसक्ति घनीभूत हो जाती है। उसमें सिर्फ यही एक दोष नहीं आता, बल्कि दूसरों के लिए नफरत और द्वेष भी पैदा होने लगता है। मैंने ऐसी भी माता देखी है, जो अपने लड़के से पड़ोसी का लड़का सुन्दर देख मत्सर करती है। भगवान् ने मेरे लड़के को सुन्दर नहीं बनाया, पड़ोसी के लड़के को

बनाया, तो उनके भी दर्शन से आनन्द होना चाहिए, पर उसके बदले मत्सर होता है। यह घनीभूत प्रेम का परिणाम है। सारांश, पानी के समान मनुष्यों का प्रेम भी रुक जाने पर सड़ने लगता है और उसमें से काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि जंतु पैदा होते हैं।

वेदांत का कठिन मार्ग

इस पर उपाय क्या है? क्या प्रेम छोड़ दें? वेदांत में आता है कि आसक्ति छोड़ो। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। अगर वह बन सकता, तो फिर बाबा को घूमना ही न पड़ता। चंद लोगों को संन्यास देकर संन्यासी बनाया गया, लेकिन बाकी के लोगों के लिए कुछ नहीं है। प्रेम ही बंद करो, उसे सुखा दो, यह कोई सार्वजनिक उपाय नहीं। कपड़े को दाग लगा हो और उसे साफ करना हो, तो क्या उपाय है? किसीने कहा कि "आग लगाओ, तो वह साफ हो जायगा।" बेशक आग लगाने से वह साफ होगा, पर क्या यह भी कोई उपाय है? कपड़ा कायम रखकर उसे साफ करना चाहिए। इसी तरह 'प्रेम को ही हटा दो', यह कहना बहुत बड़ी बात करना है। किसीको खाने को चावल नहीं मिल रहे हों और वह पूछे कि क्या उपाय किया जाय? तो वेदांत कहता है, लड्डू खाया जाय। वह कहेगा कि चावल ही नहीं मिलता, तो लड्डू कहाँ से मिलेगा? 'वासना सुखा दो' ऐसी बड़ी बात उन लोगों से कही गयी, जिनसे छोटी बात भी नहीं बन रही थी। इसीलिए वेदांत हवा में रह गया और ग्रंथों में रह गया। हवा में रह गया, यह मैंने इसलिए कहा कि हिन्दुस्तान में उसके लिए श्रद्धा है। यह भी एक अच्छी चीज है। पर उतने से काम नहीं बनता। आज यह जो प्रेम सड़ रहा है और वह काम, क्रोध, आसक्ति पैदा कर रहा है, उसका उपाय यही है कि प्रेम का बहना शुरू हो।

प्रेम का बहना शुरू हो

हमने भू-दान, ग्राम-दान आदि की बात लोगों के सामने रखी, उसमें हमने लोगों को प्रेम करने की बात नये सिरे से सिखायी हो, ऐसा नहीं। लोगों में प्रेम तो पड़ा ही है, पर उसका बहना जो बंद हुआ था, उसे शुरू करना है।

जब कोई कहता है कि यह मेरा लड़का है, तो हम कहते हैं कि ऐसा कहो कि 'यह मेरा है, वह भी मेरा है।' 'यही मेरा लड़का है' ऐसा मत कहो, जरा 'भी' सीख लो। 'यही मेरा घर है' ऐसा मत कहो, 'यह मेरा घर है, वह भी मेरा घर है' कहो। यह मेरा शरीर है, वह भी मेरा शरीर है, ऐसा कहो। आज तुम केवल अपने और अपने परिवार के लिए सोचते हो, पर अपना रूप जरा बड़ा बनाओ। आपके घर को आग न लगे, यह आपकी इच्छा है, तो बहुत अच्छा है। किन्तु पड़ोसी का घर आपके घर से सटा है, उसे भी आग न लगे, क्योंकि वहाँ आग लगी, तो आपका-हमारा घर न बचेगा। हम-आपको इसी आकाश ने जोड़ा है। यह दुनिया को जोड़नेवाली चीज है, तोड़नेवाली नहीं। विज्ञान के जमाने में सारा मामला बदल गया है। एक जमाना था, जब समुद्र तोड़नेवाली चीज थी, पर आज समुद्र जोड़नेवाली चीज है। आज जापान और अमेरिका जुड़े हुए पड़ोसी देश हैं, उनके बीच सिर्फ एक छोटा-सा सात हजार मील लंबा समुद्र है। उसीने उन दो देशों को जोड़ा है। विज्ञान के इस जमाने में इन पंचतत्त्वों ने हमें जोड़ा है, यह बात ध्यान में लेने लायक है।

आसान कार्यक्रम

इसलिए इस जमाने में अब हमारा दिल भी व्यापक (चौड़ा) बनना चाहिए। हम उसे बहुत चौड़ा कर, खूब तान-तानकर तोड़ डालना नहीं चाहते, सिर्फ उसे ग्राम तक खींचना चाहते हैं। अगर हम विश्व-कुटुंब की बात करेंगे, तो वह वेदांत हो जायगा। लोग उसे एकदम शत प्रतिशत कबूल कर लेंगे, लेकिन अमल के लिए शून्य प्रतिशत होगा। इसलिए वह चीज काम की नहीं। हम कहते हैं कि जो भावना आपके परिवार तक सीमित थी, उसे जरा चौड़ा बनाओ और गाँव के सभी लोगों को अपने परिवार के समझो। फिर प्रेम का बहना शुरू हो जायगा, उसका सड़ना बंद होगा, उसका स्वच्छ, निर्मल झरना बनेगा। आज प्रेम को काम-वासना का रूप आया है। लेकिन फिर उसे भक्ति का रूप आयेगा। फिर हम उसे ग्राम तक ही सीमित न रखेंगे, उससे भी आगे ले जायेंगे और फैलायेंगे। किसीके दिल में परिपूर्ण प्रेम

भरा हुआ हो, तो वह और आगे बढ़ेगा। किसीके दिल में कम हो, तो वह कम व्यापक होगा। लेकिन हम कहते हैं कि जिसके दिल में जितना प्रेम है, उसका एक दफा बहना शुरू होने दो। इसलिए हमारा कार्यक्रम लोगों को समझने के लिए बिलकुल आसान है।

पशुता और मानवता

भू-दान और ग्राम-दान में यही होता है। अभी यहाँ कुछ गाँवों ने ग्रामदान दिया है। हमने उनसे पूछा कि आपने क्या समझकर दिया, तो उन्होंने जवाब दिया कि हमारे गाँव के गरीब, भूमिहीन सुखी होंगे, इस खयाल से दिया। जहाँ दूसरे के सुख की चिन्ता शुरू होती है, वहीं मानवता शुरू हो जाती है। जब तक अपने ही सुख की चिंता रहती है, तब तक पशुता है। हिन्दुस्तान में यह बहुत खराब चाल पड़ गयी है कि यहाँ दूसरे के दुःख से दुःखी होनेवाले को 'संत' पुरुष कहते और अपने सुख से सुखी, दुःख से दुःखी होना 'मनुष्य' का लक्षण कहा जाता है। पर अगर यह मनुष्य का लक्षण माना जाय, तो फिर जानवर का लक्षण क्या होगा? साफ है कि वह तो लक्षण जानवर का है और दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होना ही मानव का लक्षण है तथा महापुरुष का लक्षण है, सुख-दुःख से परे रहना। किन्तु हिन्दुस्तान के लोगों ने अपना लक्षण महापुरुष को दिया और जानवर का लक्षण अपने लिए ले लिया। "परदुःखेन दुःखिताः विरलाः"—दूसरे के दुःख से दुःखी होनेवाले महापुरुष विरले होते हैं—ऐसे संस्कृत में वचन घर-घर बोले जाते हैं। तो क्या अभी जिस लड़के ने बाबा को सूत दिया, वह महापुरुष हो गया? इस तरह हमारा सोचने का स्तर बिलकुल गिर गया है। हम आपके सामने कोई दैवी प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं, मानवता को जगा रहे हैं। हम सबसे पूछते हैं कि भाइयो, तुम मानव हो न? एक ही गाँव में अड़ोस-पड़ोस में रहते हो। इसलिए एक-दूसरे पर प्यार करना ही साथ रहने का उद्देश्य हो सकता है। पड़ोसी के घर में क्रन्दन चल रहा हो, तो मैं अपने घर में लड्डू नहीं खा सकता। ईश्वर ने मनुष्य का हृदय ही वैसा बना दिया है। हाँ, यह ठीक है कि मैं अपने घर का दरवाजा बंद

कर लेता हूँ, जिससे कि वह क्रंदन सुनाई न दे। यह सारा बंदोबस्त आप कर सकते हो।

सुजाता में करुणा का दर्शन

ऐसा ही बंदोबस्त गौतम बुद्ध के पिता ने किया था, जिससे पुत्र को दुःख का अनुभव न हो। वे राजपुत्र थे। उन्हें इस तरह रखा गया कि दुःख का जरा भी दर्शन न होने पाये। एक दिन वे पालकी में बैठकर जा रहे थे। उनकी नजर दूर गयी, तो उन्हें दुःख का थोड़ा-सा दर्शन हुआ। बस, सारा खतम हुआ और बुद्धदेव ने निर्णय किया कि संसार दुःखमय है। क्योंकि बिलकुल दुःख का दर्शन ही न हो, ऐसा पिता के इन्तजाम करने पर भी दुःख दीखा, तो दुनिया में कितना दुःख होगा ? प्रत्यक्ष के बजाय अनुमान से ही उन्होंने दुःख का नाप कर लिया और वे यह कहकर निकल पड़े कि ऐसी दुःखी दुनिया का दुःख कायम रखकर हम जी नहीं सकते। दुःख का विनाश कैसे हो ? इसका मार्ग ढूँढ़ते हुए वे चिंतन करते रहे। आखिर उन्होंने चालीस उपवास किये। वहाँ एक गड़रिये की लड़की रोज उन्हें देखती थी। वह सोचती थी कि यह कौन शख्स बैठा है, उसकी एक-एक पसली और हड्डी बाहर आयी है। वह हाथ में दूध का कटोरा लेकर उसके इधर-उधर घूमा करती थी, यह सोचकर कि कहीं इस भाई को भूख लगेगी, तो मैं फौरन उसे दूध दे दूँगी। चालीस दिन के चिंतन से उन्हें अंतःप्रकाश दीख पड़ा, उन्होंने प्राची दिशा में देखा कि कारुण्य का उदय हो रहा है। यह है दर्शन ! उन्हें उत्तर मिला कि "दुनिया का दुःख अगर मिटाना है, तो कारुण्य की जरूरत है।" "मेरा मसला हल हुआ, अब उपवास की जरूरत नहीं" यह कहकर उन्होंने आँखें खोलीं, तो लड़की दूध की कटोरी लेकर तैयार थी।

जो समस्या का हल चालीस दिन उपवास कर भगवान् बुद्ध ने निकाला, वह उस लड़की ने बिना तपस्या के निकाला। बुद्ध भगवान् के जीवन में उस लड़की की महिमा बहुत मानी जाती है। उसे करुणा प्राप्त ही थी। बुद्ध भगवान् को करुणा के दर्शन के लिए तपस्या करनी पड़ी थी। फिर आगे वे चालीस साल तक परिव्राजक शिष्य लेकर घूमते रहे और सुनाते रहे कि दुनिया का मसला हल

करने के लिए, दुःख के निवारण के लिए तपस्या की नहीं, करुणा की जरूरत है। तपस्या से ही उन्हें मालूम हुआ कि तपस्या की जरूरत नहीं है। उन्हें जो करुणा का दर्शन हुआ था, वही करुणा का दर्शन उन्हें उस लड़की में हुआ। तब से उनका संदेश सारी दुनिया में फैला। अभी उनकी २५०० साल की जयंती का उत्सव हो रहा है। "दुनिया को शांति चाहिए, तो गौतम बुद्ध का बताया रास्ता ही लेना होगा", ऐसा वे बोले हैं, जो आज सेना को कायम रखते हैं। परन्तु वे जानते हैं कि सेना निकम्मी चीज है, काम की चीज तो है करुणा। भू-दान-यज्ञ में हम जो कह रहे हैं, वह करुणा के सिवा और कुछ नहीं है।

मदुरा

२१-१२-'५६

व्यापारी धर्माचरण कर नेता बनें : ३३ :

मैंने सुना कि यहाँ के व्यापारी हमसे कुछ घबराये हुए हैं। यों तो व्यापारी डाकुओं से डरा करते हैं, इन दिनों कम्युनिस्टों और सरकार से भी डरते हैं। फिर अगर वे बाबा से भी डरें, तो निर्भय कहाँ रहेंगे ? उन्हें कम-से-कम बाबा से तो न डरना चाहिए। आखिर न डरने की एक तो जगह रखिये। बाबा से डरने का कोई कारण नहीं। वह बेचारा तो बकरी जैसा गरीब है। आप बकरी का दूध लेना चाहें, तो ले सकते हैं; न चाहें, तो उसे खा भी सकते हैं। बाबा के पास कोई सत्ता नहीं और न वह कोई सत्ता चाहता ही है। वह आपको समझाता है कि बाबा अपने काम के साथ आपके हाथ में है। अगर व्यापारी इसे अपना काम समझकर उठा लें, तो खुद बचेंगे और हिंदुस्तान को भी बचायेंगे। अगर आप इसे पसंद न करेंगे, तो वह खाली हाथ चला जायगा। वह तो समझानेवाला है। उसके पास सिर्फ समझाने की सत्ता है। वह सभी प्रकार की सत्ताएँ और संस्थाओं से अलग है। इसलिए उससे डरने का कुछ भी काम नहीं।

वैश्यधर्म

हम मानते हैं कि हमने संपत्ति-दान का जो विचार निकाला है, उससे धनिकों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। आज हिन्दुस्तान और दुनिया का भी व्यापारी-वर्ग के बिना

चलता नहीं। हर बात में उनकी मदद ली जाती है, फिर भी सब लोग उनके पीछे उन्हें गालियाँ देते हैं। उसमें कुछ दोष लोगों का है और कुछ उनका अपना भी। हमारे धर्मशास्त्र में 'वाणिज्यम्' वैश्य का धर्म बताया है। आपको दुनिया के किसी भी धर्म में यह बात नहीं दिखाई देगी। सत्य, प्रेम, दया, करुणा सभी धर्मों में आती हैं, पर 'वाणिज्यम्' भी एक धर्म है, यह बात सिर्फ हिंदू-धर्म ही कह रहा है। "कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् वैश्यकर्मस्वभावजम्।" जैसे ब्राह्मण का धर्म है वेदाध्ययन करना, वैसे ही वैश्य का धर्म है व्यापार करना। जैसे ब्राह्मण वेदाभ्यास कर मुक्ति पा सकता है, क्षत्रिय लड़ाई में देश का बचाव कर मुक्ति पा सकता है, वैसे ही वैश्य व्यापार कर मुक्ति पा सकता है। हिन्दू-धर्म की तरफ से आपको मोक्ष की भी सनद मिली है कि व्यापार कर मोक्ष पाओ। आपको मोक्ष-प्राप्ति के लिए व्यापार छोड़ना नहीं पड़ता, बल्कि यही कहा गया है कि व्यापार छोड़ने से मोक्ष न मिलेगा। इससे ज्यादा व्यापारी की प्रतिष्ठा हो ही नहीं सकती।

हिन्दू-धर्म ने ब्राह्मण और क्षत्रिय की बराबरी में व्यापारी को रखा, किन्तु शर्त यह रखी कि ज्यादा पैसा प्राप्त करना व्यापारी का धर्म नहीं। उनका धर्म है—लोगों की उत्तम सेवा करना। सर्वसाधारण लोगों में ठीक हिसाब करने की वृत्ति नहीं होती, यह व्यापारियों में होनी चाहिए। सर्वसाधारण लोग वचन का पालन नहीं करते, व्यापारी को वचन का पालन करना चाहिए। व्यापारी अपना शब्द कभी नहीं टालता। जैसे ब्राह्मण का धर्म है ज्ञान, वैसे ही व्यापारी का धर्म है दया। अगर वह दया न रखेगा, तो क्या सिर्फ तराजू से तौलकर देने और लेने से उसे मोक्ष मिलेगा? इसलिए उसके साथ दया का गुण जोड़ दिया गया। जैसे क्षत्रिय का गुण निर्भयता है और ब्राह्मण का गुण है ज्ञान। इन सब गुणों की समाज को जरूरत है, इसलिए सबकी प्रतिष्ठा मानी गयी है। जो ब्राह्मण निष्काम भावना और ईश्वर-भक्ति से वेद पढ़ता है, वह मोक्ष का अधिकारी है। पर पंडित बनने के लिए वेद पढ़े, तो वह अहंकारी बनेगा, फिर उसे मोक्ष न मिलेगा। वैसे ही व्यापारी भी व्यापार करने से मोक्ष पा सकता है, पर व्यापार के साथ सत्यता, दया, परोपकार भी होने चाहिए। इसीलिए व्यापार धर्म कह-

जाता है। अगर व्यापारी इस धर्म का पालन करें, तो आज भी उनकी प्रतिष्ठा बन सकती है, पर आज वह नहीं बन रही है।

अपनी बुद्धि परमार्थ में लगायें

आपके पास अक्ल है, आप संपत्ति का अच्छा उपयोग करना जानते हैं। हमारे पास संपत्ति के उपयोग करने की अक्ल नहीं है। आखिर हम तो ब्राह्मण ठहरे! भूमिहीनों को जमीन के साथ कुएँ बनाने के लिए हमने आपसे संपत्ति-दान माँगा। आप हमें दस रुपयों में ठीक से पाँच कुएँ बना देंगे, क्योंकि आप पैसे का योग्य उपयोग करना जानते हैं। हम अप्रामाणिक होंगे, तो काम कर ही न सकेंगे, पर प्रामाणिक होने पर भी दो ही कुएँ बना सकेंगे, क्योंकि हमें व्यवहार की अक्ल नहीं है। पैसे का उत्तम-से-उत्तम उपयोग करने की अक्ल तो व्यापारी के पास होती है, क्योंकि उनकी वैसी परंपरा है। इसीलिए संपत्ति-दान में हम पैसा अपने हाथ में नहीं लेते। हम कहते हैं कि व्यापारी अपने घर में जो खर्चा करता है, उसमें छठे मनुष्य का समावेश कर उसका हिस्सा दान दे दे। आपके घर में हमारा इतना पैसा है, यह लिखकर एक कागज हमें दे दें। फिर उसका खर्च आप ही करें, हिसाब भी आप ही रखें और केवल हिसाब हमारे सामने पेश करें।

हमें अब तक लाखों का संपत्ति दान मिला है, पर एक कौड़ी को भी हमने छुआ नहीं। अगर ऐसा न करते, तो रात को ठीक से नींद भी न आती, क्योंकि हिसाब की चिन्ता रहती, बाबा की इज्जत खतरे में रहती। पर आज तो हमारा बैंक हर घर में है और बैंकर भी हर घर में है, तो फिर हमें ठीक से नींद क्यों नहीं आयेगी? आपको हिसाब रखना पड़ता है, इसलिए आपको ठीक से नींद न आये, तो वह स्वाभाविक ही है; क्योंकि वह आपका धर्म है। आपको ठीक से नींद आने से तो मोक्ष न मिलेगा और हमें ठीक से नींद न आने से मोक्ष न मिलेगा। संपत्ति-दान एक ऐसा तरीका है, जिसमें हम न सिर्फ आपकी संपत्ति, बल्कि आपकी बुद्धि भी चाहते हैं। आप अपनी बुद्धि स्वार्थ के काम में लगायें और परमार्थ में सिर्फ पैसा देकर छूट जायँ, यह ठीक नहीं। आप अपनी बुद्धि भी परमार्थ में लगाइये।

भारतीय व्यापारियों का दायित्व

आज देश में इतना बड़ा काम हो रहा है। लाखों लोगों ने जमीन दी है। यहाँ मदुरा जिले में पचास से ज्यादा ग्रामदान हुए हैं, वहाँवालों ने अपनी मालकियत छोड़ी है। जब लोग इतना त्याग कर रहे हैं, तो व्यापारियों को उनकी मदद में दौड़े आना चाहिए। अगर व्यापारी हमसे कहें कि "तुम जमीन हासिल करते चले जाओ, उसे अच्छी बनाने का ठेका हम लेते हैं", तो व्यापारियों की इज्जत बहुत बढ़ेगी। आज यद्यपि व्यापारी सेवा करते हैं, फिर भी उनकी गिनती देश-सेवकों में नहीं होती। लेकिन वे संपत्तिदान को उठा लेंगे, तो सेवक बनेंगे, उससे व्यापारी-वर्ग की ताकत प्रकट होगी। अगर व्यापारी परोपकारी हो, तो कोई भी उद्योग उसके हाथ में रहने से ज्यादा अच्छा चलेगा। हर उद्योग सरकार के हाथ में जाने में कल्याण है, ऐसा हम नहीं मानते। आज सरकार और व्यापारियों के बीच झगड़ा है, व्यापारी और ग्राहकों के बीच झगड़ा है। अगर व्यापारी भी देश की सेवा करना चाहें, तो झगड़े क्यों होंगे? हम इन झगड़ों को खतम करना चाहते हैं। हमें जो जमीन मिलेगी, उसे अच्छी बनाने का ठेका हिंदुस्तान के कुल व्यापारी ले सकते हैं। फिर उस जमीन को अच्छी बनाने के लिए सरकार से मदद माँगने की जरूरत न रहेगी। अगर हिन्दुस्तान के व्यापारी ऐसा करें, तो दुनिया में उनकी इज्जत होगी। आज हिंदुस्तान के किसान का नाम सारी दुनिया में हो रहा है कि वे अपनी जमीन दान दे रहे हैं, मालकियत छोड़ रहे हैं। इसी तरह व्यापारियों का भी नाम हो जायगा कि वे बेजमीनों को बसाने में मदद दे रहे हैं। उसका दुनिया पर बहुत असर होगा।

बेजमीन मजदूरों को बोनस मिले

आज आपकी मिलें हैं, तो उनमें काम करनेवाले मजदूरों को ठीक तनख्वाह देनी पड़ती है। वह न दी जाय तो झगड़ा होता है, फिर 'आर्बीट्रेशन' होता है। मुनाफे का भी हिस्सा बोनस के रूप में उन्हींको देना पड़ता है। यह सब ठीक ही है। किन्तु आपकी मिल में कपास कहाँ से आयी, उसे किसने बोया? कपास के खेतों में काम करनेवाले जो बेजमीन मजदूर हैं, क्या उन्हें भी बोनस न

मिलना चाहिए ? लेकिन आपको उनकी याद भी नहीं आती, सिर्फ मिल के मजदूरों की याद आती है और वह भी दिलाने पर आती है। मिल-मजदूरों के बचाव के लिए संस्थाएँ होती हैं, इसलिए उनकी आवाज सुनाई देती है। किन्तु जो मूक हैं, बोल नहीं सकते, जो सबसे नीचे हैं, दबे हुए हैं, सबका भार जिन पर आता है, उन बेजमीन मजदूरों की मेहनत से आपके पास कपास पहुँचती है। तो फिर आपकी प्राप्ति का एक हिस्सा उन्हें क्यों न मिले ? अगर आप प्रेम से उन्हें एक हिस्सा देते हैं, तो हृदय के साथ हृदय जुड़ जाता है।

धर्महीन लोग अपनी छाया से भी डरते हैं

जब मैंने सुना कि आप लोग बाबा से घबड़ाये हैं, तो मुझे बहुत ताज्जुब हुआ। आपको जरा अपनी अक्ल का उपयोग करना चाहिए था कि क्या डरानेवाला मनुष्य पाँच साल से पैदल घूमेगा ? रेलवे के इस जमाने में जो पैदल घूमता है, क्या वह डरानेवाला हो सकता है ? उसे अगर डराना होता, तो वह सरकार या कांग्रेस में दाखिल होता, हाथ में बड़े-बड़े शस्त्र लेता और हमला करता। आज हम एक दफा यहाँ आये, दुबारा कब आयेंगे पता नहीं और तब तक यमराज ले भी जायगा। क्या ऐसा मनुष्य डराने के लिए आया होगा ? वेदांत में एक बात आती है कि रज्जु से डरना नहीं चाहिए। पर मनुष्य उससे डरता है, क्योंकि उसका आकार कुछ साँप जैसा है। बाबा तो सब प्रकार की सत्ता छोड़कर आया है, प्रेम से जमीन माँगता घूम रहा है, लाखों लोग उसे प्रेम से जमीन देते हैं। फिर जो आपके गाँव में जिंदगी में एक दफा आया, वह डरानेवाला है, यह आपने माना ही कैसे ? लोग हिटलर से डरते थे, लेकिन बाबा से डरने की कोई बात ही नहीं है।

लेकिन जो भयभीत होते हैं, वे हर चीज से डरते हैं, अपनी छाया से भी डरते हैं। छाया पीछे-पीछे आती है, तो उन्हें ऐसा लगता है कि भूत पीछे लगा है। यह इसीलिए होता है कि जीवन में जो धर्म-विचार चाहिए, वह उनमें नहीं रहता। ऐसे लोग हरएक से डरते हैं। घर पर पक्षी बैठा, तो अपशकुन समझकर डर जाते हैं और ब्राह्मण को दान देते हैं। आप लोग ऐसा डर छोड़

दीजिये और धर्म का आचरण कीजिये, तो आप हिंदुस्तान के नेता बनेंगे। व्यापारियों के बिना देश का नहीं चलेगा। कम-से-कम सौ-दो-सौ साल तक उनकी आवश्यकता तो रहेगी ही, उसके बाद अगर विकेन्द्रित व्यवस्था हो जाय, तो शायद उनकी आवश्यकता न रहे। इस तरह जिनकी जरूरत है, वे सज्जनों से डरें क्यों?

सर्वोदय में धनवानों का हित

इसलिए आपको समझना चाहिए कि इसमें डरने का कोई कारण नहीं। हम सिर्फ एक हिस्सा ही माँगते हैं, आपकी शक्ति के बाहर की चीज नहीं माँगते हैं। हमारी इतनी माँग आप पूरी करेंगे, तो हिंदुस्तान का व्यापारी-वर्ग इतना ऊँचा चढ़ेगा कि उसके पास धर्म-प्रतिष्ठा आयेगी। उसका नैतिक स्तर ऊँचा होगा। यहाँ व्यापारियों को 'महाजन' कहते थे। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः।' महाजन याने सबसे श्रेष्ठ लोग, जिनमें व्यापारी भी आते हैं। पुराने जमाने में लोग काशीयात्रा के लिए जाते थे, तो अपनी संपत्ति व्यापारियों के पास रखकर जाते थे। कुछ लिखकर भी नहीं लिया जाता था। लोगों का व्यापारियों पर इतना भरोसा था, श्रद्धा थी। किन्तु आज वह विश्वास नहीं रहा। हमारे और ग्राहकों के बीच विश्वास नहीं, यहाँ तक कि बाप का बेटे पर भी विश्वास नहीं है। श्रीमान् लोग अपने लड़कों से भी डरते हैं, उनके हाथ में कुंजी नहीं देते हैं। ब्राह्मण लोग 'यज्ञोपवीत' पहनते हैं, पर इन दिनों वह 'कुंजी उपवीत' बन गया है, क्योंकि वह सिर्फ कुंजी लटकाने के ही काम आता है। बाप जब मर जायगा, तभी लड़का जनेऊ से उसकी कुंजी छुड़ा लेगा। शंकराचार्य ने भी लिख रखा है कि 'पुत्रादपि धनभाज्यां भीतिः' धनवानों को अपने पुत्र से भी भय मालूम होता है। इसका कारण यही है कि हिंदू-धर्म ने आपको जो प्रतिष्ठा दी थी, वह आपने खो दी है।

ध्यान रखिये कि हमारा काम देश के और गरीबों के हित में तो है ही, परन्तु आपके भी हित में है। इसीलिए इसे 'सर्वोदय' कहते हैं। इसमें सबका उदय होता है। आज तक समाज में एक की उन्नति होती थी, तो दूसरे की अवनति। एक चढ़ता, तो दूसरा गिरता था। कम्युनिस्ट भी मानते हैं कि एक के

हित में दूसरे का अहित है। लेकिन सर्वोदय कहता है कि एक का हित दूसरे के हित के खिलाफ नहीं हो सकता। एक के भले में दूसरे का भी भला है। हमारा दावा है कि हमारे काम से गरीबों का जितना हित होता है, उससे अमीरों का हित कम नहीं होता। हमारा दूसरा दावा यह है कि हमारे मन में गरीबों के लिए जितना प्रेम है, उतना ही प्रेम अमीरों के लिए भी है। अगर ये दोनों दावे सही हैं, ऐसा आपको लगता है, तो आप हमारा काम उठाइये।

जनता व्यापारियों का नेतृत्व चाहती है

हमारा दावा है कि व्यापारी इस काम को उठा लेंगे, तो उनके हाथ में समाज का नेतृत्व आ जायगा। उनके पास बुद्धि है, व्यवस्था-शक्ति है, इस हालत में वे इस आन्दोलन को उठा लेंगे, तो जैसे बच्चे माता-पिता पर विश्वास रखते हैं, वैसे ही समाज उन पर विश्वास रखेगा। आज समाज में उनके लिए अविश्वास है। वैसे अविश्वास रखने का कोई खास कारण नहीं। व्यापारियों की कोई खास जाति है और वह गिरी हुई है, ऐसी बात नहीं। सारा समाज गिरा है, उसमें व्यापारी भी गिरे हैं। फिर भी लोग व्यापारियों को गालियाँ देते हैं। मैं उसका अच्छा अर्थ लगाता हूँ कि लोग व्यापारियों का नेतृत्व चाहते हैं। वे व्यापारियों से ज्यादा आशा रखते हैं और उतनी आशाएँ पूर्ण नहीं होतीं, इसलिए उन्हें गालियाँ देते हैं। यों ही गालियाँ देनी हों, तो सबको दे सकते हैं, क्योंकि कुल देश गिरा हुआ है। किंतु लोग सबको गाली नहीं देते, व्यापारियों को ही देते हैं। वास्तव में यह व्यापारियों के लिए गौरव की बात है। इसका अर्थ यही है कि लोग यह मान्य करते हैं कि ये लोग बुद्धिमान् हैं, कुशल हैं और इसीलिए उनसे ज्यादा आशा रखते हैं। इसलिए आज जो आपके सामने भू-दान और ग्रामदान का एक विशाल कार्यक्रम खड़ा है, उसे यशस्वी बनाने का काम आपको उठा लेना चाहिए। आप अपने व्यापार के साथ-साथ संपत्ति-दान को भी एक व्यापार समझें और उसे उठा लें।

मदुरा (तमिलनाड)
२०-१२-'५६

मालकियत की आग को बुझा दो

आज नये वर्ष का दिन है। परमेश्वर की कृपा का वर्ष हमारे लिए खुल गया। ऐसे दिन निश्चय करना चाहिए कि हम अपना पुराना जीवन बदल देंगे। हममें बहुत-सी बुराइयाँ हैं—बिलकुल छोटे दिल के बन गये हैं, दूसरों की बिलकुल नहीं सोचते, अपनी ही सोचते हैं। इन सबको बदलने का हम सबको निश्चय करना चाहिए। हमें तय करना चाहिए कि अब से हम केवल अपने लिए ही न सोचेंगे; जो कुछ सोचेंगे, अपने सारे समाज के लिए, सारे गाँव के लिए सोचेंगे।

देने का धर्म, हरएक के लिए

कुछ लोग समझते हैं कि बड़े लोगों को ही देने का काम करना है। हमें सिर्फ लेना-ही-लेना है, देना नहीं। लेकिन भगवान् ने हमें दो हाथ दिये हैं, सिर्फ लेने के लिए नहीं, देने के लिए भी। धर्म तभी बढ़ेगा, जब हर कोई समाज के लिए देगा। जिनके पास जमीन है, वे जमीन देंगे। संपत्ति है, वे संपत्ति देंगे। बुद्धि है, वे बुद्धि देंगे। शक्ति है, वे श्रम देंगे और किसीके पास कुछ नहीं है, तो वह अपना प्रेम देगा। दुनिया में ऐसा कोई शख्स नहीं, जिसके पास देने के लिए कुछ भी न हो। जो कुछ अपने पास है, उसमें से देना चाहिए। यह सूर्यनारायण देता ही रहता है। नदी, पेड़, पहाड़ आदि सारी सृष्टि देती ही रहती है। हमें सृष्टि से यह सीखना चाहिए। नारियल के पेड़ के पास जो कुछ देने को है, वह देता है। मेरा क्या होगा, यह नहीं सोचता। लोग ही उसकी चिंता करते हैं कि नारियल को अब पानी देना होगा, थोड़ी खाद देनी होगी।

जो नहीं देता, उसके लिए कोई धर्म ही नहीं। वह धर्महीन बन जाता है। हर मनुष्य के लिए भगवान् ने धर्म पैदा किया है। मजदूर के पास जमीन नहीं, पर श्रमशक्ति है। गाँव के लिए वह श्रमदान दे सकता है। जो ऐसा विचार करेगा, वह सुख पायेगा। जो कहेगा कि मैं दुःखी हूँ, मुझे मिलना चाहिए, वह कभी

सुख न पायेगा, दुःखी ही होगा। जब गरीब सोचता है कि "मैं गरीब हूँ इसमें कोई शक नहीं, लेकिन दूसरा कोई भूखा है, वह मुझसे ज्यादा दुःखी है, इसलिए अपना हिस्सा उसे दूँगा", तो वह दुनिया में ताकत बढ़ाता है।

मालकियत आग है

भूदान में हमें बड़े-बड़े लोगों से जमीन प्राप्त करनी है। पर वे नहीं देते, तो हमें क्या करना चाहिए, ये सारी बातें सोचनी ही न चाहिए। हम जो दे सकते हैं, वह दें। यह एक तपस्या है, इसके परिणामस्वरूप दुनिया में ताकत बढ़ती है। यह आंदोलन देने का आंदोलन है, तपस्या का आंदोलन है। गाँव की सारी जमीन सारे गाँव की बननी चाहिए। इसके लिए छोटे लोग अपनी छोटी माल-कियत छोड़ दें। वे कहते हैं कि "हमारे पास थोड़ी ही जमीन है, उसे हम क्या छोड़ें?" लेकिन आग लगी है, तो बड़ा मकान हो या छोटी झोपड़ी, दोनों छोड़े जाते हैं। वैसे ही चाहे छोटी हो या बड़ी, मालकियत आग ही है। व्यक्ति-गत मालकियत से दुनिया में आग लगती है। छोटे-छोटे लोग मालकियत को पकड़ रखते हैं, तो बड़े मालिक भी बड़ी मालकियत को पकड़ रखते हैं। लेकिन अगर छोटे मालिक अपनी छोटी मालकियत छोड़ दें, तो बड़े मालिकों को भी उसे छोड़ना होगा। तुम छोटे मालिक हो, तो अपनी छोटी मालकियत पहले छोड़ो और बड़े मालिक हो, तो अपनी बड़ी मालकियत पहले छोड़ो। हर मनुष्य अपनी-अपनी मालकियत पहले छोड़े। फिर वह चाहे छोटा हो या बड़ा। पड़ोसी के घर में आग लगी है। हमारा घर बिलकुल सटा है। वह अपने घर की आग बुझायेगा और मैं अपने घर की। अगर वह नहीं बुझाता, इसलिए मैं भी न बुझाऊँ, तो दोनों मिलकर सारे गाँव को आग लगायेंगे। जब मालकियत आग है, तो उसे पहले कौन छोड़े, इसकी चर्चा ही क्या करना है? बाबा ने अपनी सारी मालकियत छोड़ दी, अपने पास कुछ नहीं रखा है। परिणामस्वरूप वह लाखों लोगों से जमीन माँगता और लाखों लोग उसे जमीन देते हैं। मैंने अपने घर की आग बुझा दी और अब कोई कहे कि "मेरे घर में आग लगी है", तो मैं कहता हूँ कि तुम भी बुझा दो।

ग्रामदान मीठा है

अब ग्रामदान की गति बढ़ रही है। नदी शुरू में छोटी होती है, पर बहते-बहते बड़ी हो जाती है। यह त्याग की नदी बहुत बड़ी बननेवाली है। कुछ लोग पूछते हैं कि "बाबा, आप कितने 'ग्रामदान' की आशा रखते हैं?" हम कहते हैं, "हिंदुस्तान में पाँच लाख गाँव हैं, तो हम पाँच लाख गाँवों का ग्रामदान चाहते हैं।" फिर वे कहते हैं, "बाबा, आप इतनी बड़ी बात बोलते हैं, कुछ तो कम करो। पाँच लाख गाँव पूरे-के-पूरे ग्रामदान कैसे होंगे?" हम पूछते हैं कि हिंदुस्तान के कितने लोग गुड़ खायेंगे? ३६ करोड़ लोग खायेंगे, इसमें कोई शक नहीं, क्योंकि गुड़ मीठा है। इसी तरह ग्रामदान भी कड़ुआ नहीं। गाँव की जमीन सबकी बनाकर, सब मिलकर काम करेंगे और बाँटकर खायेंगे। ग्रामदान की मिठास सबको मालूम होगी, तो सभी ग्रामदान करेंगे। "तेनाहि अमुदाहि तितिक्कुम शिवपेरुमाल।" अमृत के समान मीठे शिवपेरुमाल। शिव भगवान् को चखने की भी जरूरत नहीं, देखने में ही वह मीठा है। इसी तरह ग्रामदान भी मीठा है। यह बड़ी मंगल वस्तु है। यह शिव है। हमें उसकी भक्ति आपको सिखानी है।

कुमारन् (मदुरा)
१--१'५७

यह ग्रामदान का गाँव है। आज गाँववालों ने एक बड़ा सुन्दर प्रश्न पूछा, जो आज तक उठा ही नहीं था। उन्होंने कहा कि "हम तो प्रेम से खायेंगे-पीयेंगे। गाँव की सामूहिक मालकियत हो जायगी, तो दूसरे गाँव के अपने मित्रों को हम कुछ दे सकेंगे या नहीं ?" अगर 'फिरका-दान' हो, तो यह सवाल ही नहीं उठता। आपके पड़ोसी का गाँव भी ग्रामदान हो जाय, तो ऐसे सवाल पैदा ही न होंगे। उन्होंने कर्ज का सवाल भी पूछा। उसका जवाब यह है कि साहूकार को कुछ समझायेंगे, कुछ छोड़ देने के लिए कहेंगे, कुछ फसल का हिस्सा देंगे। किन्तु जब हिन्दुस्तान के कुल-के-कुल गाँवों का ग्रामदान हो जाय, तो किसी गाँव में कर्जा ही न रहेगा, कर्ज का कागज ही फाड़ दिया जायगा। हिन्दुस्तान में मालकियत मिट गयी, तो कर्जा भी खतम। न कोई देगा, न कोई लेगा। सभी जगह ग्रामदान की हवा फैल जायगी, तो सवाल ही नहीं पैदा होगा।

स्वयं प्रचारक बनें

आप लोगों को अपने गाँव का ग्रामदान करके बैठे रहना ठीक नहीं, ग्रामदान के बाद 'ग्रामराज' लाना चाहिए। फिर दूसरे गाँव में अपने रिश्तेदारों के पास जाकर कहना चाहिए कि देखो, हम आज तक आपको कुछ-न-कुछ मदद देते थे, लेकिन अब एक बड़ी मदद देना चाहते हैं। हम आपको एक विचार देने आये हैं। हमने जैसे ग्रामदान दिया है, वैसे आप भी दीजिये। हमने खूब मिठाई खायी, अब आप भी खाइये। इस तरह ग्रामदान के लोग दूसरे गाँव में जायँ, वहाँ के लोगों को समझायें, हमारे साथ जो सवाल-जवाब हुए, वे दूसरों के साथ करें। उनको समझाकर ग्रामदान दिलवायें। इस तरह ग्रामदानियों की जमात बनाना आपका धर्म है। नहीं तो बाबा और उसके कार्यकर्ता कितने गाँवों में जायँगे ? क्या आप भी बाबा के सेवक नहीं हैं ? आप दूसरे गाँवों में ग्रामदान का विचार समझाने के लिए उठ खड़े हो जाइये।

ग्रामदान से सरकार का रंग बदलेगा

लोग कभी-कभी सवाल पूछते हैं कि आपको तो ग्रामदान बहुत मिल गये हैं, अब नये-नये ग्रामदान क्यों हासिल करते हैं। उन्हीं गाँवों को अच्छा बनाइये। हम कहते हैं कि तुम समझते नहीं। ये ग्रामदान के गाँव थोड़ा-सा दही है। आस-पास के गाँव दूध हैं। उन सबका दही बनाना है। अपने ग्रामदान का दही उन गाँवों के दूध में मिला दो, सब-का-सब दही बन जायगा। फिर सरकार की कितनी मदद मिलती है, सोचो। अभी तो ८० ही गाँव मिले हैं, तब सरकार सोचती है कि ग्रामदान के गाँवों को मदद करने के लिए एक विशेष अधिकारी मुकर्रर करना है; क्योंकि इतना बड़ा काम हो रहा है, तो कुछ तो हमें करना ही होगा। लेकिन सब-का-सब ग्रामदान हो जायगा, तो एक अफसर से कैसे काम चलेगा? सरकार की रचना ही बदल जायगी, सरकार का कानून ही बदल जायगा।

दूसरों को अपने में बदल दो

तुम्हारी शक्ति कम नहीं, तुम परमेश्वर के रूप हो। तुम्हारे हृदय के अन्दर एक ज्योति जल रही है। तुम जाग जाओ। इस सरकार को बनानेवाले तुम ही हो, तुम्हारे वोट से ही सरकार बनती है। इसलिए सरकार की भी सरकार तुम हो। ग्रामदान, फिरकादान होगा, तो सरकार का रंग ही बदल जायगा। फिर कर्ज का सवाल ही न रहेगा। हमने यह जिम्मेवारी ग्रामदान के गाँवों पर डाली है कि अपने समान सबको बनाइये। जो मीठी चीज तुमको खाने को मिली है, उसे सबको खिलाइये। तुम्हारी टोली की टोली निकलनी चाहिए। उन पर आप लोगों का हमला हो। 'ग्रामदान' का राम-नाम की तरह भजन करते चले जाओ। तुम यह मत समझो कि प्रचार के लिए जायँगे, तो खुद ही बदल जायँगे। तुम न बदलोगे, उन्हें ही बदल दोगे, अपना बना लोगे।

वेचिडमनुड्डर (मदुरा)
२-१-'५७

टॉल्स्टॉय की वासना

एक कार्यकर्ता ने पूछा : "सत्याग्रही लोकसेवक राजनैतिक दलों का सदस्य बना रहे, तो क्या हर्ज है ?"

विनोबाजी ने जवाब दिया : "हम मानते हैं कि जो शख्स किसी भी दल का सदस्य बनेगा, वह अपनी नैतिक शक्तियों को निश्चय कम करेगा। शुद्ध धर्म-कार्य करनेवालों को राज्य-सत्ता से अलग ही रहना चाहिए। जहाँ आपने कहा कि मैं फलानी पार्टी का हूँ, वहीं आप दूसरी पार्टियों के नहीं रहे। जहाँ आपने कहा कि मैं हिन्दू हूँ, वहाँ आप मुसलमान नहीं रहे। हम तो सब पर समान प्रेम करना चाहते हैं।

आप कहें कि हम किसी पार्टी में रहते हैं, तो उस पार्टीवालों के साथ संपर्क रहता है। लेकिन संपर्क केवल कोई शरीर का नहीं, मानसिक भी होता है। टॉल्स्टॉय ने ६० साल पहले एक किताब लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि "जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए"। उसी वक्त मेरा जन्म हुआ। मैं मानता हूँ कि शायद उन्होंने यह लिखकर अपनी वासना मुझमें भर दी। हम जनता को लोकनीति का विचार देना चाहते हैं। आप जहाज में बैठकर कहीं जा रहे हैं, किनारे पर जो प्रकाश-गृह है, वह आपको मदद देता है। अगर आप चाहें कि वह प्रकाश-गृह भी किनारा छोड़कर आपके साथ जहाज में चढ़े, तो कैसे चलेगा ? प्रकाश-गृह के तौर पर ही कुछ लोग राजनीति से अलग रहें, तो देश के लिए अच्छा रहेगा। दुनिया में कुछ तो ऐसे मुक्त पुरुष रहने ही चाहिए, जो दुनिया के सामने चिरकालीन मूल्य रखें।

कल्लांदरी (मदुरा)
२-१-'५७

सेवा से व्यवस्था-सत्ता या भक्ति-मुक्ति ? : ३७ :

एक जमाना था, जब इस देश के लोग नयी-नयी तपस्याएँ करते थे। हिंदुस्तान में बहुत पुराने जमाने से धर्म-विचार दृढ़ हुआ है। धर्म की साख लोगों के दिल और दिमाग पर हमेशा रही है। धर्म केवल ग्रंथों में नहीं बनता। उन ग्रंथों का असर जनता पर भी होता है। जैसे-जैसे नये-नये विचार निकलते हैं, वैसे-ही-वैसे लोगों के सामने तपस्या के नये-नये प्रकार खड़े होते हैं। तपस्या का मतलब यह नहीं कि बारिश या धूप में खड़े रहें। समाज की शुद्धि और उन्नति के लिए की जानेवाली मेहनत ही 'तपस्या' है। इस तरह के समाज-शुद्धि के नये-नये आंदोलन और उन्हें चलाने के लिए महापुरुष भी यहाँ बहुत पैदा हुए हैं। भारत का कुल इतिहास ही समाज-शुद्धि के इन आंदोलनों से भरा है। वैसे भारत में बड़े-बड़े साम्राज्य भी हो गये, पर वे स्थायी प्रभाव न डाल सके। जिस जमाने में वे हो गये, उसी जमाने पर और केवल बाहरी जीवन पर ही उनका प्रभाव रहा। लोगों के आंतरिक जीवन पर कोई खास असर नहीं रहा।

माणिक्यवाचकर ने प्रधान मंत्रिपद छोड़ा

आज हम जिस गाँव में आये हैं, वह गाँव बहुत मशहूर है। यहाँ एक महापुरुष हो गया है, जिसका असर सारे समाज पर है। वे भी एक साम्राज्य के प्रधानमंत्री थे। लेकिन उन्होंने देखा कि प्रधानमंत्री रहकर हम देश की बहुत सेवा नहीं कर सकते। कुछ ही सुख लोगों को पहुँचा सकते हैं, राजसत्ता से समाज-जीवन बदल सकना संभव नहीं। फलतः वह पद छोड़ वे फकीर बन गये। तमिलनाड में दूसरे भी प्रधानमंत्री कम नहीं हुए। राजा भी बहुत हुए और उनके प्रधानमंत्री भी। अपने जमाने में उन-उन प्रधानमंत्रियों ने कुछ काम भी किया, पर 'माणिक्यवाचकर' की कीमत इसीलिए है कि उन्होंने बुद्ध जैसा प्रधान मंत्रिपद छोड़ जनसेवा का व्रत लिया। इसीलिए दूसरे असंख्यों की तुलना में समाज पर उनका ज्यादा असर हुआ।

सियार से घोड़े कैसे बने ?

उनके बारे में कहा गया है कि उनके लिए भगवान् ने सियारों के घोड़े बनाये। सियार राजनीति में काम करनेवाले होते हैं। शेर तो वीर पुरुष है, पर सियार मुत्सद्दी। जब माणिक्यवाचकर ने देखा कि इन मुत्सद्दी लोगों से हिंदुस्तान के जीवन पर कुछ असर नहीं होता, तब उन्होंने परमेश्वर से प्रार्थना की कि ऐसे सियारों से मतलब नहीं सधता। जब उनके ध्यान में यह बात आयी, तो उन्होंने स्वयं राज्य छोड़ दिया और समाज-सेवक बने। फिर तमिलनाड में घूमते रहे। उनका आगे का जीवन बहुत ही वेगशाली रहा। सारी राजनीति की कुशलता छोड़ वे केवल समाज-सेवा करनेवाले घोड़े के समान बन गये। उनकी संगति से राजनीति का खयाल दूसरे लोगों ने भी छोड़ दिया। वे भी लोकनीति में लगे। यह है, सियार के घोड़े कैसे बने, यह कहानी !

हम चाहते हैं कि हमारे देश में फिर से यह चमत्कार हो। इसके लिए अक्ल की बात छोड़ हाथ से सेवा करनी पड़ती है। माणिक्यवाचकर ने स्वयं लिख रखा है :

"कटारैयान वेडेन करपडम इनीअम युम।" याने अब इसके आगे हम नहीं चाहते कि विद्वान लोगों की संगति हमें मिले। उनका चातुर्य और कल्पना बस है। याने इसके आगे अब सियार का काम नहीं चाहिए। उन्हें बिलकुल विरक्ति आ गयी और उन्होंने ईश्वर का आधार लिया। बार-बार कहा है कि ईश्वर मेरे हृदय में आ बसा है और वह स्वयं काम करता है। उनके इस राजनीति और ऐश्वर्य के त्याग तथा समाज-सेवा में लगने का असर आज तक तमिलनाड के समाज पर है।

पोतना की कहानी

तेलुगु भाषा में 'पोतना' की एक कहानी है। वे खेती का काम करते और भागवत भी लिखते। शायद तेलुगु भाषा में सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ पोतना का भागवत ही होगा। वे किसान थे और आखिर तक किसान ही रहे। जब किताब पूरी हुई, तो किसीने कहा, इसे राजा को समर्पित करना चाहिए। पोतना ने

कहा : नहीं, मैं भगवान् कृष्ण की गाथा गा रहा हूँ और क्या वह राजा को अर्पण करूँ ? राजा को समर्पण करने से उन्होंने साफ इनकार किया। इसलिए राजा शायद नाराज भी हुए, लेकिन उन्होंने परवाह न की। अगर वे उसे राजा को अर्पण करते, तो राजा की एकेडेमी से उन्हें कुछ इनाम भी मिलता। राजा-महाराजा ऐसे को आश्रय देने में बड़े प्रवीण होते हैं। फिर भी उन्होंने राजा का आश्रय नहीं लिया। राजा की सत्ता की हालत उन्होंने दूर से देखी कि ये लोगों पर सत्ता चलाते हैं, पर उनके हृदय में वे परिवर्तन नहीं ला सकते। इसलिए पोतना उससे अलिप्त ही रहे।

तुकाराम की कहानी

ऐसी ही कहानी महाराष्ट्र में संत तुकाराम की है, जिसका नाम वहाँ घर-घर में लिया जाता है। शिवाजी महाराज ने सुना कि तुकाराम कीर्तन करते हैं। इसलिए वे एक दिन उनका कीर्तन सुनने आये। सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। चंद दिनों बाद उन्हें लगा कि तुकाराम का सत्कार करें। उनकी तरफ से घोड़े, पालकी वगैरह तुकाराम के सत्कार के लिए आयी। तुकाराम ने जब यह देखा तो उन्हें तीव्र वेदना हुई, मानो बिच्छू डंक मार गया हो। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की : "प्रभो, क्या यह आपत्ति ला रहे हो, मैंने कौन-सा पाप किया ?" उन्होंने पहचान लिया था कि सत्ता से जनता पर दबाव आता और अच्छाई के बदले बुराइयाँ पैदा होती हैं। उन्हें उस पद का अनुभव तो नहीं था, पर माणिक्य-वाचकर को था। वह अनुभव लेकर उन्होंने उस काम को नीरस समझकर छोड़ा। यह जो उन्होंने त्याग किया, सियार का घोड़ा बनाया, उसका बहुत बड़ा परिणाम तमिलनाड़ पर हुआ है।

तप नहीं, जप

माणिक्यवाचकर की यह चीज हमें बहुत आकर्षक मालूम होती है। उन्होंने 'तिरुवाचकम्' में जो लिखा है, उस पर उस त्याग का असर है। किन्तु खूबी यह है कि हमने कुछ त्याग किया है, यह भास उन्हें नहीं है। उन्हें यही भास होता था कि सारा भगवान् ने किया और मैंने तो सिर्फ भगवान् का नाम लिया। लोग जिसे 'तपस्या' कहते हैं, वह मैंने नहीं की। सारा काम भगवान् ने किया। मनुष्य

के सामने कोई आदर्श है। उसके लिए उसे तपस्या करनी पड़ती है, तो उसका उसे भान नहीं होता। आज लोग कहते हैं बाबा तपस्या करता है, हजारों मील पैदल घूमता है। लेकिन बाबा के सामने एक बहुत बड़ा ध्येय है। उसके चिंतन का असाधारण आनन्द वह अनुभव करता है। यात्रा पैदल-पैदल चलती है, तो शुद्ध हवा मिलती और महान् ध्येय का चिंतन चलता है। वह ध्येय ही बाबा को घुमा रहा है। अगर हम घूमते, तो हमारे पाँव थक जाते। हम मन में यही सोचते हैं कि हमने त्याग नहीं किया। मन में 'सर्वोदय' का नाम लेते हैं और वही हमें मीठा लगता है। तपस्या का कोई भास नहीं होता। हमें बड़ा आनन्द मिलता है।

माणिक्यवाचकर ने भी इसी प्रकार का विचार लिख रखा है: "नॉन यार ? ...... नमः शिवाय एन पेटेन" अर्थात् मैंने कौन-सा तप किया ! केवल शिवाय नमः कहने का भाग्य मिला। वह भी कोई खास काम नहीं। उसमें मेरी कोई कर्तृत्वगारी नहीं। क्योंकि वह नाम ही इतना मधुर है कि मुँह में आकर बैठ जाता है और वह मीठा लगता है। "तेन आही अमुदगुआय तित्तु-क्युम शिव पेरुमान" अर्थात् वह नाम हमें शहद के समान, अमृत के समान मीठा लगता है। इसीलिए हम उसे लेते हैं। हम तो मीठे नाम का लड्डू रोज खा रहे हैं। और लोग समझते हैं कि तपस्या करते हैं। माणिक्यवाचकर पूछता है कि क्या मैं तपस्या कर रहा हूँ ? "नाने वंद, उललम् पुदुन्दु, एनै आट कोंडाय।" उसने खुद आकर मेरे हृदय में प्रवेश किया और वही काम कर रहा है। यही हालत बाबा की है। वही 'सर्वोदय' शब्द बाबा के मुँह में है। नहीं तो वह परमधाम में काम करता होता। किंतु सर्वोदय के काम ने उसे उठाया और वही घुमा रहा है। थकान नहीं आती। लोग कहते हैं, "तप, तप, तप !" पर बाबा कहता है: "जप, जप, जप।" यही जप लोक-हृदय में परिवर्तन लानेवाला है। हमारा विश्वास है कि ऐसी नयी-नयी तपस्या होती रहेगी, तभी प्राचीन काल का वैभव प्रकट होगा।

यह कैसा मानवीय जीवन ?

आज हालत यह है कि लोगों ने सारा धर्मकार्य मठों पर, मंदिरों पर सौंप

दिया है और समाज-सेवा का कार्य प्रतिनिधियों पर। वे कुछ लोगों को चुनकर भेजते और कहते हैं तुम काम करो। इस तरह समाज-सेवा भी दूसरे के लिए करते हैं और धर्म-सेवा भी। लोगों ने अपने हाथ में क्या रखा ? खाना, पीना, भोग भोगना, यह कोई मानवीय जीवन नहीं, यह तो जानवर का जीवन है। जब से राज्य-संस्था पैदा हुई और प्रतिनिधि चुनना शुरू हुआ, लोग और भी आलसी बनने लगे। जनतंत्र अभी नाममात्र का है। अभी लोगों में अपनी शक्ति का भान नहीं हुआ है, बल्कि भेद ही बढ़ गये हैं।

सेवा एक प्रतीक्षालय

दुनिया में आज व्यवस्था के जो सारे प्रकार चलते हैं, वे समाज पर अच्छा असर नहीं डालते। "सेवा के जरिये सत्ता प्राप्त करना और सत्ता के जरिये सेवा" एक बड़ा चक्र है। सेवा के लिए व्यवस्था और व्यवस्था के लिए सत्ता में लोग पहुँचते हैं। सेवापरायण लोगों को लगता है आपस-आपस में व्यवस्था हो, तो अच्छा। इसके लिए वे एक समिति बनाते हैं। पहले जिला-समिति और फिर प्रांतीय समिति। इस तरह धीरे-धीरे सेवा से व्यवस्था में पहुँचते हैं। फिर लगता है, अच्छी व्यवस्था तब तक न बनेगी, जब तक अपने हाथ में सत्ता नहीं आती। फिर इस गाँव से मदुरा और वहाँ से शेपैथी (मद्रास) जाते हैं। इस तरह सेवक पहचानते ही नहीं कि वे कहाँ-से-कहाँ गये।

किन्तु माणिक्यवाचकर ने इससे बिलकुल उल्टी राह दिखाई है कि कहाँ सेवा करनी चाहिए। सेवा करते-करते ध्यान में आया कि सेवा के लिए भक्ति चाहिए। बस, मुड़ पड़े भक्ति की ओर। फिर मालूम हुआ कि इसमें भी अहंकार है, यह काम का नहीं। इसलिए चल पड़े मुक्ति की ओर ! पहले वे सेवा में लगे, पर मालूम हुआ, भक्ति के बिना सेवा नहीं हो सकती। फिर मालूम हुआ कि जब तक अहंकार से मुक्ति न मिलेगी, भक्ति से कुछ न होगा।

सेवा एक बड़ा प्रतीक्षालय है। इसकी एक बाजू से गाड़ी जाती है व्यवस्था और सत्ता की ओर और दूसरी बाजू से भक्ति और मुक्ति की ओर। हिंदुस्तान में सेवकों की बड़ी विचित्र हालत है। कुछ सेवकों का मुख है व्यवस्था और सत्ता

की ओर। और मेरे जैसे पागल भक्ति और मुक्ति का रास्ता ही पकड़ते हैं। माणिक्यवाचकर की यह खूबी है कि उसे व्यवस्था और सत्ता का पूरा अनुभव था। उसने देखा कि उसमें से कुछ नहीं निकलता, सियार ही सियार रहते हैं। इसीलिए उसे त्याग दिया। एक बाजू का अनुभव लेकर, उसे निकम्मी समझकर निकल पड़े, इसलिए कि वे दूसरी बाजू की बहुत कीमत समझते हैं।

नवबाबू का नव उदाहरण

ऐसी ही एक मिसाल इन दिनों हुई है। उड़ीसा में नवकृष्ण चौधरी मुख्यमंत्री थे। सबका आग्रह था, इसलिए वे मुख्यमंत्री बने रहे। आखिर उन्होंने देखा, जन-समूह का हृदय बदलने की बात इसमें नहीं है। इस मार्ग से हम लोक-हृदय में परिवर्तन नहीं ला सकते। इसलिए उसे छोड़कर अब वे इस भक्ति और मुक्ति के मार्ग में लग गये। किसी प्रकार यह मन में कभी नहीं आना चाहिए कि मेरी सत्ता दुनिया में चले। दुनिया में सत्ता चलानेवाली एक ही शक्ति है, जिसे तमिल में 'आंडवन' कहते हैं (सत्ता चलानेवाला)। हम जब अपनी सत्ता चलाने की बात करते हैं, तो वह उसकी जगह लेने की बात है। इससे द्वेष और मत्सर पैदा होता है। मैं 'आंडवन' बनूँगा, तो क्या दूसरा चुप रहेगा ? वह भी चाहेगा कि मैं भी 'आंडवन' बनूँ। फिर दुनिया में 'आंडवन' ही 'आंडवन' बनेंगे। फिर जिनकी सेवा करनी है, उनकी ओर ध्यान ही न जायगा।

सियार और घोड़े

ग्रामदान ग्राम का जीवन बदलने का सही रास्ता है। उधर कानून का रास्ता है सीलिंग का ! पर क्या तुम ही सियार हो ? दूसरे सियारों को अक्ल नहीं ? लोगों ने पहले ही जमीन बाँट ली है। सरकार कानून की बात करती है, तो वह धमकी से घोड़े को सियार बनाती है। किन्तु माणिक्यवाचकर ने उल्टा किया था— सियार का घोड़ा बनाया। बाबा भी यही काम कर रहा है। वह तो बड़े-बड़े सियारों के पास जाता और दान माँगता है। उसके सामने सियारों की कुछ नहीं चलती। फिर वे दान देते और घोड़े का रूप लेते हैं।

हिंदुस्तान में आज दो काम चल रहे हैं : १. सियारों को घोड़े बनाना और

२. घोड़ों को सियार बनाना। आज जो बेदखलियाँ चल रही हैं, उन्हें रोकने की जिम्मेवारी सरकार की है। किन्तु ऐसे सियारों से भी बाबा जमीन प्राप्त करता है, यह बाबा की शक्ति है। वास्तव में ये दो प्रक्रियाएँ चल रही हैं। किन्तु कुछ लोग समझते हैं, दोनों एक-दूसरे को मदद करते हैं, पर ऐसी बात नहीं। एक है तमाचा मारने का प्रकार और दूसरा थपथपाने का। अम्मा बच्चे को धीरे-धीरे थपथपाती है। भूदान की प्रक्रिया यही है और जमीन छीनने की बात है तमाचा मारना। लोग ऐसे मूर्ख नहीं कि कुछ समझते ही नहीं। सरकार के जरिये काम करने के तरीके से लोक-हृदय में कभी भी परिवर्तन नहीं आ सकता। ऐसा सोचने-वाले दुनिया में चातुर्य बढ़ाना चाहते हैं। पर चातुर्य से समाज कभी उन्नत नहीं होता। समूह की उन्नति तभी होती है, जब हृदय में प्रेम और करुणा हो। इसलिए हमारा कहना है कि सत्ता में मत पड़िये और सेवा, भक्ति और मुक्ति का रास्ता लीजिये।

तिरुवादवूर (मदुरा)
५-१-'५७

समता में सुरक्षितता : ३८ :

यहाँ के कार्यकर्ताओं के हृदय के परमात्मा जाग गये हैं। उन्होंने तय किया है कि "ग्रामदान का नमूना यहाँ पेश करेंगे और सैकड़ों ग्रामदान हासिल करेंगे।" इसका अर्थ यह है कि इन्हें अब विश्वास हो गया है कि जनता इस कार्य को उठा लेगी। ये जनता के साथ एकरूप हो गये हैं। इस तरह जनता और कार्यकर्ताओं का एकरूप हो जाना सफलता का चिह्न है। जब दोनों एकरूप और एक-हृदय हो जाते हैं, तो कार्यकर्ता जो माँग करते हैं, उसे जनता पूर्ण करती है। जनता के हृदय में जो चीज छिपी रहती है, वही एकरूप बन इन कार्यकर्ताओं के मुख से निकलती है। जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सिजन मिलकर पानी बनता है, वैसे ही जनता और भक्तजनों के इकट्ठा हो जाने पर भगवान् प्रकट हो जाता है। जहाँ जन और सज्जन दोनों इकट्ठा हों, ईश्वर वहीं हैं। जन याने कुल जनता और सज्जन याने कार्यकर्ता। कई कार्यकर्ताओं ने यह

भी प्रतिज्ञा की है कि हम जनता की सेवा का ही कार्य करेंगे और राजनीति, पक्षनीति में न पड़ेंगे। यह भी बहुत बड़ी बात है। आखिर यह क्यों बना? स्पष्ट है कि जब जनता के साथ मनुष्य एकरूप हो जाता है, तो उसे अन्दर से आनन्द और रस की अनुभूति होती है।

एकता से जीवन

इसके विपरीत जो चुनाव के लिए खड़ा होता है, उसके हृदय के टुकड़े हो जाते हैं। मैं ज्यादा लोगों का प्रतिनिधि हूँ, कम लोगों का नहीं। इसमें जनता के दो टुकड़े हो गये। और जनता के टुकड़े हुए, ता ग्रामदान होता ही नहीं। ग्रामदान का अर्थ ही है कुल जनता एक बन जाना! आज की राजनीति टुकड़े करती है, परिणामस्वरूप 'जनशक्ति' पैदा ही नहीं होती। पार्टी याने 'पार्ट' या टुकड़ा! ये पक्ष छोटी-छोटी नदियाँ और नाले हैं, हम हैं समुद्र। जो कार्यकर्ता समुद्रमय बन जायेंगे, उन्हें राजनीति बिलकुल फीकी लगेगी। लोगों में यह शक्ति मौजूद है। एकता का जो भी सन्देश उन्हें सुनायें, उसे सुनने की उन्हें बड़ी दिलचस्पी रहती है। भारतीयर ने कहा था कि एकता से ही जीवन सध सकता है। जहाँ एक के दो टुकड़े हो गये, वहाँ जीवन क्षीण हो जाता है। '५१ विरुद्ध ४९' का विचार पश्चिम से आया है, हमारा यह विचार नहीं है। हमारा विचार तो है, सब मिलकर एक बात बोलो। हिन्दुस्तान में आज इसकी बहुत जरूरत है कि सब मिलकर एक हृदय बने। आज इन पक्ष-भेदों के कारण दुनिया बिलकुल बेजार है। कुछ लोग तो उससे अलग रहें और जनता के साथ एकरूप हो जायँ!

पूँजीवादी समाज के भ्रम

हम अपने काम को 'सर्वोदय' का कार्य कहते हैं। 'सर्वोदय' याने सबका भला। किसीका कम और किसीका ज्यादा भला नहीं—सबकी समान चिन्ता और सब पर समान प्यार! जैसे माँ का अपने सभी बच्चों पर समान प्यार रहता है, वैसे ही समान प्यार से समझा-बुझाकर समाज-रचना करें। कुछ लोग कहते हैं कि ऐसी समाज-रचना करने बैठेंगे, तो काम करने का उत्साह कम हो

जायगा। ज्यादा पुरुषार्थ करने पर ज्यादा सम्पत्ति मिलने की आशा रहती है, तो लोग ज्यादा परिश्रम करते हैं। पर ऐसी बात नहीं। घर में बाप ज्यादा काम करता ही है, वह क्या तभी ज्यादा काम करता है। जब उसे ज्यादा रोटी मिले? घर में कुल लोग प्रेम से सबका समान हक समझते हैं। परिवार में यह नहीं होता कि जो जितना कमायेगा, उतना ही खायेगा। कम-बेशी कमाने पर भी सबका उस पर समान हक रहता है। इस पर भी काम के लिए उत्साह रहता ही है।

इस पर कुछ लोग यह कहते हैं कि खैर, परिवार की तो अलग बात है। लेकिन समाज में ज्यादा कमाऊँगा तो ज्यादा भोगूँगा, ऐसा रहने पर ही पुरुषार्थ ज्यादा होगा। पर हम इस विचार को अत्यन्त अधार्मिक विचार समझते हैं। यह ठीक है कि अभी समाज में यह चलता है। पर समाज में ऐसी कई बुराइयाँ चलती हैं। आज गाँव-गाँव में इतनी गन्दगी चल रही है कि गाँव में प्रवेश करते ही नाक बन्द करनी पड़ती है। इसलिए क्या आप गन्दगी मंजूर करेंगे? इस गलत और अधार्मिक विचार से कर्म की नहीं, बल्कि संग्रह की प्रेरणा बढ़ती है और उसके परिणामस्वरूप आलस पैदा होता है, जिससे कर्म-प्रेरणा क्षीण ही होती है। इसलिए सबके समान भोग भोगने से कर्म-प्रेरणा कम होगी, यह एक वहम है। दुनिया में ऐसे कितने ही भ्रम फैले हुए हैं। बड़े-बड़े देशों को भ्रम है कि एटम, हाइड्रोजन जैसे बम बनायेंगे तो बचेंगे, युद्ध टलेगा और शांति होगी। खूब औषधि पीते चले जायेंगे तो बीमारी कम होगी, यह नम्बर दो का भ्रम है। अनुभव है कि जितने डॉक्टर बढ़ते जा रहे हैं, उतने ही रोग और दवा भी बढ़ती जा रही है। अगर हम ऐसे भ्रमों को मान्यता देने लगें, तो प्रगति ही कुण्ठित हो जायगी। ऐसे भ्रम तो पूँजीवादी समाज में कितने ही चले। जब तक मनुष्यों का इन भ्रमों से पिण्ड न छूटेगा, तब तक मानव को सच्ची आजादी का, सच्ची मुक्ति का अनुभव ही न आ सकेगा।

समता और सुरक्षितता

हम पूछते हैं कि अब ये ग्रामदान के गाँव सुखी होंगे या दुःखी? उनकी कर्म-शक्ति क्षीण होगी या बढ़ेगी? इस पर लोग कहते हैं, ग्रामदान हो जाय तो

वह अच्छा है। क्योंकि लोग समझ-बूझकर वह करते हैं। लेकिन यह समता बनाने का काम जबरदस्ती से न हो। हम भी कबूल करते हैं कि ऐसे काम जबरदस्ती से नहीं हो सकते, परन्तु भ्रम में से तो मुक्ति पाओ। "अगर विषमता मिटकर समता आयेगी, तो काम करने की प्रेरणा कम हागी" यह विचार छोड़ो। समझ लो कि समत्व अत्यन्त सुरक्षित है। यह तो किसान भी समझता है और मानता है कि खेत में कुछ गढ़े और कुछ टीले होते हैं। टीले पर से पानी बह जायगा, तो फसल नहीं आयेगी और गढ़े में पानी भर जायगा, तो फसल सड़ जायगी। टीले तोड़ गड्ढे में मिट्टी भरेंगे, तभी अच्छी फसल आयेगी। जो न्याय खेत में लागू होता है, वही समाज में भी लागू है। इसलिए सबसे बड़ी ताकत समानता में है। शक्ति का स्रोत ही समत्व में है।

तराजू बिलकुल समान है। दुनिया का कुल व्यवहार तराजू से चलता है। कुरान ने तराजू को बहुत महत्त्व दिया है। कहा है कि जिस भगवान् ने सूर्य, चन्द्र पैदा किये, उसीने तराजू भी पैदा किया। कुल दुनिया का व्यापार-व्यवहार तराजू से चलता है। तराजू याने समत्व। सारे व्यवहार के मूल में समत्व रहा है। कोर्ट में जो न्याय चलता है, वह भी समत्व के आधार पर चलता है। ये सारे न्याय-मंदिर टूट जायँ, अगर समत्व न रहे। सूर्य हरिजन के घर में भी पहुँचता है और ब्राह्मण के घर में भी! गरीब की झोपड़ी में जाता है और अमीर के महल में भी! वह भेदभाव नहीं करता। सबके साथ समान बरतता है। कल अगर वह किसीके घर में ज्यादा और किसीके घर में कम जाय, तो दुनिया खतम ही हो जाय। उसका सब पर समान प्यार है। परमेश्वर का पानी समत्व रखता है। वह गाय और शेर में फर्क नहीं करता।

सारांश, जो समानता पानी में, सूर्यनारायण में और तराजू में है, वही हमारे जीवन में भी आनी चाहिए। समानता हमारे समाज में आयेगी, तो नुकसान होगा, यों समझकर हम क्यों डरें? गरीब और अमीर दोनों नंगे आये और दोनों नंगे ही जायँगे। ईश्वर की दुनिया में समत्व के ऐसे कानून हैं कि किसीका कुछ बिगड़ता नहीं। तब समत्व से बिगड़ेगा, ऐसी कल्पना करना कितना घोर अज्ञान है! समत्व सुरक्षित है, चिंता करने का कोई कारण नहीं। बैलगाड़ी

चढ़ान में भी खतरे में है और उतार में भी, समान रास्ता आ जाने पर तो गाड़ी सुरक्षित ही है। फिर तो गाड़ीवाला आराम से सोता रहता है और बैल ही गाड़ी खींचकर ले जाता है।

संग्रह से आलस बढ़ता है और दूसरों को पैसे लूटने की भी प्रेरणा मिलती है। यह सारा दुष्ट चक्र है। इसके आगे-पीछे ऊपर-नीचे सब दूर खतरा है। जहाँ समानता है, वहाँ सुरक्षितता और शान्ति है। हमारे शरीर को ठीक खाना नहीं मिलेगा, तो भी वह क्षीण होगा और उसे जरूरत से ज्यादा मिलेगा, तो वह बीमार पड़ेगा। इसलिए शरीर की रक्षा के लिए समान खाना चाहिए। जहाँ समानता आ गयी, वहाँ हर तरह से सुरक्षितता है।

चंजीनगरम् (मदुरा)
७-१-'५७

भोग को योगमय बनाना है : ३९ :

अभी मैं जो बोलने को सोच रहा था, वह कुल विचार इस भजन में आ गया : "भोग मेल योगत्तीन पोलिने।" याने भोग ही योगमय करना है। यही हमारी सर्वोदय-योजना का सार है। अमेरिका में उत्पादन-वृद्धि के काम चलते हैं। लेकिन उनकी सारी योजना भोग की है, उसमें योग कुछ नहीं। आज अमेरिका में धन बहुत है। जमीन, सोना, कारखाने, विद्यालय, कॉलेज बहुत हैं। साथ ही स्थल-सेना और जल-सेना भी बहुत है, लेकिन शांति नहीं, प्रेम नहीं। उनका आदर्श हमें नहीं चाहिए। अगर हम यहाँ उस प्रकार की भोग की योजना करेंगे, तो मार खायेंगे। वह योजना न तो इस देश में बन सकेगी और न उससे उसकी अपनी सभ्यता ही प्रकट होगी। इसलिए हम ग्रामदान के कार्य में ऐसे विषय ला रहे हैं, जिनसे परमार्थ और व्यवहार एकरूप हो जाय। "मैं-मेरा छोड़ना चाहिए", यह बात वेदांत हमेशा कहता है। अगर तुम योग चाहते हो, तो तुम्हें भोग छोड़ना होगा—यह हिंदुस्तान में अब तक चला। आग्रहपूर्वक कहा गया कि भोग की परवाह मत करो, योग करो। इससे ठीक बिलकुल उल्टी चीज अमेरिका

में शुरू है। वे योग नहीं जानते। भोग और जीवन-स्तर बढ़ना ही उन्हें बहुत प्रिय है।

किसान सेवा का दावा नहीं करता

आज किसान खेती में मेहनत करता है, तो स्वार्थी माना जाता है, सेवक नहीं। वह भी अपने को सेवक नहीं मानता। उल्टे सरकारी नौकरों की सेवा मानी जाती है। वे दावा करते हैं कि हम सेवक हैं, लेकिन सबसे बुनियादी सेवक किसान हैं। लेकिन वह दावा नहीं करता कि मैं सेवक हूँ। क्योंकि वह समाज के लिए उत्पादन करता है, यह भावना नहीं रखता। बल्कि अपने लिए उत्पादन करता हूँ, यही उसकी भावना होती है। जो उत्पादन होता है, उसे वह बेचता और पैसा हासिल करता है। बेचने में दूसरों की सेवा का हेतु नहीं रहता। सेवा हो जाती है, पर विचार सेवा का नहीं रहता। इसलिए रात-दिन सेवा-कार्य करते हुए भी उसे सेवकत्व का अनुभव नहीं है। किन्तु ग्रामदान के गाँवों में किसान कहेगा कि मैं अपने गाँव के लिए सब कुछ कर रहा हूँ, अपने लिए नहीं। वह काम तो पहले जैसा करेगा, पर उस काम को सेवा का रूप आ जायगा, जब कि पहले भोग का रूप था। ग्रामदान में उसे भोग तो मिलेगा ही, लेकिन वह सबको मिलेगा। इसीलिए वह भोग योग बन जायगा।

आयुर्वेद और ऐलोपैथी के लक्ष्य भिन्न

हमारी योजना में केवल उत्पादन की बात नहीं। उत्पादन तो होता ही है! अगर वह न करना हो, तो ग्रामदान की जरूरत ही क्या है? याने खेती तो सब मिलकर करेंगे और उत्पादन बढ़ायेंगे ही, पर यह सारा ऐसे ढंग से होगा, जिससे आत्मा का विकास हो। उसके लिए जो भोग बाधक हो, उसे न करेंगे। हरएक भोग आत्मा के विकास के लिए बाधक है, यह मानने का कोई कारण नहीं। कुछ भोग योग की बराबरी में आते हैं, जो हमें करने हैं। "भोगो रोगस्य कारणम्" दुनियाभर का अनुभव है कि उत्पादन बढ़ता है और उसके साधन भी बढ़ते हैं। डॉक्टर बढ़ रहे हैं और दवाइयाँ भी। साथ-साथ रोगी भी बढ़ रहे हैं, कारण समाज भोग-परायण बन गया है।

लोग आरोग्य भी भोग के लिए चाहते हैं। किन्तु हमारे आयुर्वेद-शास्त्र में लिखा है कि "परमेश्वर-प्राप्ति के लिए बुद्धि निर्मल होनी चाहिए। बुद्धि निर्मल रहे, इसलिए शरीर भी निर्मल होना चाहिए। अतएव शरीर साफ करने के लिए आयुर्वेद-शास्त्र का आरंभ हुआ।" याने भारत की आयुर्वेदिक पद्धति देहारोग्य, बुद्धि-शुद्धि और ईश्वर-सिद्धि के लिए है। ऐलोपैथी आदि पद्धतियाँ तो पश्चिम से आयी हैं। वे कहते हैं कि शरीर स्वस्थ रहेगा, तभी हम दुनिया का आनन्द भोग सकेंगे, नहीं तो नहीं। आयुर्वेद-शास्त्र में और ऐलोपैथी में इतना फर्क पड़ता है! एक का उद्देश्य है, शरीर-शुद्धि और बुद्धि-शुद्धि द्वारा परमेश्वर प्राप्ति और दूसरे का है, शरीर के आरोग्य से भोग-प्राप्ति या आनन्द लूटना। उन भोगों में से ही रोग पैदा होते हैं, क्योंकि उनमें शुद्धि का खयाल नहीं रहता।

यंत्रों का मर्यादित उपयोग

आज हम चर्चा करते थे कि सर्वोदय-योजना में ग्रामोद्योग कहाँ तक चलेगा, खादी चलेगी या नहीं, हाथ-कागज रहेगा या नहीं, अंबर चरखा चलेगा या सादा चरखा, बिजली का उपयोग कहाँ होगा? कुएँ से पानी खींचने में बिजली लगानी चाहिए या नहीं? आहार में नमक-मिर्च हो या नहीं? ऐसी पचासों चर्चाएँ हुईं। समझना चाहिए कि सबमें योग होगा। हमारी योजना में भोग के साथ योग होगा। अब चरखा चलेगा या तकली चलेगी या अंबर, यह स्वतंत्र विषय है। जिस देश में जनसंख्या ज्यादा और खेती कम है, वहाँ खेती में यंत्र न चलेगा। वहाँ भी यंत्र चल सकता है, अगर बैलों को खाना तय किया हो। लेकिन बैलों की रक्षा करनी हो, तो यंत्र का उपयोग न होगा। जिस देश में एक व्यक्ति के पीछे औसतन १५ एकड़ जमीन है, वहाँ यंत्र खेती में भी आ सकते हैं। फिर भी कुछ काम हाथों से करना होगा। उसके बिना हाथ का समाधान न होगा। यंत्र हर समाज में योग्य या अयोग्य हैं, यह नहीं कह सकते। यह समय, परिस्थिति और देश-काल के मान पर आधृत है।

यंत्र के कई प्रकार होते हैं। उनमें मनुष्य का संहार करने के काम आनेवाले

संहारक यंत्र हमें बिलकुल नहीं चाहिए। लेकिन कुछ यंत्र ऐसे भी होते हैं, जो संहार नहीं करते और उत्पादन भी नहीं, सिर्फ समय बचाते हैं। जैसे—मोटर, रेलवे, हवाई जहाज आदि। ऐसे यंत्र हमें उचित मर्यादा में चाहिए। बाबा तो पैदल चलता है, पर वह रेल, हवाई जहाज अवश्य चाहता है। इतना ही नहीं, वह तो इन यंत्रों में सुधार भी चाहता है। किंतु उसमें मर्यादा भी होनी चाहिए। जहाँ उचित हो, वहीं उनका उपयोग किया जाय। पाँव की मदद के लिए साइकिल आयी है, पाँव के बदले नहीं। इसलिए जहाँ पाँव से जा सकते हैं, वहाँ साइकिल का उपयोग कभी न करना चाहिए। कागज का धंधा किसी समाज में करेंगे, तो किसी समाज में नहीं। परंतु मान लीजिये, हमें हाथ-कागज चाहिए। संभव है, 'पल्प' बनाने का काम हम मशीन से करेंगे। बाकी काम हाथ से करेंगे। ये सारे तफसील के विषय हैं, जिनमें समय-समय पर फर्क करना होगा।

उत्पादक यंत्र दो प्रकार के होते हैं : (१) कुछ मनुष्य को मदद देते हैं, तो (२) कुछ मनुष्य के शरीर को क्षीण करते हैं। उसे बेकार बनाते, उसके आनंद को क्षीण करते और उसकी बुद्धि के विकास पर रोक लगाते हैं। पहला मनुष्य का पूरक है, तो दूसरा मारक है। जो मनुष्य के पूरक हैं, उन्हींको हम चाहते हैं और मारकों को नहीं। लेकिन उत्पादक यंत्रों में भी कौनसा मारक है और कौनसा पूरक, इसके बारे में हमेशा के लिए एक निर्णय नहीं किया जा सकता। हम जो निर्णय देंगे, वह उसी काल और उसी स्थल के लिए लागू होगा। स्थल बदलेगा, तो यंत्र भी बदलेंगे। काल बदलेगा, तो भी यंत्र बदलेंगे और समाज बदलेगा, तो भी यंत्र बदलेंगे। परस्पर चर्चा के लिए गुञ्जाइश रहेगी। लोग भिन्न-भिन्न अभिप्राय बतायेंगे। हमारा अभिप्राय दूसरों से भिन्न रहेगा, तो दूसरों का हमसे भिन्न। भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से समाज बदलेगा, पर बुनियादी चीज एक ही रहेगी। वह यही कि हमें भोग को योग बनाना है। दोनों में विरोध पैदा नहीं करना है। भोग में प्रतियोगिता होती है। भोग के परिणामस्वरूप चित्त चंचल रहता है।

ये ही मर्यादाएँ हैं। इन्हीं मर्यादाओं में हम सर्वोदय का काम करना चाहते हैं।

सर्वोदय-विचारवालों को इस पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। हमें ऐसे ढंग से काम करना चाहिए कि भोग सबको मिले और भोग का योग बने।

आश्रम की एक मार्गदर्शक घटना

हमारे आश्रम में एक लड़का चोरी से बीड़ी पीता था। वह पहले छात्रावास में रहता था। वहीं उसे यह आदत पड़ गयी थी। आश्रम में वह बहुत अच्छा काम करता था, फिर भी उसने यह बात छिपा रखी थी। चोरी से बीड़ी पीता रहा। आश्रम के एक भाई ने उसे देखा। लड़का घबड़ा गया। उसे मेरे पास लाया गया। मैंने देखा, बेचारा घबड़ा गया था। मैंने उससे कहा : "घबड़ाओ नहीं। बड़े-बड़े लोग भी बीड़ी पीते हैं। तुमने कुछ बुरा काम नहीं किया। बुरी बात यह है कि यह काम चोरी से किया। इसलिए आज से मैं यहाँ एक कोठरी रखूँगा, जिसमें तुम बीड़ी पी सकते हो। सप्ताह में जितने चाहें, उतने बंडल तुम्हें दूँगा।" आश्रम के कुछ भाइयों को यह तरीका अजीब लगा। तब मुझे व्याख्यान देकर समझाना पड़ा : "बीड़ी पीना निःसंशय गलत है। हम बीड़ी नहीं पीते, यह वह भी जानता है। उसे आदत पड़ गयी, इसीलिए वह पीता है। किंतु छिपाने की आदत खराब है और दुनिया में खुलेआम पीना भी गलत है। इसलिए उसे आदत छोड़ने का मौका देना चाहिए। यह अहिंसा का विचार है। अहिंसा में सहन-शक्ति होती है। इसलिए छोटी-छोटी चीजों में आग्रह न होना चाहिए। आग्रह इसका है कि हम ऐसा कोई काम न करें, जिससे दूसरों को तकलीफ हो, किसी व्यक्ति की सत्ता बढ़े, किसीका धंधा छीना जाय, भोग बढ़े।"

पुरीली पट्टी (मदुरा)
९-१-'५७

इस पूर्ण-विराम नहीं, प्रश्न-चिह्न : ४० :

ग्रामराज और सर्वोदय-स्थापना के विचार का हम बोझ न मानें। इसे कुल देश उठा लेगा। हम कहीं करेंगे, तो थोड़ा-सा नमूने के लिए करेंगे। मान लीजिये, पाँच लाख गाँव ग्रामदान में मिल गये, तो कुछ गाँव सरकार लेगी, कुछ गाँव अपने सर्वोदयवाले, कुछ कांग्रेसवाले, तो कुछ गाँव कम्युनिस्ट लेंगे। किंतु याद रखें कि जहाँ लाखों ग्रामदान मिलते हैं, वहाँ कम्युनिस्ट और कांग्रेस आदि भेद ही मिट जाते हैं, क्योंकि सबकी मंशा पूरी होती है। सरकार का भी वही काम होता है, जो सर्वोदय का है। सरकार भी सर्वोदय चाहती है और कांग्रेस भी।

ग्रामदान का स्रोत अखंड बहे

लेकिन सवाल इतना ही है कि कितना हो सकेगा ? इसलिए जब लाखों ग्रामदान मिलते हैं, तब यह विश्वास होगा कि यह हो सकता है। तब उन गाँवों में सर्वोदय और ग्रामराज की स्थापना करने का बहुत बोझ हम पर न रहेगा। किंतु अगर ग्रामदान का स्रोत खंडित हुआ और थोड़े से सौ-दो सौ ग्रामदान लेकर बैठ गये, तो उसका बोझ हमारे सिर पर आयेगा। लाखों ग्रामदान हासिल करते चले जायँगे, तो हमारे सिर पर नमूने के गाँव दिखाने का ही बोझ रहेगा। लेकिन अगर सौ-दो सौ गाँव में संतोष मानेंगे और वह प्रवाह खंडित करेंगे, तो बहुत बड़ा भारी बोझ हमारे सिर पर आ जायगा।

ग्रामराज्य केवल अक्ल का सवाल

मान लीजिये कि उन गाँवों को अच्छा बनाने में हम नाकामयाब या मूर्ख साबित हुए, तो सारा आंदोलन निकम्मा साबित हो जायगा। ग्रामदान सद्भाव से होता है, हृदय-परिवर्तन से होता है। 'ग्रामराज्य' में तो अक्ल का ही सवाल आता है। हमारी अक्ल कम हो और हम सौ-दो सौ ग्रामदान लेकर बैठ जायँ और लोगों से कहने लगे कि उसका नमूना देखो, तो उन गाँवों की ताकत की मर्यादा

हमारी ताकत की मर्यादा में आ जायगी—उसकी गति हमारी अक्ल की मर्यादा में आ जायगी। इसलिए हम तो केवल नमूने के दस-पाँच गाँव करते हैं, तो भी हमारा काम पूरा होता है। अगर हम हजारों ग्रामदान हासिल करते चले जाते हैं, तो जगह-जगह लोग अपनी अक्ल से प्रयोग करेंगे। कई जगह हमारी अक्ल भी ज्यादा अच्छी साबित होगी। फिर ऐसे हजारों नमूनों में से एक निश्चित नमूना मिल जायगा कि किस तरह गाँव का विकास किया जाय। फिर उसका विज्ञान बनेगा। वह एक शास्त्र बनेगा। शास्त्र तब बनता है, जब हजारों लोगों की अक्ल एक प्रयोग में लगती है। कोई पाँच-दस-पचास की अक्ल में सब कुछ नहीं आता। इसलिए मेरा मुख्य विचार यह है कि ग्रामदान-प्राप्ति का स्रोत गंगा की तरह बहते रहना चाहिए।

हम प्रश्न खड़े करेंगे

कहने का तात्पर्य यह है कि हम मसले हल करनेवाले नहीं हैं, नये मसले पैदा करना हमारा धंधा है। हम असंख्य ग्रामदान हासिल कर सरकार, कांग्रेस और कम्युनिस्टों के सामने प्रश्न खड़ा करेंगे और कहेंगे कि करो इसका हल! हम होंगे, प्रश्न पैदा करनेवाले और दुनिया होगी, ईश्वर की मदद से प्रश्न हल करनेवाली। लेकिन अगर हम ही प्रश्न के हल करनेवाले हो जायँ, तो देश का नुकसान करेंगे। फिर सब लोग कहेंगे कि आप लोग प्रयोग करें। आपके प्रयोग यशस्वी होंगे, तो आपके पीछे हम सब आ जायँगे। फिर सर्वोदय के लिए सरकार से कहेंगे, तो वह कहेगी कि विचार तो अच्छा है। लेकिन विनोबा वह प्रयोग करता है, उसका अच्छा परिणाम आयेगा, तो उसे अपनायेंगे। मानो सर्वोदय विनोबा के बाप की रियासत है। उसे सँभालना विनोबा का ही काम है। इसलिए यद्यपि हमारा यह विचार है कि चंद गाँव में हम नमूना जरूर पेश करेंगे, लेकिन मुख्य कार्य रहेगा ग्रामदान हासिल करना और देश के सामने बड़ा प्रश्न-चिह्न खड़ा करना। हम पूर्ण-विराम नहीं, प्रश्न-चिह्न हैं, यह मुख्य वस्तु हमें ध्यान में रखनी चाहिए।

पुलीनीपट्टी (मदुरा)
३-१-'५७

करुणा के काम में धार्मिक भेद, जाति-भेद, पक्ष-भेद, सब मिट जाने चाहिए। ये सब भेद मनुष्य मिटा सकता है, लेकिन एक भेद मिटाना मुश्किल है और वह है, व्यक्तिगत भेद ! दो भाई हैं। चाहे वे एक ही घर में रहते हों और एक ही पार्टी में हों। परन्तु अगर उनके मन में परस्पर द्वेष, मत्सर होगा, तो दोनों एक काम में न लग सकते। मत्सर और द्वेष का मनुष्य पर इतना प्रभाव होता है कि वह मानवता के काम से भी उसे रोकता है। जहाँ इस प्रकार का व्यक्तिगत द्वेष और मत्सर है, वहाँ काम नहीं बनता। बाकी दूसरे अनेक प्रकार के सारे भेद करुणा के कार्य में लुप्त हो जाते हैं। लेकिन करुणा का कार्य ऐसा तेजस्वी होना चाहिए कि उसमें व्यक्तिगत मत्सर, द्वेष और भेद मनुष्य छोड़ दे।

ग्रामदान की तेजस्वी करुणा

भूदान की करुणा में इतनी सामर्थ्य नहीं है, पर ग्रामदान की करुणा में वह है। यह बहुत बड़ी करुणा है, जहाँ सारे गाँव के लोग अपनी मालकियत छोड़कर गाँव समर्पित करते हैं। कोई गरीब, भूखा सामने आने पर अपनी मालकियत कायम रखकर उसे थोड़ा-सा देना सामान्य करुणा है। किन्तु अपनी मालकियत ही मिटा देना, उसे अपने साथ अपने-जैसा बना लेना करुणा की परिसीमा हो जाती है। कुचेलन (सुदामा) जब भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने गये, तो कृष्ण ने न सिर्फ उनका स्वागत किया और न सिर्फ भोजन दिया, बल्कि जिस आसन पर लक्ष्मी के साथ भगवान् स्वयं बैठे थे, उस पर उन्हें बैठाया। यहाँ करुणा की सीमा हो गयी। माणिक्यवाचकर ने इसका वर्णन किया है कि "भगवान् मुझे शिव बनाता है और मुझ पर प्यार करता है।" भगवान् कभी यह नहीं कहते कि "मैं 'शिव' और तुम 'अशिव" हो, तुम हमारे भक्त हो, इसलिए हम

तुम पर कृपा करते हैं। वे तो हमें भी शिव ही बना देते हैं।" जहाँ ऐसी परम करुणा प्रकट होती है, वहाँ सारे व्यक्तिगत भेद, मत्सर, द्वेष खतम हो जाते हैं। फिर जातिभेद, पक्षभेद जैसे मामूली भेद तो खतम होते ही हैं।

बलिदान के बिना यज्ञ असंभव

मदुरा जिले के लोगों को ग्रामदान के इस कार्य में ढिलाई न करनी चाहिए। जैसे कावेरी का प्रवाह सतत बहता है, वैसे ही सतत कार्य जारी रखना चाहिए। बाबा का काम इसीलिए बनता है कि वह अखंड चलता है। इससे लोगों के सामने एक ज्योति, नंदा-दीप अखंड जलता ही रहता है। इसीलिए जाग्रति होती है। जब जगन्नाथन्‌जी ने हमसे कहा कि "आप रोज दुबारा यात्रा करते हैं, तो स्वागत आदि में हमारा समय ज्यादा जाता है। अगर आप एक गाँव में दो दिन ठहरें और फिर आगे जायँ, तो काम खूब बढ़ेगा।" बाबा को एक जगह बैठाने की उनकी यह युक्ति थी! किंतु मैंने कहा कि "काम बढ़े या न बढ़े, बाबा को कोई परवाह नहीं। बाबा की यात्रा खंडित नहीं हो सकती। बाबा खड़ा होगा, तो सोये हुए लोग उठ बैठेंगे। बाबा चलने लगेगा, तो लोग खड़े होंगे। बाबा दौड़ने लगेगा, तो लोग चलने लगेंगे। बाबा जब मरेगा, तब वे जीयेंगे। बाबा भलीभाँति समझ गया है कि इस काम में उसे अपने शरीर की आहुति देनी होगी। बिना आहुति, बिना बलिदान के यज्ञ बनता ही नहीं। वह आहुति होगी, तभी जीवन जाग्रत हो जायगा।

तोरंगकुरुनी (त्रिची)
१०-१-'५७

क्या अपना 'नसीब' खुद भोगें ? : ४२ :

हिन्दुस्तान के मानसिक विचार में एक बहुत बड़ी गलतफहमी है। वे समझते हैं कि जो सुख-दुःख भोगना पड़ता है, वह पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है। इसलिए अपना-अपना नसीब सब भोग लें। हर मनुष्य का नसीब अलग-अलग होता है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन कुछ नसीब समान भी होते हैं। हम एक गाँव में जन्म पाते हैं, क्योंकि हमारा कुछ नसीब समान है। हम एक ही मनुष्य-जाति में जन्म पाते हैं, क्योंकि हमारा कुछ नसीब समान है। नसीब जो बनता है, वह केवल व्यक्तिगत नहीं बनता।

नसीब भी बहुतों का समान

'भाग्य' या 'नसीब' पूर्व-कर्म है, जो हमने पहले ही कर दिया है। किंतु दुनिया में हम देखते हैं कि बहुत-से काम अकेले-ही-अकेले नहीं करते, सब मिलकर करते हैं। व्यापार करते हैं, तो कुछ लोग मिलकर करते हैं। परिवार में अनेक लोग इकट्ठा होकर काम करते हैं। इसलिए हर काम अलग-अलग ही है, सो नहीं। कुछ काम ऐसे हैं, पर बहुत से काम ऐसे भी हैं, जो मिल-जुलकर होते हैं। हम सबने मिल-जुलकर खेत में काम किया या एक घर में खाना पकाया, तो वह कमाना और पकाना, दोनों का सामूहिक रीति से हुआ। कमाने में जो अच्छाइयाँ और बुराइयाँ होंगी, वे सब लोगों की मानी जायँगी। फिर भी खाने का काम हम अलग-अलग करते हैं। मेरा भाई ठीक खाता है और मैं जरूरत से कुछ ज्यादा। यह मैंने व्यक्तिगत कार्य किया, जिससे मेरा पेट दुखता है, मेरे भाई का नहीं। कमाई और रसोई सबने एक साथ की, परन्तु खाने में सब अलग-अलग रहे। इस तरह कुछ काम मैं (व्यक्ति) करता हूँ और उसका फल मुझे व्यक्तिगत भुगतना पड़ता है। पर बाकी बहुत सारे काम हम मिलकर सामूहिक करते हैं। इसी तरह हमारे पूर्व-जन्म के काम भी बहुतों के समान हैं और इसलिए बहुतों का नसीब समान है।

सहानुभूति का अभाव बुरा काम

इस तरह स्पष्ट है कि जब हम एक गाँव में जन्म पाते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हम सब गाँववालों का कुछ नसीब एक-सा है; नहीं तो एक ही मानव-जन्म में, एक ही स्थिति में, एक ही काल में और एक ही योनि में हम क्यों जन्मे ? इसका मतलब यही है कि हम सबका पहले कुछ सामूहिक नसीब था। इसलिए हम सबका अलग-अलग नसीब है, हम दूसरों का क्यों सोचें, यह खयाल ही गलत है। खैर, मैंने जो ज्यादा खा लिया, वह व्यक्तिगत कार्य हो गया। पर उसके फल की राह अगले जन्म तक देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसी जन्म में मेरा पेट दुखता है। क्या मेरा भाई, जिसने बराबर खाया था, यह कहता है कि उसने ज्यादा खाया, इसलिए पेट दुखता है तो दुखने दो; मैं उसे क्यों मदद दूँ ? नहीं, वह मानता है कि अपना और अपने भाई का बहुत-सा नसीब एक है, थोड़ा-सा अलग है। हम अगर उसे मदद नहीं करते, तो उसके ज्यादा खाने से भी ज्यादा बुरा काम करते हैं। मेरा यह व्यक्तिगत बुरा काम हो जायगा। उसका तो पेट दुखने का काम खतम हो गया, अगले जन्म में भुगतने का कुछ बाकी नहीं रहेगा। लेकिन मैंने अपने भाई को मदद न करने और उसके प्रति सहानुभूति न रखने का जो बुरा काम किया, उसका फल दूसरे जन्म में मुझे भुगतना ही पड़ेगा।

इसी तरह आप एक गाँव में रहते हैं और अपने घर में सुखी हैं। लेकिन आपके पड़ोस में एक दुःखी रहता है, उसकी ओर आप सहानुभूति नहीं रखते, तो यह आपका व्यक्तिगत बुरा काम होगा। उसका फल आपको ही भुगतना पड़ेगा। पूर्व-जन्म में किये बुरे कामों के परिणामस्वरूप वह तो दुःख भुगत ही रहा है, वह तो पुरानी बात हो गयी। किन्तु अगर आप उसके दुःख में सहानुभूति नहीं रखते, तो वह आपका नया बुरा काम हो जायगा। इसलिए हिन्दुस्तान में यह जो विचार चलता है कि सबका अलग-अलग नसीब है, इसलिए सब अपना-अपना भुगत लें, यह बहुत ही निष्ठुर विचार है। क्या आप इस प्रकार का विचार अपने भाई, बहन, माता, पिता और पत्नी के लिए भी करते हैं ? उनके दुःख में

मदद करने की कोशिश नहीं करते ? तब गाँव के ही पड़ोसी के लिए ऐसा क्यों सोचते हैं ? वास्तव में यह बिलकुल ही विचारहीनता है। इस तरह कभी न सोचना चाहिए। यह विचार ही गलत है। यह अनुभव के विरुद्ध की बात है।

दुःख की सामूहिक जिम्मेवारी

जो चीज अनुभव में आती है, वह शास्त्र-वचन में देखने को नहीं मिलती। एक शख्स ने बीड़ी पीकर उसे किसी घर पर फेंक दिया। घर को आग लगी और धीरे-धीरे सारा गाँव सुलग गया। इस तरह जब एक मनुष्य की गलती के कारण सारे गाँव को दुःख भुगतना पड़ा, तो आपका यह विचार कि "जिसकी गलती हो, वह भोगे" कहाँ गया ? यह ठीक है कि कुछ काम ऐसे हैं, जो हरएक को अलग-अलग करने होते हैं और उनके परिणाम अलग-अलग भुगतने पड़ते हैं। लेकिन वे काम शारीरिक होते हैं। मैंने अपना खा लिया, पी लिया, सो लिया। पर मैंने खा लिया और मेरा पेट दुखा, इतने से काम खतम नहीं होता। माँ से पूछा जायगा कि बच्चे को अक्ल नहीं थी, तो ज्यादा खा लिया, पर तुमने उसे क्यों नहीं रोका ? उसका ज्यादा खाना भी अकेले का काम नहीं, उस गलती की जिम्मेदारी माँ की भी है। मान लीजिये कि हम खाने को बैठे। परोसनेवाला आग्रह करता है कि "ज्यादा खाना खाइये।" पहले तो हम इनकार करते हैं, पर उसके आग्रह के वश होकर ज्यादा खा लेते हैं, फिर पेट दुखता है और दो दिन के बाद मर जाते हैं। ऐसी स्थिति में मुझे तो अपनी गलती का फल मिल गया, पर जिन्होंने प्रेमपूर्वक खिलाया, उनका भी मेरी मृत्यु में हाथ है। इसलिए जो व्यक्तिगत गलती मानी जाती है, उसमें भी दूसरों की गलती होती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके बहुत से काम सामूहिक होते हैं। इसलिए उस सामूहिक कार्य में बहुत थोड़ा हिस्सा व्यक्ति का होता है और वह व्यक्तिगत हिस्सा शारीरिक और मानसिक ही होता है। उसमें भी दूसरे का हिस्सा होता है, फिर भी उसकी खुद की जिम्मेवारी ज्यादा रहती है। अगर हम यह अच्छी तरह समझ लें, तो पुराने कर्म की बातें कर कभी निष्ठुर नहीं बनेंगे। वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य-हृदय को निष्ठुरता सह्य नहीं। अपने पड़ोसी के लिए

वह निष्ठुर बनता है, पर उसके हृदय को वह चूभता रहता है। फिर अपने दिल का समाधान करने के लिए पुराने जन्म के कर्म की बातें करता है। यह अपने को ठगने की बात है। इस तरह मनुष्य अपने को ही ठगने की कोशिश करता है, उससे कोई समाज नहीं ठगा जाता !

सचमुच हमारे समाज की यह बड़ी निष्ठुरता है कि हम अपने पड़ोसी की चिंता नहीं करते। मजा यह कि इधर अद्वैत से कोई कम बात बोलते ही नहीं ! बिलकुल मनुष्य, प्राणी, पत्थर, पेड़ आदि सब एक हैं—बोलने में तो इतना बोल देते हैं कि उससे ज्यादा कोई तत्त्वज्ञान में बोल ही नहीं सकता। धर्म की बड़ी-बड़ी किताबें बंधन में बँधी रहती हैं। बहुत बड़ा धार्मिक ग्रन्थ हो, तो उसे कपड़े में रस्सी से बाँधकर रखेंगे। किन्तु कोई भी उन्हें अपने हृदय में, अपने जीवन में लाने की बात ही नहीं सोचता। लोगों का यहाँ तक खयाल हो गया है कि इन धर्म-ग्रन्थों का पाठ कर लेनेभर से हम पापों से मुक्त हो जायँगे। पाप से मुक्ति पाने के लिए पुण्यमय जीवन बनाने की जिम्मेदारी उठाने की उन्हें चिन्ता ही नहीं। इस तरह अपने को ठगने के कई उपाय मनुष्य ने ढूँढ़े। अगर वास्तव में धर्म बढ़ता होता, तो सुख बढ़े बिना रहता ही नहीं। जहाँ धर्म बढ़ता है, वहाँ दुःख हो ही नहीं सकता, क्योंकि धर्म में एक-दूसरे के लिए मर मिटते हैं। जहाँ एक-दूसरे के लिए इतना प्यार है, एक-दूसरे के लिए मर मिटने को तैयार हैं, वहाँ दुःख का दर्शन ही नहीं होता। इसलिए समझना चाहिए कि आज हमारे लिए धर्म का तो सिर्फ नाम है, वास्तव में आचरण में धर्म नहीं।

आज पोंगल (मकरसंक्रमण के उत्सव) का दिन है। अच्छाई बढ़े और बुराई घटे, तभी वह पोंगल है। नहीं तो अच्छाई घट जाय और बुराई बढ़े, तो वह पोंगल नहीं। इसलिए सज्जनता जितनी फैलेगी, उतना ही उत्तम ग्रामदान होगा, इसमें कोई शक नहीं। यहाँ यद्यपि कार्यकर्ता कम हैं, फिर भी ग्रामदान अवश्य होंगे; क्योंकि इस विचार के पीछे ईश्वर का बल है, धर्म का बल है और आधुनिक विज्ञान का भी बल है।

कुपेच्चपेट्टी (त्रिची)

१४-१-'५७

इस संस्था ('रामकृष्ण कोडिले') का नाम एक महापुरुष के नाम पर रखा गया है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने इस देश के एक छोर में जन्म लिया और यह स्थान देश के दूसरे छोर में है। उनके नाम से यह विद्यालय या मठ चल रहा है। रामकृष्ण परमहंस बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे। पढ़ाई पर उनका विश्वास भी नहीं था। वे आत्मा के शिक्षण में श्रद्धा रखते थे। वे मानवमात्र पर प्रेम करने की बात सिखाते। वे कहते कि "सबमें एक ही परमात्मा का अंश है, उसे पहचानना चाहिए। परमात्मा के उस अंश को पहचानना ही विद्या है; बाकी सब अविद्या ही है। इसलिए उनके शिष्यों में बहुत तो विद्वान् थे, लेकिन उन सबको प्रेरणा हुई कि हम सबको गरीबों की सेवा में लग जाना चाहिए। यही कारण है कि आज हिंदुस्तानभर में रामकृष्ण-मिशन की तरफ से सेवा का कार्य चल रहा है।

रामकृष्ण अद्वैत और सेवा के संयोजक

इस अद्वैत-विचार को रामकृष्ण ने बतलाया। हिंदुस्तान के लिए वह कोई नया विचार नहीं था। इस द्रविड़-प्रदेश में आचार्य शंकर ने भी वही कहा था। किन्तु रामकृष्ण के उपदेश की विशेषता यह थी कि वे अद्वैत को व्यवहार में लाना चाहते थे। रामकृष्ण के इस विचार-संप्रदाय में अद्वैत के साथ सेवा जुड़ गयी। इस तरह वेदांत के साथ सेवा जोड़ने की बात रामकृष्ण के शिष्यों में ही प्रथम पैदा हुई। सेवा करने की वृत्ति ईसाई-धर्म में बहुत थी और अभी भी है। हमारे यहाँ भक्ति-मार्ग बहुत चला, पर उसके साथ समाज-सेवा जुड़ी न थी। ध्यान, पूजा आदि में ही भक्ति की इति हो जाती थी। उधर वेदांत में अद्वैत-विचार तो था— "सब भूतों में हम हैं और हममें सब भूत हैं", ऐसी भाषा वे बोलते थे, लेकिन उसके साथ कोई सेवा जुड़ी नहीं थी। मात्र निर्गुण चिंतन था। भक्ति-मार्ग में भी प्रेम अवश्य था, पर उसे सेवा का नहीं, सगुण ध्यान का रूप मिला था।

इस तरह वेदांत और भक्ति-मार्ग दोनों सेवा के लिए अनुकूल होते हुए भी उन्हें सेवा का आकार हिंदुस्तान में नहीं मिला था। यह सेवा का आकार ईसाई-धर्म में है। पर उसके साथ अद्वैत-विचार जुड़ा नहीं है। रामकृष्ण के विचार की यह विशेषता है कि उसमें हिंदुस्तान का अद्वैत-विचार भी था और ईसाई-धर्म का सेवा का विचार भी। जहाँ अद्वैत और सेवा दोनों जुड़ जाते हैं, वहाँ बड़ी भारी ताकत पैदा होती है। इस भक्ति का जन्म रामकृष्ण के विचार से हिंदुस्तान में हुआ।

भारतीय संस्कृति का अन्तिम समन्वय गांधीजी में

आज इस संस्था में अभी बुनियादी शाला का आरंभ हुआ। यह गांधीजी का दिया हुआ विचार है। इस जमाने में हिन्दुस्तान में जो सबसे श्रेष्ठ पुरुष हुए, उनमें महात्मा गांधीजी और रामकृष्ण आते हैं। सैकड़ों वर्षों के बाद आज के जमाने के शायद ये ही दो नाम रह जायँगे। इस स्थान में आपने रामकृष्ण परमहंस और गांधीजी दोनों के नाम जोड़ दिये। नाम-संयोग से जितनी ताकत पैदा कर सकते हैं, उतनी आपने पैदा कर ली। गांधीजी अद्वैत में और भक्ति में विश्वास रखते थे, लेकिन थे कर्मयोगी! उनके कर्मयोग को भक्ति और अद्वैत का रूप प्राप्त था। अद्वैत और भक्ति की पूर्ति गांधीजी के विचार से होती है। कर्मयोग के दो अंग हैं: (१) सेवा और (२) उत्पादन। इनमें सेवा के विचार का प्रचार रामकृष्ण के संप्रदाय ने खूब प्रचारित किया, गांधीजी ने दूसरे अंग को देश के कोने-कोने में पहुँचाया। जैसे मजदूर लोग शरीर-परिश्रम के काम करते हैं, वैसा हरएक को करना चाहिए—कर्मयोग का यह बहुत बड़ा विचार गांधीजी ने चलाया। इधर आचार्य शंकराचार्य ने जैसे 'अद्वैत' सिखाया था, वैसे ही माणिक्यवाचकर और नम्मलवार जैसों ने भक्ति सिखायी। उसी भक्ति का ज्ञानदेव, तुलसीदास आदि ने गुणगान किया। इस तरह गांधीजी के विचार में शंकर का अद्वैत, रामानुज आदि की भक्ति, रामकृष्ण की सेवा के अलावा उत्पादन भी आ जाता है।

यह पंचपक्वान्न का मिष्टान्न

आपने रामकृष्ण और गांधीजी दोनों का नाम लेकर कुल-का-कुल बोझ

उठा लिया। अब आपने हासिल करने को कोई चीज बाकी नहीं रखी। अद्वैत-विचार, भक्ति-मार्ग, सेवा की दृष्टि और उत्पादक कर्मयोग, ये सब यहाँ इकट्ठे होंगे। हमें बड़ा आनन्द हुआ। भारतीय संस्कृति का यह आखिरी समन्वय है। इसमें भारत की कुल कमाई आ जाती है। जहाँ हम सेवा का नाम लेते हैं, वहाँ करुणा आ ही गयी। इसलिए बुद्ध भगवान् की करुणा का विचार भी उसमें आ गया। जहाँ अद्वैत का नाम आता है, वहाँ अहिंसा आ ही जाती है। इसलिए महावीर की अहिंसा भी इसमें आ जाती है। यह तो पंचपक्वान्न का बड़ा मिष्टान्न बन गया। आपने जब इतनी बड़ी जिम्मेवारी उठायी है, तो काम भी वैसा ही करना होगा।

भूदान एक संकेत

आप जानते हैं कि हम भूदान के लिए घूम रहे हैं। वह तो एक बाहरी काम है। भगवान् बुद्ध ने भी वैसा ही काम उठा लिया था। उस जमाने में यज्ञ में बकरे की हिंसा होती थी। उस बलिदान की वे मुक्ति चाहते थे। आज ईसाइयों, मुसलमानों और हिन्दुओं में भी बलिदान होता है, पर बकरों के बलिदान के खिलाफ बहुत बड़ी आवाज बुद्ध भगवान् ने उठायी। वे करुणा का विचार फैलाना चाहते थे। किन्तु केवल व्याख्यान देकर या ग्रंथ लिखकर प्रचार नहीं होता। समाज से निष्ठुर कार्य हटाने का कोई प्रत्यक्ष कार्य हाथ में लेना पड़ता है। इसलिए बुद्ध भगवान् ने बकरे को बचाने का काम उठा लिया। उन्होंने बकरे को संकेत बनाया, लेकिन वे चाहते थे करुणा का प्रचार। इस तरह उस जमाने में जो निष्ठुरता चलती थी, उस तरफ उन्होंने अंगुली निर्देश कर दिया। जगह-जगह वे करुणा समझाने लगे।

वैसे ही बाबा ने नाम दिया है भूदान का, लेकिन वह चाहता है करुणा का विचार, मालकियत छोड़ने का विचार याने अद्वैत का विचार। अद्वैत और करुणा जहाँ इकट्ठी होती है, वहीं भूदान आता है। यह समन्वय है। जो समन्वय आप यहाँ करना चाहते हैं, वही भूदान-यज्ञ प्रत्यक्ष सेवाकार्य के रूप से करना चाहता है। आज दुनिया में मालकियत है। कोई ऊँचा है, तो कोई नीचा। विषमता के

ये सारे प्रकार दुनिया में पड़े हैं। उनके कारण बहुत निष्ठुरता चलती है। आपके गाँव में ही अड़ोस-पड़ोस में दरिद्र, गरीब बेचारे लोग रहते हैं। उनकी कोई चिंता नहीं की जाती। बहुत हुआ, तो भूखे को कभी एकआध दिन खिला दिया जाता है। कोई बीमार पड़ा, तो औषधि दे देते हैं। किंतु वह बीमार क्यों पड़ता है, उसे भोजन क्यों नहीं मिला, इसके मूल कारणों को कोई दूर नहीं करते। मूल कारण दूर करना चाहिए। उसका मूल कारण यही है कि हमने भेद बढ़ाया, हमने मालकियत बढ़ायी। इसी मालकियत और भेद पर हम प्रहार करना चाहते हैं। पौने छह साल से यह काम चल रहा है। जब तक यह कार्य बाकी रहेगा या बाबा के पाँव में ताकत रहेगी, तब तक यह कार्य जारी रहेगा।

रामकृष्ण कोडिले (त्रिची)
१६-१-'५७

धर्मक्षेत्र तपस्या की विरासत सँभालें : ४४ :

अखिल भारत में यह क्षेत्र प्रसिद्ध है। जैसे महाराष्ट्र में पंढरपुर है, वैसे ही इधर यह श्रीरंगम् है। दोनों वैष्णव-आचार्यों का बड़ा भारी कार्य-क्षेत्र है। पंढरपुर और श्रीरंगम् के भगवान् एक ही हैं। उसका नाम 'पांडुरंग' है, तो इसका नाम 'श्रीरंगम्'। यहाँ नम्मलवार, रामानुज आदि सभी वैष्णव सत्पुरुष काम करते थे, तो वहाँ ज्ञानदेव, तुकाराम आदि प्रसिद्ध हैं। इन सभी सत्पुरुषों ने हिन्दुस्तान के इतिहास में बहुत बड़ा काम किया है।

मानव-जीवन पर राजाओं का कोई असर नहीं

आजकल जो इतिहास लिखे जाते हैं, उनमें अधिकतर राजा-महाराजाओं की ही कहानियाँ होती हैं। सत्पुरुषों, महापुरुषों का जिक्र तो एकआध पन्ने में कहीं कोने में कर देते हैं। यह इतिहास की विकृत दृष्टि है, जो पश्चिम से यहाँ आयी है। वास्तव में मानव-समाज पर राजा-महाराजाओं का कोई गहरा असर नहीं हुआ। पचासों राजाओं के नाम व्यर्थ ही इतिहास में लिख रखे हैं, नहीं तो प्रजा उन्हें जानती भी नहीं। पल्लव, चोल, और भी दूसरे अनेक राजा हो

गये। जिस जमाने में वे थे, उस जमाने में उनका बहुत रोब था। शायद लोग उनसे डरते भी हों। उन्होंने लोगों पर कई प्रकार के जुल्म किये। कुछ अच्छे काम भी किये होंगे। लेकिन मनुष्य का जो जीवन, हृदय बना है, उसके परिवर्तन में उनका कोई हिस्सा नहीं रहा।

मानव का विवेक सत्पुरुषों की देन

हजारों वर्षों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मनुष्य का एक सद्विवेक बना है। स्वाभाविक रूप से कुछ चीजें ऐसी हैं, जो मनुष्य के ध्यान में आयीं। कुछ निष्ठाएँ बनीं। क्या करना उचित है और क्या अनुचित है, इस तरह से मनुष्य के कुछ स्वभाव बने हैं। हमेशा मनुष्य उचित ही करता है, ऐसी बात नहीं, फिर भी उचित-अनुचित के विषय में उसके खयाल तो बन ही गये। कहीं खून हुआ, चोरी हुई, व्यभिचार हुआ। हम कारण नहीं जानते, लेकिन यह सुनकर तो एकदम खराब लगता ही है। इस तरह कार्याकार्य-विचार मनुष्य-समाज में स्थिर हुआ। इसीको 'सद्विचार' या 'मानव का विवेक' कहते हैं। आखिर यह मानव-हृदय किसने बनाया? बड़े-बड़े राजा हो गये, श्रीमान् व्यापारी हो गये, दूसरे भी कई पराक्रमी लोग हो गये। लेकिन मानव-हृदय बनाने में उनका हिस्सा नहीं था। यह जो मानव का विवेक बना है, समाज में नीतिशास्त्र बने, उन्हें महापुरुषों और सत्पुरुषों ने ही बनाया।

कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ बड़े-बड़े सत्पुरुष, महामुनि हो गये, फिर भी समाज में बुराइयाँ चलती ही हैं। समाज पर उनका कोई असर नहीं हुआ। हम कहते हैं कि यह खयाल गलत है। ऐसे महापुरुष हो गये हैं, इसीलिए हमारी ऐसी हालत है। नहीं तो अब तक हम जानवर हो गये होते। आज जो कुछ मानवता है, हम जो भला-बुरा पहचानते हैं, यह भी उन्हीं महापुरुषों का उपकार है। अगर ये महापुरुष न हुए होते और हमारे हृदय को न जगाते, तो समाज का नीतिशास्त्र बन ही न पाता।

हम तो समझते हैं कि भूदान के काम में हम ५-६ साल से लगे हैं। और जो भी यश हमें मिला है, उसका सारा श्रेय इन्हीं महापुरुषों को है, जिन्होंने हमें सद्बुद्धि दी है। अभी तक इस आन्दोलन में ४२ लाख एकड़ जमीन मिली है

और कोई साढ़े पाँच लाख लोगों ने दान दिया है। अभी तक इसमें दो हजार पूरे ग्रामदान मिल चुके हैं। तमिलनाड में भी मदुरा जिले में १२५ से ज्यादा ग्रामदान मिल चुके हैं। हिन्दुस्तान के लोगों को दान और त्याग की बातें सुनने में अच्छा लगता है। इसका कारण भी यही है। हिन्दुस्तानियों का यह हृदय इन्हीं महापुरुषों ने तैयार किया है।

स्थिर आय के साधनों से आन्तरिक जड़ता

जिन स्थानों में ऐसे महापुरुषों का निवास रहा, वहाँ लोगों की विशेष प्रकार की भावना होती है। ऐसे स्थानों में श्रीरंगम् भी एक है। किन्तु व्यवहार में बहुत बार उलटा ही अनुभव आता है। देखा गया है कि तीर्थक्षेत्रों के निवासियों के हृदय में कुछ कठोरता आ जाती है, जब कि इन स्थानों से सुदूर रहनेवालों में अत्यधिक मार्दव पाया जाता है। प्रश्न होता है, आखिर ऐसा क्यों ? कारण स्पष्ट है। वहाँ 'वेस्टेड इण्टरेस्ट' (आय के स्थिर साधन) जो होते हैं। रामानुज ने बहुत भारी तपस्या और जनता की सेवा की। वे बड़े ही दयालु थे। जो सन्देश लोगों को कानों में गुप्त रीति से सुनाते, उसे जाहिर भी कर देते थे। ज्ञान को बिलकुल बाँटते जाते थे। फिर भी उनका अपना जीवन बड़ा ही कष्टमय रहा। उनके यहाँ दो दिन का भी संग्रह न रहता। दारिद्र्य के पूर्ण अनुभवी रहे। भिक्षा माँगते और अपने पुण्य प्रभाव से लोगों का जीवन शुद्ध करते। परिणाम-स्वरूप उनके हजारों शिष्य तैयार हुए और समाज में धर्म-विचार फैला। लोगों ने उन्हें जमीनें दान दीं, मठ बनाने के साधन दिये। देवालयों के लिए स्थिर आय हो गयी। किन्तु जहाँ आय के साधन स्थिर हो जाते हैं, वहाँ लोग आलसी, सुस्त और कठोर बन ही जाते हैं। तब जीवन में ताजगी नहीं रहती। जहाँ स्थिर आमदनी का साधन मिल जाता है, वहाँ अंदर का हृदय जड़ बन जाता है। भक्ति क्षीण होती है। रूढ़ और स्थूल आचार बढ़ जाता है। वह यांत्रिक-तांत्रिक वस्तु बन जाती है। उसमें से ज्ञान निकल जाती है।

पुरानी तपस्या पर कब तक जीओगे ?

इसका परिणाम यह हुआ कि जिस तरह कुछ राजवंश बिगड़ गये, उसी तरह सांप्रदायिक भी आलसी और सुस्त बन गये। भक्ति का हृदय और करुणा

के साथ कोई संबंध नहीं रहा, ऊपर-ऊपर के कामों में ही ध्यान रहा। इस तरह जब भक्ति को यांत्रिक रूप आया, तो समाज से उसका असर मिट गया। दुनिया में नास्तिकता फैलने की ज्यादा जिम्मेवारी आस्तिकों पर है। क्योंकि उनके जीवन में करुणा नहीं दीखती। जब करुणाविहीन मनुष्य आस्तिकता का दावा करता है, तभी नास्तिकता का प्रचार होता है। रामानुज को देखकर ही लोगों के हृदय में बदल हो जाता था। इस जमाने में भी रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गांधी, विवेकानंद, दयानंद, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुब्रह्मण्यम्, भारतीयार जैसे कई महापुरुष हो गये, जिन्होंने लोक-हृदय पर प्रभाव डाला। लेकिन इन देवस्थानों से किसीने इन दिनों में लोगों पर असर डाला, ऐसा कोई उदाहरण मेरे जान में तो नहीं है।

आखिर जनमानस पर रामानुज का असर क्यों हुआ? कारण उसकी कायम की आमदनी न थी। बेचारा मारा-मारा फिरता था। यहाँ राजा ने द्वेष किया, तो मैसूर चला गया। निःस्पृहता से सत्य बोलनेवाले का यही हाल होता है। राजा को जो मीठा लगे, वही बोलना रामानुज ने मंजूर नहीं किया। महापुरुषों का राजा के साथ हमेशा झगड़ा रहता ही है। गांधीजी का भी सरकार के साथ झगड़ा था ही। क्योंकि वे मीठा नहीं, सत्य बोलते थे। लोगों को उनकी बात चुभे तो चुभे, पर उन्हें समाज-सुधार करना था। उसी काम में वे लगे थे। इसीलिए उनकी कायम की आमदनी नहीं थी। आज का आज ही खाते थे। लेकिन जब से मंदिर, मस्जिदों के लिए कायम की योजना बनी, तभी से यह भक्ति निरुपयोगी बनी।

ये स्थान पुराने लोगों के स्मरण पर चलते हैं। पर जो शख्स पुराने पुरुषों की ही महिमा गाया करेगा और स्वयं कुछ न करेगा, उसकी क्या अवस्था होगी? पुराने लोगों की कीर्ति गाने से तो हमारी कुछ कमाई नहीं होती। फलाने का बाप बड़ा श्रीमान् था। उसने लाखों रुपया कमाया। लेकिन लड़के ने क्या किया? लड़का भीख माँग रहा है। बाप बड़ा व्यापारी था। उसकी कीर्ति गाने से क्या लाभ होगा? रामानुज और नम्मलवार की कीर्ति आखिर कहाँ तक चलायेंगे? पुरानी पूँजी पर व्यापार कितने दिन करेंगे? नयी पूँजी चाहिए।

तपस्या मन्दिर के चौखटे के बाहर

हिंदू-धर्म में आज के जमाने में जो तपस्या की, वह मंदिर के बाहर के लोगों ने की। समाज के आचार-विचार में जो रोग थे, वह हटाने के लिए नाना प्रकार की नयी-नयी तपस्या करनी पड़ती है। गांधीजी ने स्वदेशी-धर्म शुरू किया। अस्पृश्यता-निवारण के लिए तपस्या की। सर्व-धर्म का समन्वय किया। अद्वैत के साथ सेवा को जोड़ा। योग की स्थापना करने के लिए अरविन्द ने प्रयत्न किया। अब भूदान का काम शुरू हुआ है। लाखों लोग दान दे रहे हैं। प्रेम से माँगा जा रहा है और लोग दे रहे हैं। दयानन्द ने जाति-भेद-निरसन का प्रचार किया। वह कुल तपस्या मंदिर के बाहर हुई। पुराने जमाने की तपस्या के साथ इन मंदिरों का नाम जुड़ा है। पंढरपुर में ज्ञानदेव ने तपस्या की। उनका संबंध वहाँ के मंदिर से जोड़ दिया गया। रामानुज और नम्मलवार ने तपस्या की। उसीके नाम पर श्रीरंगम् का मंदिर चलता है। लेकिन क्या नये सिरे से इस प्रकार की तपस्या इन मंदिर और मठों के जरिये हो रही है?

जनता धर्म-कार्य की जिम्मेवारी खुद उठाये

राजा-महाराजाओं का चरित्र सुनकर हमें क्या बोध लेना चाहिए? यही कि कोई अच्छा राजा था, कोई बुरा। हमें राजा नहीं चाहिए। राजाओं पर समाज-शासन का भार डालना गलत है। समाज-कार्य चलाने का जिम्मा समाज को ही उठा लेना चाहिए, यह हमने निर्णय कर लिया है। ऐसा ही निर्णय धर्म-संस्था के बारे में करना चाहिए। इस धर्म-कार्य की जिम्मेवारी मंदिरों, मठों पर न डालेंगे। उसकी जिम्मेवारी स्वयं उठानी होगी।

हम आपको एक उदाहरण देना चाहते हैं। बाबा को समाज-सुधार की बात बहुत जरूरी मालूम होती है। दस-पन्द्रह साल से हम उस पर बोल रहे हैं। मित्रों से चर्चा भी काफी हुई है। वह विनय हम अभी आपके सामने रखना चाहते हैं। मनुष्य की शादी होती है। अग्नि को साक्षी बनाकर वह गृहस्थ बनता है। अपने धर्म का यह विचार है कि दस-बीस साल के अनुभव के बाद मनुष्य को गृहस्थाश्रम से मुक्त होना चाहिए। पर आज क्या हालत है? एक बार मनुष्य

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, तो मरने तक फँसा रहता है। वासना बढ़ाता जाता है। वह कभी क्षीण नहीं होती, भले ही शरीर क्षीण हो जाता है। फिर ४५ साल के बाद गृहस्थाश्रम से विधिपूर्वक मुक्त हो जाना चाहिए। इससे समाज की ताकत बनी रहेगी। बच्चों के हाथ में घर जल्दी आ जायगा। घर में द्वेष, झगड़े कम होंगे। गृहस्थाश्रम से मुक्त हुए उस शख्स का समाज को उपयोग होगा। समाज-विद्या बढ़ेगी। लेकिन क्या यह कार्य मठ-मन्दिर कराता है या करायेगा? कभी नहीं! वे तो इतना ही करायेंगे कि आनेवाले दर्शकों को मन्दिर के देवता का मुँह दिखायें और पैसा लें। वहाँ पहले से बनी श्रद्धा का ही दर्शन होगा, नयी तपस्या और प्राण-संचार का काम इन मन्दिर-मसजिदों से संभव नहीं।

धर्म का आधार आत्मा पर रहे

धर्म का आधार आत्मा पर होना चाहिए। पैसे या अन्न पर नहीं। इसीलिए हमने कहा है कि पुराने जमाने में मन्दिर को जमीन देते थे, तो ठीक था। पर आज इस तरह मंदिर को जमीन देना ठीक नहीं। जिस जमाने में जमीन दी गयी, उस जमाने में जमीन ज्यादा थी। प्रेम से दी गयी और कुल आमदनी मंदिर को मिलती थी। आज परिस्थिति भिन्न है। इसलिए मंदिर को नयी सेवा, नयी तपस्या करनी चाहिए।

पिता का पुत्र के प्रति कर्तव्य

धार्मिक जीवन का प्रवाह सतत बहता रहना चाहिए। यह हम केवल मन्दिर के लिए ही नहीं कहते। जो पिता अपने लड़के के लिए 'इस्टेट' रखता है, उसे भी हम पुत्र का दुश्मन समझते हैं। लड़कों को विद्या देनी चाहिए। अच्छा शरीर, सामर्थ्य और कला सिखाकर उसे कहना चाहिए कि तू अब अपना मार्ग ढूँढ़ ले। मैं सलाह दूँगा, लेकिन इस्टेट नहीं। तभी वह लड़का बुद्धिमान् और पराक्रमी बनेगा, नहीं तो दुर्गुणी और आलसी ही बनेगा। उपनिषद् कहती है: "पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः"। जो अपने लड़के को उत्तम शिक्षण देगा, उसका लड़का उसे स्वर्ग में जाने के लिए मदद करेगा। जो पिता लड़के

के लिए इस्टेट रखेगा, वह स्वर्ग का अधिकारी न रहेगा। इसलिए इस्टेट समाज को अर्पण करनी चाहिए। बच्चा भी समाज को अर्पण किया जाय, तभी वह अच्छा बनकर समाज की सेवा करेगा, नाम पायेगा और खायेगा।

शंकराचार्य का पराक्रम

शंकराचार्य दो बार कुल भारत घूमे। ३२ साल की उम्र तक उन्होंने लगातार काम किया। ग्रंथ लिखे, चर्चा की, समाज की सेवा की और सर्वत्र संचार किया। काशी में जन्म हुआ और हिमालय में समाधि ली। उनके खाने के लिए क्या आधार था? झोली। कहते थे : "भिक्षा माँगकर खाओ, क्षुधा को व्याधि समझो और मीठे अन्न की आशा मत रखो। जो सहज प्राप्त होगा, उसमें संतोष, समाधान मानो।" यही था शंकराचार्य का जीवनाधार! वही उन्होंने अपने शिष्यों को दिया। उसके साथ ज्ञान दिया। उनके चार शिष्य थे। चारों दिशाओं में (द्वारिका, जगन्नाथपुरी, बद्रीकेदार और शृंगेरी में) उनके लिए मठों की स्थापना की। हजार-हजार मील का फासला उनमें था। अगर वे एक-दूसरे से मिलना चाहते, तो साल-दो साल पैदल यात्रा करनी पड़ती। लेकिन शंकराचार्य ने उन्हें ज्ञान दिया था। इसलिए उनमें हिम्मत आयी थी। पर आज क्या है? जहाँ मठ बनाये थे, वहाँ संपत्ति आ गयी और शंकराचार्य के दो शिष्यों में झगड़ा हुआ, तो मामला कोर्ट में गया और वहाँ से प्रिवी कौंसिल में। शंकराचार्य यह सारा देखते, तो क्या उन्हें प्रसन्नता होती? यही हालत जैनों की हुई है।

'इस्टेट' पटक दो

यह सब हम चित्त-शुद्धि और समाज-शुद्धि के लिए कह रहे हैं। हम किसी भी व्यक्ति का दोष नहीं दिखा रहे हैं। दोषस्मरण का हमारा स्वभाव नहीं। हम तो भगवन्नाम लेनेवाले हैं। होना तो यह चाहिए कि भूदान जैसा धार्मिक कार्य इन मठों को और मन्दिरों को उठा लेना चाहिए। भूदान का विचार है : 'मैं' मेरा छोड़ दें। इसीका प्रचार भूदान से हो रहा है। तुम जमीन के, संपत्ति के मालिक नहीं। जमीन भगवान् की है। उसका सँभाल करने के लिए ही वह

भगवान् ने तुम्हारे पास रखी है। इसलिए गरीबों को उसका एक हिस्सा दे दो। इस्टेट पटक दोगे, तभी धर्म उज्ज्वल होगा।

तपस्या की विरासत सँभालो

श्रीरंगम् जैसे महाक्षेत्र के पुण्य-स्मरण से ही हमारे दिल में उत्साह पैदा होता है। कितनी तपस्या यहाँ हुई है! कुल आलवार मंदिर के लिए पागल थे। तीन आलवारों की प्रसिद्ध कहानी आप जानते ही होंगे, जिसमें रातभर स्वयं खड़े-खड़े जाकर अतिथि को वर्षा और कष्ट से बचाया। उन्होंने हमारे लिए यही तपस्या की इस्टेट रखी है। क्या इससे बेहतर इस्टेट कभी किसीको मिल सकती है?

हम हिन्दुस्तान के वैभव का स्मरण करते हैं, तो उसके वैराग्य के स्मरण से हमारी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। हिन्दुस्तान में लक्ष्मी की कमी नहीं थी, लेकिन उससे ज्यादा था आत्मज्ञान। आत्मज्ञान के सामने सब कुछ तुच्छ समझने-वाले महान् पुरुष यहाँ हो गये। अभी भी हम तपस्या की वृद्धि करें, तभी हमारी शोभा है। हमारा दावा है कि हमें जो बड़ी इस्टेट मिली है, भूदान उसीकी रक्षा करने का काम कर रहा है। हमारी बात से मंदिरवालों को दुःख हुआ हो, तो हम उनसे क्षमा माँगते हैं। उनके विरोध में हमें कुछ कहना नहीं है। हम तो सिर्फ समाज-शुद्धि और हृदय-शुद्धि चाहते हैं। हम चाहते हैं कि धर्म बढ़े, त्याग बढ़े, प्रेम बढ़े, भक्ति बढ़े। कारण यही अपने देश की संपत्ति है।

श्रीरंगम्
१७-१-'५७

'भागवत' में एक जगह इस द्रविड़ प्रदेश के लिए बड़ी श्रद्धा दिखलायी गयी है। कहा गया है कि जहाँ कावेरी और ताम्रपर्णी नदी है, वहाँ भक्ति-मार्ग बना रहेगा, और वही प्रदेश दुनिया को रास्ता दिखायेगा, चाहे सारी दुनिया से उसका लोप हो जाय। महान् वचन किसी संकुचित अनुभव से नहीं लिखा जा सकता। वैसे तो आजकल के देशभक्त अहंकारवश अपने-अपने देश और प्रांत की बहुत बड़ाई किया करते हैं। लेकिन भागवतकार अहंकारी नहीं, बड़ा भक्त था। वह इतना निरहंकारी था कि उसका नाम भी लोग न जानते थे। आखिर तक किसीने नहीं जाना कि भागवत ग्रंथ किसने और कब लिखा। ऐसा शख्स जब कहता है कि द्रविड देश में भक्ति-भाव बना रहेगा, तब उस पर विश्वास रखना चाहिए। हम तो विश्वास रखते ही हैं। जब हमने तमिलनाड में प्रवेश किया, तो बहुत नम्रता से प्रवेश किया कि यहाँ हमें बहुत कुछ सीखने को मिलेगा।

सखाभाव भारत की विशेषता

आज यहाँ जैसी सभा बैठी है, वैसी सभा हमने न बिहार में देखी, न उत्तर-प्रदेश में और न राजस्थान में। भाई-बहनें सभी जहाँ जगह मिली, बैठ गये; किसी प्रकार का कोई भेद नहीं। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के समान हैं, यही भक्ति का एक लक्षण है, क्योंकि जहाँ हृदय में भक्ति रहती है, वहाँ स्त्री-पुरुष-भावना भी क्षीण हो जाती है—टिक ही नहीं पाती। उसका भी 'भागवत' में वर्णन आया है। एक भगवान् की अनेक मूर्तियाँ थीं। भगवान् अनेक रूपों में प्रकट हुए। दोनों ओर एक-एक स्त्री और बीच में एक-एक माधव। किसी प्रकार का फर्क नहीं। हम यह वर्णन व्रज-भूमि के बारे में पढ़ते थे, पर आज वहाँ वह देखने को नहीं मिलता। हम कहते हैं कि जिस प्रदेश में ऐसा भक्ति-भाव है, जहाँ लोग इस भेद-भाव को भूल सकते हैं, क्या वहाँ मालिक-मजदूर का

भेद-भाव टिक सकेगा ? उत्तर हिंदुस्तान में इस तरह स्त्रियों को सभा में लाने के लिए बीस-पचीस साल आंदोलन करना पड़ेगा, लेकिन यह बात यहाँ बिलकुल मामूली लगती है। इस तरह की जहाँ अभेद-प्रवृत्ति है, वहाँ मालिक-मजदूर का भेद-भाव टिक ही न सकेगा। हमारा विश्वास है कि कावेरी नदी यह भेद-भाव नहीं रखेगी। इसका दर्शन आज हमने इस सभा में किया। हम तो बिलकुल ही नाचीज हैं, हममें कोई योग्यता नहीं। फिर भी हमारा निश्चय है कि जब तक मालिक-मजदूर-भेद न मिटेगा, तब तक हमारा कार्य जारी रहेगा। हम तो हिंदुस्तान में 'सखाभाव' पैदा करना चाहते हैं। यह कोई नयी बात नहीं, भक्ति-मार्ग की चीज है। सख्यभाव में सब बराबर हैं।

साहित्य का सख्य व्यवहार में कार्यान्वित हो

सख्यभाव में जो आनंद है, वह और किसी भाव में नहीं। दुनिया में प्रेम के जितने भाव हैं, सबमें श्रेष्ठ भाव सख्यभाव है। हम चाहते हैं कि हिंदुस्तान में यह सख्यभाव जाग्रत हो जाय। यह सख्यभाव हमें तमिल-साहित्य में बहुत देखने को मिलता है। हम वेद में भी बहुत बार देखते हैं कि भगवान्—अग्नि और इंद्र को 'भाई' के नाम से पुकारा गया है। कहा गया है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनों सखा हैं। जिस देश में इस तरह लोग भगवान् का भी सख्यभाव चाहते हैं, वहाँ लोग आपस में मालिक-मजदूर कैसे बनेंगे ? हमारे भक्त तो भगवान् से झगड़ा तक करते हैं, ईश्वर के सामने अदब से भी नहीं रहते हैं। बाहर के भक्त ईश्वर को माता-पिता या गुरु मानकर रहेंगे, लेकिन यहाँ के भक्त भगवान् से बहुत ज्यादा परिचित हो जाते और दोनों के बीच का अंतर तोड़ डालते हैं। इस तरह जिस देश का भक्ति-भाव अपने और भगवान् के बीच ज्यादा अंतर नहीं रखने देता, वहाँ के निवासी आपस में ही कैसे अंतर रखेंगे ? इसलिए हमें विश्वास था और है कि तमिलनाड में मालिक-मजदूर और भूमिहीन का यह भेद मिट ही जायगा। इसी श्रद्धा से हमने तमिलनाड में प्रवेश किया। जब तक यहाँ यह सख्यभाव व्यवहार में न आये, तब तक हमें चैन न लेनी चाहिए।

शांत तेज प्रकट हो

आज हजारों आदमी यहाँ इस आशा से आये हैं कि एक शख्स आया है, जो प्रेम से हमें जमीन दिलायेगा। अगर प्रेम से काम होता हो, तो कोई भी न चाहेगा कि उसके बीच द्वेष आये। अवश्य ही हमारे कुछ भाई चाहते हैं कि द्वेष से भी मसला हल होता हो, तो होना चाहिए। लेकिन वे भी उसके प्रेम से हल होने पर द्वेष पसंद न करेंगे। इस तरह अगर हम प्रेम से मसला हल करें, तो वे भी प्रेम के पक्ष में आ जायँगे। हमें विश्वास है कि सभी पक्षों के लोग हमारे इस आंदोलन में सहयोग देंगे, क्योंकि ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो यह न चाहता हो कि सबको जमीन न मिले, सख्यभाव न हो।

यहाँ मीरासदारों का संगठन बना है, लेकिन हम नहीं मानते हैं कि वे सख्य-भाव नहीं चाहते। कानून से जमीन छीनने की बात है, इसीलिए वे डरे हैं। उनमें भय के सिवा कोई बात है ही नहीं। उनके हृदय में करुणा, प्रेम या सख्यभाव नहीं है, वे अपने को ऊँचा ही रखना चाहते हैं, ऐसा हम नहीं समझते। लेकिन जहाँ छीनने की बात चलती है, वहाँ झगड़े शुरू हो जाते हैं। एक कहता है : "हम छीन लेंगे।" दूसरा कहता है : "हम छीनने न देंगे।" यह देखकर हमें अच्छा लगता है, क्योंकि दोनों तरफ से यह दर्शन होता है कि दिल में कुछ ताकत है। यह जिन्दापन का लक्षण है। आप हमें दबाकर लेना चाहें, तो हम न देंगे, इसमें भी तेजस्विता है और तुम लोग जमीन नहीं देते, तो हम छीन लेंगे, इसमें भी तेजस्विता है। इसमें एक सूरज इधर और एक सूरज उधर, इस तरह दुनिया में दो सूरज आ जायँगे। सूर्य तेजस्वी है, वह अच्छा है, लेकिन दुनिया में दो सूर्य इकट्ठे हो जायँ, तो हमारी हालत क्या होगी? हम जलकर भस्म हो जायँगे, किन्तु दो नहीं, पचास चन्द्र हों, तो भी हमें कोई हानि नहीं है। रात में लाखों नक्षत्र होते हैं, पर हमें कोई तकलीफ नहीं होती, बल्कि बड़ा आनन्द आता है। इसलिए तेजस्विता का दर्शन हमें अच्छा लगता है। लेकिन हम कहते हैं कि इससे लाभ नहीं। आप पंचाग्नि-साधन करना चाहते हों, तो करें। लेकिन इनका उनसे झगड़ा, उनका इनसे झगड़ा, इस

तरह झगड़े इकट्ठा कर काम करना चाहो, तो कर सकते हो। ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, हरिजन-परिजन, हिन्दू-मुसलमान, गाँव-शहरवाले, तमिल-तेलुगु आदि पचासों प्रकार के झगड़े बढ़े। उनमें तेज दीखता है, पर शान्ति नहीं। मनुष्य को तेज चाहिए, लेकिन ज्यादा नहीं। तरकारी में थोड़ा-सा नमक जरूर चाहिए, उससे स्वाद आता है। लेकिन सेरभर तरकारी में सेरभर नमक डाल दें, तो स्वाद नहीं, बे-स्वाद लगती है। इसलिए अगर समाज में तेज बढ़ जाय, तो उसके परिणामस्वरूप आग ही लग जायगी। इसलिए तेज चाहिए, पर वह शीतल रहे। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि "नमः शांताय तेजसे"—शांत तेजवाले देव को नमस्कार है। हम चाहते हैं कि अपने देश में शांत तेज प्रकट हो। मीरासदार भी हमारे पक्ष में आ जायँ, उनके प्रति हमें अविश्वास नहीं। हम चाहते हैं कि सब लोग मिलकर काम करें। हम उनसे कहेंगे कि तुम सच्चे मीरासदार बनो।

बाप-बेटे में सहयोग हो

सच्चा बाप वही है, जो यह समझे कि मेरा सब कुछ बच्चों का है। सच्चा मीरासदार वही होगा, जो कहेगा कि "मेरा सब कुछ गाँव का है, मैं गाँव का सेवक हूँ।" गाँववाले कहेंगे, "आप हमारे पिता हैं।" अगर बाप अपना धन बेटों से अलग रखेगा, तो दोनों की दुर्दशा होगी। क्योंकि बेटों में अक्ल नहीं और बाप में ताकत नहीं। अक्ल और ताकत दोनों का जोड़ करना चाहिए। श्रम शक्ति और बुद्धि-शक्ति दोनों का जोड़ करनेवाला 'सर्वोदय' है। इसलिए मीरासदारों को सर्वोदय का सदस्य होना चाहिए, तभी उनकी इज्जत रहेगी। अगर वे यह कहकर लड़कों के खिलाफ खड़े हो जायँगे कि हम तुमसे अलग हैं, तो क्या हालत होगी ? जिसके बेटे मर जायँ, वह बाप ही मर जाता है; क्योंकि उसे बाप कौन कहेगा ? इसलिए जैसे बाप का बापपन बेटे के अस्तित्व पर ही आधृत है, वैसे ही मीरासदार का मीरासदारपन इसी पर आधृत है कि वह सबका रक्षण करे।

रक्ष्य रक्षक से अलग कैसे रहे ?

मीरासदार का अर्थ है, सबकी रक्षा करनेवाला। रक्षक रक्ष्य से अलग कैसे

रह सकता है ? हाँ, लड़का कह सकता है कि मैं तुमसे अलग होना चाहता हूँ। तो बाप उसे यह कहकर जीत लेगा कि "नहीं, तुम मुझसे अलग मत हो। तुम्हें 'इस्टेट' का हिस्सा चाहिए न ? यह सारी इस्टेट तुम्हारी है। हम समझते हैं कि मीरासदारों में भय पैदा किया गया है, इसलिए वे अलग रहना चाहते हैं। सर्वोदय का मजदूरों पर भी प्रेम है और मीरासदारों पर भी। किस तरह दोनों का भला होगा, इसकी राह सर्वोदय दिखायेगा। उसके परिणामस्वरूप गाँव-गाँव मजबूत राज्य बनेंगे। उस गाँव में जितने लोग होंगे, कुल-के-कुल मालिक और मजदूर दोनों बन जायँगे। दोनों गुण दोनों में होंगे। छोटे परिवार से बड़े परिवार में वैभव ज्यादा है, इसलिए हमारा विश्वास है कि ग्रामदान से कुल समस्या हल होगी। मजदूर और मीरासदार दोनों का भय मिटेगा। सर्वोदय का कार्यक्रम सबको निर्भय बनाने का ही कार्यक्रम है।

कल्लनी (तंजावर)
२०-१-'५७

योजना और श्रम-शक्ति : ४६ :

आज कुछ श्रमिकों से थोड़ी देर तक मुलाकात हुई। उन्होंने हमारी यात्रा के लिए एक अच्छा रास्ता बनाया। रास्ता तो पुराना था, लेकिन उन्होंने उसे दुरुस्त किया। यह है श्रमदान! दुनिया की सारी चीजें श्रम से ही पैदा होती हैं, लेकिन आज समाज में श्रम करनेवाले चंद लोग हैं और दूसरे लोग योजनाएँ बनाते हैं। योजना बनाने और श्रम करनेवाले यदि अलग-अलग पड़ जायँ, तो चीज नहीं बनती।

चरखा और गेंद के उदाहरण

हम दोनों हाथों से चरखा कातते हैं। एक हाथ चक्र घुमाता है, तो दूसरा सूत खींचता है। चक्र चलानेवाला हाथ है, योजना करनेवाला और सूत खींचनेवाला है, परिश्रम करनेवाला। अगर चक्र घुमानेवाला हाथ जोरों से चक्र घुमाये, तो दूसरे हाथ को भी जोरों से सूत खींचना पड़ेगा। वह अगर आहिस्ता-आहिस्ता चक्र

घुमाये, तो इसे भी आहिस्ता-आहिस्ता सूत खींचना पड़ेगा। एक है योजना करने-वाला—दिशा-निर्देश करनेवाला और दूसरा है उसके अनुसार चलनेवाला—अमल करनेवाला। दोनों एक ही मनुष्य के हाथ हैं। इसलिए काम अच्छा चलता है। मान लीजिये, अगर दो मनुष्य हों। एक मनुष्य चक्र घुमानेवाला और दूसरा तार खींचनेवाला, तो बहुत मुश्किल होगी। एक मनुष्य कब जोरों से घुमायेगा और कब आहिस्ता घुमायेगा, इसका पता न चलेगा। वेग देनेवाले हाथ के अनुसार सूत खींचना पड़ता है। इतना ही नहीं, सूत खींचनेवाले हाथ की गति देखकर ही चक्र घुमाना पड़ता है। अगर एक हाथ मंद होगा, तो दूसरे हाथ को भी मंद होना पड़ेगा।

उधर से कोई गेंद फेंक रहा है। हमारी आँखों ने उसे देखा और हाथों ने रोक लिया और हमारे पाँव भी उस गेंद को पकड़ने के लिए उसी हिसाब से जरा दौड़े, तो तीनों को काम करना पड़ा। पाँव को दौड़ना पड़ता है, हाथों को उस हिसाब से तैयारी करनी पड़ती है और आँखों को भी देखने का काम करना पड़ता है। हाथ, पाँव, आँख तीनों एक ही मनुष्य के हैं। इसलिए उसे पकड़ सकते हैं। मान लीजिये, तीन मनुष्य हों, एक आँखों से देखे, परन्तु पकड़े नहीं। दूसरा हाथ से पकड़ने की तैयारी करे, पर दौड़ना और देखना न चाहे। तीसरा दौड़े, लेकिन देखना और हाथों से पकड़ना न चाहे, तो क्या तीनों गेंद को पकड़ सकेंगे ? गेंद तो जमीन पर ही रह जायगा।

योजना और श्रम के योग से ही सफलता

इसमें शक नहीं कि चंद लोगों की बुद्धि कुछ काम करती है, इसलिए वे योजना कर सकते हैं और कुछ लोगों में श्रम-शक्ति है, इसलिए वे श्रम कर सकते हैं। किंतु दोनों अलग पड़ जायँ, तो काम न होगा। दोनों को मिलकर एक परिवार बनाना चाहिए। मजदूर की कद्र योजना करनेवाले और योजना करनेवालों की कद्र मजदूरों को करनी चाहिए। दोनों आपस में सलाह-मशविरा करें और योजना से जो लाभ हो, उसे दोनों उठायें। काम की जिम्मेवारी दोनों उठायें और जो फल मिले, उसे दोनों बाँटकर खायें। इस तरह योजना में काम की जिम्मेवारी उठाने और फल भोगने में जब दोनों एक होंगे, तभी काम अच्छा होगा।

कर्म के तीन अंग

सारांश, कर्म के तीन अंग होते हैं। पहला अंग है, योजना। कर्म के पहले योजना होनी चाहिए, इसीलिए यह कर्म का पहला अंग है। लेकिन केवल दिल्ली-वालों की योजना न चलेगी। वे और ग्रामीण एकत्र बैठकर योजना बनायेंगे, तभी काम होगा। इसके बिना काम का आरंभ ही न होगा। प्रत्यक्ष काम करने की जिम्मेवारी कर्म का दूसरा अंग है। उसमें सिर्फ मजदूर ही नहीं, योजना बनाने-वाले का भी हाथ होना चाहिए। जो फल मिलेगा, वह उसका तीसरा अंग है। भोग भी दोनों को समान मिलना चाहिए, तभी काम बनेगा और ताकत बढ़ेगी।

आज हिन्दुस्तान की क्या हालत है? जो जमीन के मालिक हैं, वे बहुत ज्यादा काम नहीं करते। कुछ तो बिलकुल ही काम नहीं करते। जीवनभर शहरों में रहते हैं। बच्चों को कॉलेज की तालीम देते हैं। कॉलेज की तालीम पाकर क्या बच्चे खेत में हल चलायेंगे? वह सारा काम तो मजदूर करेंगे। लेकिन योजना बनाते समय उनसे कुछ भी न पूछा जायगा। खेत में क्या बोना है, इसे क्या कभी बैल से पूछा जाता है? मजदूरों के बारे में भी वे ऐसा ही सोचते हैं। जैसे बैल को नीचे का हिस्सा देते हैं, वैसे ही मजदूरों को भी नीचे का अनाज और मालिक को ऊपर का अनाज मिलता है। हमने बड़े-बड़े फार्म देखे हैं, जहाँ मजदूर काम करते हैं, मालिक नहीं। मजदूरों को मेहनत के लिए पैसा मिलता है, जिससे वे अनाज खरीदते हैं, पर जो अच्छा अनाज वे बोते हैं, उस पर उनका हक नहीं रहता। आखिर बैल भी तो अनाज देख सकता है, खा नहीं सकता! मालिक कहते हैं कि मजदूरों के हित के लिए हमने सस्ते अनाज की दूकान खोल दी है। लेकिन वह सस्ते अनाज याने खराब अनाज की, रद्दी अनाज की दूकान होती है। फल के उपभोग में मजदूरों का सवाल नहीं, योजना में उनकी परवाह नहीं और काम में हमारा नहीं, उनका भाग होगा। भोग में मुख्य हिस्सा हमारा रहेगा, इससे समाज का लाभ न होगा। समाज में असंतोष बढ़ेगा, काम अच्छा न होगा, उत्पादन नहीं बढ़ेगा। काम में मजदूर का हिस्सा ज्यादा रहेगा और अनाज पर उसका कोई अधिकार नहीं रहेगा। इसलिए मालिक को अनाज हजम नहीं होता।

पाप खानेवाले श्रीमान्

महाभारत में एक कहानी है। बैल ब्रह्मदेव के पास गये। उनकी शिकायत थी कि आजकल किसान हमें सताते हैं। ब्रह्मदेव ने उनसे कहा : "देखो, जो किसान बैल की चिंता न करेगा, उसे खिलाये बगैर खायेगा, उसके खेतों की उन्नति न होगी और मरने के बाद उसको अच्छी गति नहीं मिलेगी।" ब्रह्मदेव ने बैलों के लिए इतना पक्षपात किया, तो क्या वह मजदूरों के लिए नहीं करेगा ? निश्चय ही वह मालिकों को शाप देता होगा। मालिक खेत में काम नहीं करते, स्वच्छ हवा और सूर्य-किरणों से लाभ नहीं उठाते, इसीलिए उन्हें हजम नहीं होता। वेद ने तो स्पष्ट ही कहा है : "नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।" याने जो अपने भाई का पोषण नहीं करता, मददगारों का पोषण नहीं करता, वह अन्न नहीं खाता, पाप ही खाता है।

आज हमें इसका अनुभव भारत और दूसरे देशों में भी हो रहा है। असंतोष सर्वत्र भरा है। बेकार चोरी करता है और उसका फैसला देने के लिए दूसरा बेकार मनुष्य खड़ा कर दिया। उसे जेल में भेज दिया। यह जेल, सजा, न्यायाधीश, न्याय, सब बेकार है। होना यह चाहिए कि हम इसके कारण के मूल में जायँ और उस पर प्रहार करें। लेकिन यह नहीं होता। उसके बदले में दंड-शक्ति का उपयोग किया जाता है। उसे जमीन देनी चाहिए। अगर गाँव के लोग गाँव का एक परिवार बना दें, कुल जमीन गाँव की हो जाय, जमीन की मालकियत किसीकी न रहे, तो यह सारा असन्तोष मिटकर सभीको बहुत लाभ होगा। फिर सबको काम मिलेगा, बेकार लोग नहीं रहेंगे।

तिरुक्काटपल्ली (तंजौर)
२१-१-'५७

यह एक धर्मस्थान है, जहाँ कई सन्तों ने तपस्या की है। सब भक्तों और तपस्वियों ने हमें सिखाया है कि 'मैं और मेरा' का भाव मिट जाय। मनुष्य को आसक्ति छोड़ देनी चाहिए। इसे लोग सुनते तो हैं, मानते भी हैं और चन्द लोग तदनुसार चलते भी हैं, किन्तु अधिकतर लोग या कुल समाज उस पर अमल नहीं करता।

ममत्व छोड़ना आसान नहीं

'ममत्व छोड़ो' की बात लोग सुनते तो हैं, लेकिन मानते हैं कि यह अपने लिए नहीं है, यह हमसे बननेवाली चीज नहीं है। मानना पड़ेगा कि लोगों के लिए यह उपदेश अमल में लाना आसान बात नहीं। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि कुछ व्यक्ति उस पर अमल कर सकते हैं और व्यक्तिगत अमल होता है, तो एक हवा पैदा होती है। साधारणतः लोग ममत्व छोड़ने का अर्थ यह समझते हैं कि घर और परिवार छोड़ समाज या भगवान् की शरण हो जायँ। अपना सब त्यागने पर तो वह संन्यास ही हो जाता है। बाबा को इसका खूब अनुभव है। उसने स्वयं इस पर अमल किया है। इसीलिए तो वह आपके सामने खड़ा है। अगर बाबा स्वयं ममत्व न छोड़ पाता, तो आपके सामने आकर ममत्व छोड़ने की बात कर ही कैसे सकता था? बाबा ने इस बात पर स्वयं अमल करने की कोशिश की, इसीलिए लोग उसकी बात सुनते हैं। ममत्व छोड़ने का यह उपदेश कोई व्यक्ति ही ग्रहण कर सकता है। यहाँ भाई-बहन बैठे हैं। उनके बाल-बच्चे हैं। वे उनके लिए सर्वस्व का त्याग करते हैं। अगर हम इनसे कहें कि यह सारा स्नेह और आसक्ति छोड़ दें, तो क्या बहनें उसे छोड़ देंगी? ऐसा कहनेवालों को वे या तो मूर्ख कहेंगी या तो बड़ा मनुष्य!

पुल की आवश्यकता

किन्तु फिर भी अगर हम चाहते हैं कि समाज इस उपदेश पर अमल करे और इसके आधार पर समाज का जीवन बने, तब तो उसके लिए कोई मार्ग दिखाना होगा। लोग कहेंगे कि तुमने यह जो बात बतायी, वह बहुत ऊँची है। पर, वहाँ पर पहुँचने का रास्ता तो बताइये। मान लीजिये, नदी के सामने के किनारे पर बहुत अधिक आनन्द है, बड़ा स्वर्ग है। कोई शख्स तैरकर वहाँ जा पहुँचता है या जा रहा है। वह कहता है, सामने किनारे पर बहुत अधिक आनन्द है। यह सुनकर दूसरे किनारे पर के लोग उससे सामने पहुँचने के लिए राह पूछते हैं। वह कहता है कि "अरे, मैं तैर रहा हूँ, वहीं जा रहा हूँ, देखते नहीं ! कूद पड़ो पानी में।" तो वे यही कहेंगे कि "भाई, हमसे यह नहीं बनेगा !" उनके लिए तो पुल ही बनाना होगा। अगर वहाँ पुल बन जाय, तो लोग सामने के किनारे पर जायँगे, वहाँ स्वर्ग का आनन्द लूटेंगे और अगर इस किनारे वापस आ जायँ, तो वह आनन्द सबमें बाँटेंगे। यह काम पुल से ही बनेगा।

हम भी मन में सोच रहे थे कि क्या इसके लिए कोई रास्ता है ? हमें एक रास्ता सूझा। हमें लगा कि उस रास्ते से सब लोग जा सकते हैं। वह रास्ता है, 'मेरा-मेरा' न कहना, अपने पास कोई आसक्ति न रखना। इसका भी आसान तरीका है, परिवार को बढ़ाना ! हम बहनों से यह कहना नहीं चाहते हैं कि तुम अपने बच्चों को प्यार न करो। प्यार में कोई दोष नहीं। बल्कि जिनमें प्यार है, वे परमेश्वर के परम प्रिय भक्त हैं। हम उनसे यही कहेंगे कि गाँव के सभी बच्चों को प्यार करो। घर में जो दो-चार लड़के हैं, सिर्फ वे ही तुम्हारे बच्चे नहीं। गाँव के जितने बच्चे हैं, उन सबको अपने ही बच्चे समझो। फिर तुम्हें न बद्रीकेदार जाने की जरूरत है, न 'अय्यर'। तुम्हारे गाँव में ही वे तीर्थ बन सकते हैं। परिवार तक सीमित अपने प्रेम को और व्यापक बनाइये। मैं कुटुम्ब को छोड़ने की नहीं, कुटुम्ब बढ़ाने की बात करता हूँ। फिर ये बहनें न कहेंगी कि तुम्हारा यह उपदेश हमसे नहीं बनेगा। कुटुम्ब छोड़ना कठिन है, लेकिन कुटुम्ब बढ़ाना मुश्किल नहीं, आसान है।

बिना कष्ट के कोई अच्छा काम नहीं बनता

किन्तु जब हम इसे आसान कहते हैं, तो उसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है, ऐसा नहीं। बिना कष्ट के कोई भी अच्छा काम नहीं बनता, इसलिए कुछ कष्ट तो मनुष्य को सहना ही पड़ता है। मामूली विद्या-प्राप्ति के लिए भी कितना कष्ट उठाना पड़ता है! व्यासमुनि ने महाभारत में कहा है: "सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्"—विद्या चाहते हो, तो सुख कहाँ से मिलेगा? विद्या-प्राप्ति के लिए भी सुख छोड़ना ही पड़ता है।

महाभारत में एक कहानी है! सत्यभामा और द्रौपदी बातें कर रही थीं। सत्यभामा ने पूछा: "स्त्रियों को सुख कैसे प्राप्त होगा?" द्रौपदी ने कहा: "दुःखेन साध्वी लभते सुखानि"—साध्वी दुःख से सुख प्राप्त कर सकती है। सुख-प्राप्ति के लिए कुछ दुःख तो सहन करना ही पड़ता है। व्यापार की मामूली बात लीजिये। घर छोड़कर परदेश जाना होगा, तकलीफ उठानी होगी, पर-भाषा सीखनी होगी, कभी-कभी खाना भी न मिलेगा। ये सब कष्ट सहन करेंगे, तभी व्यापार होगा। इसलिए कोई भी बड़ा काम बिना तकलीफ झेले नहीं हो सकता। उतने कष्ट के लिए लोग तैयार हैं, पर वे संन्यास या गृह-त्याग का कष्ट सहन नहीं कर सकते हैं।

मरने-मारने के रास्ते भी मुश्किल-भरे!

लोगों को धर्म-मार्ग प्रिय है, फिर भी लोग उस पर अमल नहीं कर पाते। इसका मुख्य कारण यही है कि उनके सामने लोक-सुलभ रास्ता नहीं रखा गया। स्वर्ग बहुत अच्छा है। पुराणों में उसका बहुत वर्णन आता है। हमारे कम्युनिस्ट लोग भी स्वर्ग का वर्णन करते हैं—हमारी आदर्श-रचना अमुक-अमुक प्रकार की होगी। 'उस हालत में स्टेट रहेगा ही नहीं', ऐसा भी वे वर्णन करते हैं। पर लोग पुराणवालों और कम्युनिस्टों से कहते हैं कि तुम्हारा स्वर्ग तो अच्छा है, लेकिन उसकी सीढ़ी तो बताओ। इस पर पुराणवाले कहते हैं कि अगर स्वर्ग देखना चाहते हो, तो तुम्हें मरना पड़ेगा। लोग कहते हैं कि खूब रहा तुम्हारा स्वर्ग! वाह, मरने के बाद स्वर्ग देखेंगे! कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि मारकर

स्वर्ग प्राप्त हो सकता है। इस तरह पुराणवाले मरकर स्वर्ग में जाने की बात करते हैं, कम्युनिस्ट लोग मारकर। लेकिन लोगों के लिए दोनों रास्ते मुश्किल हैं। वे न मरने के लिए तैयार हैं, न मारने के लिए। वे कहते हैं कि ऐसी कोई बात बताओ, जिससे इसी हालत में, इसी जगह, इसी रीति से स्वर्ग प्राप्त हो जाय। हम कहते हैं कि सारे गाँव की सामूहिक मालकियत बनाने का यह रास्ता धर्म के लिए सबसे आसान है।

ग्रामदान से अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, धर्मशास्त्री, तीनों खुश

परमेश्वर अत्यन्त फैली हुई चीज है। वह इस पार से उस पार तक फैला हुआ है। जितना अधिक हम फैल सकें, उतना ईश्वर के नजदीक जायँगे। एक था मेढ़क। उसने एक बैल देखा। वह माँ के पास गया और कहने लगा, "मैंने आज एक बड़ा प्राणी देखा।" माँ ने पूछा, "कितना बड़ा?" उसने पेट फुलाकर दिखाया, "इतना बड़ा!" उसने अपना पेट इतना फुलाया कि वह फट गया। इसी तरह अगर हम कहें कि अपना कुटुम्ब विश्वव्यापक बनाओ, तो हम मेढ़क के मुताबिक फूट जायँगे। "तू अपना घर छोड़ दे" यह कहना जितना कठिन है, उतना ही यह कहना भी कठिन है कि "तू अपना घर विश्व का बना दे।" हिंदुस्तान में ये ही दो बातें चलती हैं: या तो घर को छोड़ दो याने संन्यास का मार्ग ले लो या फिर सारी दुनिया को कुटुम्ब बनाओ। दोनों बातें कठिन हैं। इसलिए हमने बीच की राह दिखायी। हमने कहा: "सारे गाँव का एक परिवार बनाओ।" यह बहुत कठिन न होगा। इसके लिए काल भी अनुकूल है। याने ऐसा करने से ऐहिक लाभ होगा। आत्मा का कल्याण और साथ ही आत्मा की उन्नति भी होगी। विज्ञान के इस जमाने में छोटे-छोटे परिवार टिक नहीं सकते, बड़े व्यापक देश ही टिकेंगे। आज सारी दुनिया का परस्पर सम्बन्ध नजदीक आ गया है। इसलिए पहले जैसी संकुचित वस्तु न चलेगी, उसे फैलाना होगा। 'ग्रामदान' की बात विज्ञान के इस जमाने के अनुकूल है, जिससे आज के वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री खुश हैं और त्यागराजन् और अप्पास्वामी भी। क्योंकि आप घर से बाहर आये, बड़ा परिवार बना दिया। चार कदम तो

हमारी तरफ आये। ग्रामदान की यह बात वैज्ञानिकों को और अर्थशास्त्रियों को जितनी अच्छी लगती है, उतनी ही धर्मशास्त्रियों को भी अच्छी लगती है। ग्रामदान के खिलाफ बोलने के लिए अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों या धर्मशास्त्रियों के पास कोई दलील नहीं। तीनों को यह बात मान्य है।

विचार की बारिश

हम तो समझाने के अधिकारी हैं, करने के अधिकारी तो आप हैं। हम तो आज यहाँ हैं, कल दूसरे गाँव में। बारिश का काम है, पानी बरसाना और आपका काम है, खेती करना। बाबा किसान नहीं, बाबा बारिश है। वह विचार फैलायेगा। इसीलिए 'कुरल' में पहला स्थान भगवान् को दिया गया है और दूसरा बारिश को। "दानम् तपम् इरण्डुम् तंगा।" याने अगर बारिश न रहेगी, तो दान और तप भी न रहेगा। पूछा जा सकता है कि अगर साधारण बारिश न रहे, तो दान नहीं रहेगा, यह ठीक है। क्योंकि फसल न आयेगी, तो देने के लिए कुछ रहेगा ही नहीं। लेकिन बारिश के बिना तप तो हो सकेगा। तपस्वियों को तो तप के लिए फाका ही करना पड़ता है। किन्तु समझने की बात है कि 'कुरल' यहाँ विचाररूपी बारिश की बात करता है। अगर दुनिया में विचार की बारिश न रहे, तो दान, तप आदि भी नहीं रहेंगे। इसलिए बाबा ने यह नं० २ का अधिकार अपने हाथ में लिया है। अप्पास्वामी, त्यागराजन् आदि का अधिकार नं० १ में है। बाबा का बारिश का अधिकार है और आपका अधिकार है खेती करना!

तिरुवेय्यार (तंजौर)
२२-१-'५७

ग्रामदान ईश्वर का प्रथम संकल्प : ४८ :

आज हम वेद का एक मंत्र याद करते थे। भक्त भगवान् से कहता है: "भगवन्! तेरे अनेक संकल्प होते हैं। किन्तु तेरा जो पहला संकल्प हुआ होगा, उसी पर मेरी श्रद्धा है।" वह पहला संकल्प कौन-सा है? सबके लिए करुणा! फिर उसके बाद दूसरे पचासों संकल्प हुए होंगे। किसीकी मृत्यु का संकल्प हुआ होगा, तो किसीके जन्म का। उन संकल्पों का महत्त्व नहीं है। इसीलिए ऋषि कहता है, तेरे पहले संकल्प का ही महत्त्व है।

हम समझते हैं, यह ग्रामदान जो मिल रहा है, वह परमेश्वर का प्रथम संकल्प है। यह करुणा का कार्य है। इसीलिए महाराष्ट्र में और तमिलनाड में भी ग्रामदान की संख्या बढ़ रही है। जगह-जगह यह हवा पैदा हो रही है। सब लोग हमारी बात सुनते और जमीन की मालकियत छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। क्या कोई इसकी कल्पना कर सकता था? अक्सर बाप-बेटे में झगड़े चलते हैं। गाँवों में जातिभेद, पक्षभेद आदि हुआ करते हैं। किन्तु इन्हीं लोगों को जब यह सत्य-विचार अच्छी तरह समझाया जाता है, तो जमीन की मालकियत छोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं।

पुंडी (तंजौर)
२४-१-'५७

एक भाई ने लिखा कि "बाबा काम तो अच्छा करता है, लेकिन बार-बार ईश्वर का नाम क्यों लेता है ? वह अर्थशास्त्र की बात समझा दे, तो काफी है।" लेकिन अर्थशास्त्र की प्रेरणा से बाबा को छह साल घूमने की ताकत नहीं मिल सकती। उसे तो ताकत मिलती है, परमेश्वर के स्मरण से। बाबा बिलकुल बेफिक्र होकर घूम रहा है। वह किसीकी कोई परवाह नहीं करता। जिसको जो कहना हो, बेखटके सुनाता है। यह इसीलिए हो रहा है कि उसका पूरा भरोसा ईश्वर पर है। किसे खयाल था कि बिना किसी दबाव के लोग अपनी कुल-की-कुल जमीन की मालकियत छोड़ देंगे, ग्रामदान कर सकेंगे ? खैर, चंद ग्रामदान हो जाने पर भी हजारों ग्रामदान मिलेंगे, यह किसने सोचा था ? उड़ीसा के जंगलों के आदिवासियों ने हजारों ग्रामदान दे दिये, पर मदुरा जिले के सुधरे हुए ज्ञानी, पढ़े-लिखे बुद्धिमान् लोग भी ग्रामदान करेंगे, यह किसने जाना था ? अब परमेश्वर की करुणा की बाढ़ जोरों से आ रही है। "मारइल्लाद मांकरुणै वेल्लसे"—परमेश्वर की करुणा प्रकट हो रही है।

आज यह बोलते हुए हमारे सामने बापू खड़े हैं। हमारा कुल जीवन उनके चरणों में समर्पित है। हम तो जब बच्चे ही थे, तब से सब कुछ छोड़कर उनके पास पहुँचे थे। तब से आखिर तक उनके चरणों में रहकर सेवा करने की बुद्धि भगवान् ने हमें दी। आज उनके जाने के बाद उनकी सेवा के सिवा हमें और कुछ नहीं सूझ रहा है। उनके आशीर्वाद हमारे सिर पर हैं। अंदर-बाहर चारों तरफ हैं। व्यवहार में हम असंख्य गलतियाँ करते हैं। न तो हमसे अच्छी भाषा सधती है और न हम उसे बहुत ज्यादा काबू में रखने की कोशिश ही करते हैं। हमें बहुत ज्यादा भाषा पर काबू रखने पर भरोसा भी नहीं है। हमें तो परमेश्वर का स्मरण करते-करते बिलकुल खुलकर काम करने की आदत हो गयी है। इसलिए बीसों गलतियाँ हो जाती हैं, तो भी उनके लिए हमें पश्चात्ताप

नहीं होता है। क्योंकि वे गलतियाँ भी हम उन्हींको समर्पित करते हैं। केवल उनके काम में हमारा शरीर खतम हो जाय, यही एक वासना हमने रखी है। आज के इस पवित्र स्थान में माणिक्यवाचकर और दूसरे अनेक सत्पुरुषों के स्मरण कर हम बापू के चरणों में दृढ़-प्रतिज्ञ हैं कि इस देह से निरन्तर धर्म की सेवा ही होगी।

तिरुवारूर (तंजौर)
२० १-'५७

'सर्वोदय' अविरोधी दर्शन : ५० :

मनुष्य के जीवन का कुछ अंश व्यक्तिगत, पर बहुत-सा सामाजिक ही होता है। व्यक्तिगत अंश आकार में छोटा होने पर भी उसकी गहराई ज्यादा होती है। सामाजिक अंश आकार में बहुत बड़ा होने पर भी उसकी गहराई उतनी ही रहती है, जितनी व्यक्तिगत जीवन की। किन्तु किसी एक व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन की गहराई बहुत ज्यादा हो सकती है। दुनिया में ऐसे कई महात्मा होते हैं, जिनके व्यक्तिगत जीवन की गहराई कुल सामाजिक जीवन की गहराई से ज्यादा है। लेकिन ऐसे मनुष्य को छोड़ दें, तो कहा जा सकता है कि जितनी गहराई व्यक्तिगत जीवन की होती है, उतनी ही सामाजिक जीवन की भी होती है, पर उसका आकार बड़ा रहता है।

मिसाल के तौर पर आप अपना दिनभर का कार्यक्रम देखिये। हमारा बहुत-सा कार्य दूसरे लोगों के साथ ही चलता है, बहुत कम समय अपने खुद के काम के लिए मिलता है। व्यक्ति को अपने-आपको देखने का मौका उन्हीं क्षणों में मिलता है, जिन क्षणों में हम व्यक्तिगत कार्य करते हैं। वे हमारे जीवन के गहरे क्षण होते हैं। वहीं से हमें ताकत हासिल होती है। उस ताकत से समाज की सेवा करनी होती है। प्राचीन काल से आज तक जो लोग समाज की सेवा में रत रहे हैं, वे व्यक्तिगत जीवन की गहराई बढ़ाने में लगे हैं।

चिन्तनमय सेवा और सेवामय चिन्तन

प्राचीन काल से आज तक कार्य की दो शाखाएँ चलती आ रही हैं। आध्यात्मिक चिन्तन करनेवाले व्यक्तिगत गहराई बढ़ाने की अधिक सोचते हैं। वे कहते हैं कि समाज को इस गहराई का स्पर्श होगा, तो समाज-सेवा का काम यों ही स्वाभाविक हो जायगा। इसीलिए वे सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने की कोशिश नहीं करते। अपने चिन्तन की गहराई से समाज की सेवा करते हैं—'चिन्तनमय सेवा' करते हैं। इनसे भिन्न दूसरा वर्ग है, जो समाज की सेवा में, समाज के जीवन-परिवर्तन में लगा रहता है। उसे भी विचार की गहराई में जाना पड़ता है। लेकिन वह मानता है कि समाज-सेवा करने से ही मनुष्य विचार की गहराई में पहुँचता है। मैं चंद लोगों के साथ काम करता हूँ। उस काम में मुझे कुछ सफलता मिलती है, तो कुछ नहीं भी। सफलता नहीं मिलती, तो सोचने के लिए मजबूर होता हूँ—चिंतन के लिए प्रेरित होता हूँ। मेरे ध्यान में आता है कि मेरी अपनी क्या खामी है। क्रोध ज्यादा है, इसलिए लोगों से बनती नहीं, इसलिए काम भी नहीं बनता। वह दोष चाहे क्रोध हो, चाहे मोह, लोभ या मत्सर, मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। उसे दूर करने की मुझे प्रेरणा होती है। ऐसे सेवकों के जीवन का मुख्य आकार सेवामय होता है। वे चिंतन भी करते हैं, पर वह सेवामय ही होता है। इस तरह ऐसी दुनिया में अच्छे सेवकों के दो वर्ग पड़े हैं।

मैं उन सेवकों की बात नहीं करता, जो नाममात्र की सेवा करते और उसमें से व्यक्तिगत लाभ उठाना चाहते हैं। वास्तव में वे सेवक हैं ही नहीं। ऐसे महत्त्वाकांक्षी लोगों को मैं सेवक नहीं कहता। लेकिन जो सचमुच सेवक हैं, उनके दो वर्ग हैं। यह कहना गलत होगा कि इन दोनों में से पश्चिम में एक प्रवृत्ति है और पूर्व में दूसरी। दोनों जगह दोनों प्रकार के लोग हो गये हैं और वे अभी भी हैं। परन्तु ऐसा दिखाई देता है कि हिन्दुस्तान में चिन्तनमय सेवा का विचार अधिक दृढ़ है और यूरोप में शायद सेवामय चिंतन का। यह मैं स्थूल दृष्टि से कह रहा हूँ।

भूदान में व्यक्तिगत-सामाजिक भेद का विलय

भूदान और ग्रामदान में हम इन दोनों विचारों को बिलकुल एक भूमिका में लाना चाहते हैं। दोनों का भेद ही मिटा देना चाहते हैं। मैं अपना कुल-का-कुल शरीर, मन, इन्द्रियाँ, शक्तियाँ, सभी समाज को समर्पित कर देता हूँ। समाज में सृष्टि भी आ गयी। इसलिए मैं अपनी कोई अलग ताकत अपने लिए अलग नहीं रखता, समाज को सर्वस्व-समर्पण कर देता हूँ, तब मेरी अपनी व्यक्तिगत गहराई भी एकदम बढ़ जाती है। उसमें अहंकार नहीं रह जाता। समाज-कार्य करने के लिए ही मैंने अपना शरीर, मन आदि सब कुछ माना, इसलिए अपनी व्यक्तिगत चिंता छोड़ दी। परिणाम यह हुआ कि मेरी व्यक्तिगत गहराई एकदम बढ़ गयी। याने गहराई साधने के लिए मुझे सामाजिक सेवा कम नहीं करनी पड़ेगी।

जब मैं अपने बारे में सोचता हूँ, तो खुद का खाना-सोना भी सामाजिक जिम्मेवारी समझता हूँ। यह भेद नहीं कर पाता कि ये मेरे निजी कार्य हैं। याने उन्हें समाज-सेवा का एक अंग मानता हूँ। रात को ठीक समय सोना, निःस्वप्न निद्रा पाना, ठीक समय पर उठना, यह सारा सामाजिक सेवा के कार्यक्रम का अंग समझता हूँ। मुझे यह भास नहीं होता कि मैं इतना समय सामाजिक सेवा में लगाता हूँ और इतने घंटे व्यक्तिगत काम में। २४ घंटे में मेरी जितनी क्रियाएँ होती हैं, वे सबकी सब सामाजिक सेवा की होती हैं, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

सारांश, जब तक जीवन के ये दो टुकड़े एक नहीं होते, तब तक जीवन में खिंचाव बना रहेगा। हमारा हरएक व्यक्तिगत कार्य सामाजिक और हरएक सामाजिक कार्य व्यक्तिगत होना चाहिए। हमारे और समाज के बीच कोई दीवाल न होनी चाहिए। बहुत बार मैं उपमा देता हूँ। पाँच अँगुलियों से जो काम किया जाता है, वह हाथ ने किया या अँगुलियों ने ? दोनों एक ही हैं। जितने काम अँगुलियों से होते हैं, उतने ही हाथ से और जितने काम हाथ से होते हैं, उतने ही अँगुलियों से। इसलिए व्यक्ति और समाज का विकास अलग नहीं रहता। आजकल लोग इन दोनों को अलग मानते हैं। दोनों का विरोध मान

लेते और दोनों का संतुलन करने की कोशिश भी करते हैं। हम कहते हैं कि जैसे विरोध गलत है, वैसे ही संतुलन भी गलत !

ग्रामदान में व्यक्ति का कुछ नहीं और सब कुछ भी

ग्रामदान में व्यक्तिगत मालकियत मिट जाती और बढ़ भी जाती है। ग्रामदान में मेरी कुछ भी जमीन नहीं और सारी जमीन मेरी है। आज मेरी पाँच एकड़ जमीन है। गाँव में कुल ५०० एकड़ जमीन है, जिसमें मेरी ५ और गाँव की ४९५ एकड़ है। लेकिन ग्रामदान के बाद मेरी शून्य एकड़ और वैसे ही ५०० एकड़ भी जमीन है। माँ की घर में क्या सत्ता है ? माँ की घर में कोई सत्ता नहीं है और सारी सत्ता है। यही हालत बच्चों की है। छह महीने के छोटे बच्चे की घर में कोई सत्ता नहीं या तो सब कुछ उसका है। एक अकेले छोटे लड़के ने घर के चार-पाँच मनुष्यों का कुल-का-कुल ध्यान खींच लिया है। उसे दुःख होता है, तो घर के सभी सदस्य दुःखी होते हैं। वह खुश हो, तो घर के सभी लोग खुश होते हैं। उसकी घर के लोगों पर इतनी सत्ता चलती है। घर का बादशाह अगर कोई है, तो वह बालक है। दूसरे ढंग से देखा जाय, तो बच्चों की हस्ती ही क्या है ? कोई खाना देगा, तो खायेगा, नहीं तो क्या खायेगा ? एक तरफ से उसकी कुछ भी सत्ता न होना और दूसरी तरफ से सब कुछ सत्ता होना, ये दोनों बातें घर में सध सकती हैं। आदर्श ग्रामदान के गाँव में ऐसा ही होना चाहिए। व्यक्ति और समाज का भेद इसमें मिट जायगा। व्यक्ति के विकास के लिए जो कुछ किया जायगा, उससे समाज का विकास हो जायगा और समाज के विकास के लिए जो कुछ किया जायगा, उससे व्यक्ति का विकास होगा। मैं सबको विद्या देता हूँ। उससे मेरी विद्या घटती नहीं, बल्कि पक्की मजबूत बनती है। विद्या के बारे में तो सब लोग यह मानते हैं, परन्तु लक्ष्मी के बारे में ऐसा नहीं समझते। अपनी लक्ष्मी मैं किसीको देता हूँ, तो वह घट गयी, परन्तु अपनी विद्या मैं देता हूँ, तो वह घटती नहीं है। वहाँ तो कोई विरोध नहीं महसूस होता है। परन्तु लक्ष्मी के बारे में विरोध महसूस होता है। आपको लक्ष्मी दे दी, तो मेरी घट गयी, ऐसा ही लगता है। किन्तु यह समझने की बात है कि अगर मैं गाँव की सेवा में पैसा देता हूँ, तो आपको देने से मेरी भी बढ़ती है।

ग्रामदान में डरने की कोई चीज ही नहीं है। 'सर्वोदय' में जीवन के दो टुकड़े बनते ही नहीं। व्यक्ति के विरुद्ध समाज खड़ा नहीं होता और न समाज के विरुद्ध व्यक्ति खड़ा होता है। व्यक्तिगत जीवन के विरुद्ध सामाजिक जीवन और सामाजिक जीवन के विरुद्ध व्यक्तिगत जीवन खड़ा नहीं होता। सेवा और चिन्तन के अलग-अलग दो टुकड़े नहीं होते। सेवा ही चिन्तन और चिन्तन ही सेवा होती है।

एकान्त और लोकान्त में विरोध नहीं

मैं स्नान करने के लिए स्नान-घर में गया। लोग समझते हैं कि मुझे वहाँ एकान्त प्राप्त हुआ। मैं आपके सामने बोल रहा हूँ, लोग समझते हैं कि मेरा एकान्त खण्डित हुआ। लेकिन अब भी मेरा एकान्त ही चल रहा है। अगर इस समय मैं एकान्त महसूस नहीं करता, तो कहना होगा कि एकान्त को मैं समझ नहीं सका। यहाँ मेरा एकान्त क्या बिगड़ गया? स्नान के लिए गया, तो वहाँ बाल्टी थी, पानी था, धोती रखी थी। इतनी सारी चीजें सामने होते हुए भी वहाँ मेरा एकान्त था, तो इतने लोगों को सामने बैठने से मेरा एकान्त कैसे खतम हो सकता है? अगर आप नहीं होते, तो मन में चिन्तन चलता, जो अभी बोलकर कर रहा हूँ। आपकी उपस्थिति मुझे कहाँ रोकती है, उल्टे वह मुझे प्रेरणा दे रही है कि मैं ठीक ढंग से चिन्तन कर आपके सामने रखूँ। इसलिए मेरा एकान्त बिगड़ता नहीं। इससे चिन्तन सहज और सुलभ होता है। चरखा कात रहा हूँ, अच्छा चिन्तन चलता है और सामाजिक सेवा भी हो रही है। सामाजिक सेवा का और चिन्तन का एक साथ रहने में क्या बिगड़ेगा?

अगर हम फैक्टरी में काम कर रहे हों, बड़े-बड़े जोरदार यन्त्र चल रहे हों, कानों में बड़ी तेज आवाज आ रही हो और लोगों का शोषण हो रहा हो, तो वहाँ चिन्तन क्या होगा? उस कर्म के स्वरूप के कारण ही चिन्तन नहीं हो पाता। कर्म का स्वरूप और परिणाम दोनों सौम्य चाहिए। तभी वे चिन्तन के अनुकूल होते हैं।

उत्तम खेती का काम चल रहा है, सारी दुनिया को उससे पोषण मिलता है, किसीका विरोध नहीं होता, खुली स्वच्छ हवा है, शान्ति है, सौंदर्य है, कोई जोरदार आवाज भी नहीं है। इस तरह कर्म का स्वरूप और परिणाम दोनों कल्याणकारक हों, तो उस काम में रहनेवाले मनुष्य को चिन्तन के लिए स्वतन्त्र समय निकालने की जरूरत ही नहीं। खेती में सेवा और चिन्तन का विरोध नहीं रहता। बल्कि सेवा और चिंतन का विभाग भी नहीं रहता। सेवा में पूरा चिन्तन होना चाहिए और चिन्तन में पूरी सेवा। व्यक्तिगत काम में सामाजिक काम पूरा हो जाता है, सामाजिक काम में व्यक्तिगत काम। एक घड़ा गंगा में रखा हो, तो गंगा में घड़ा है और घड़े में भी गंगा। दोनों बातें सही हैं। वैसे ही सामाजिक कार्य में व्यक्तिगत कार्य, यह भी सही है और व्यक्तिगत कार्य में सामाजिक कार्य भी सही है। 'सर्वोदय' के कार्य में यही खूबी है, दूसरे कार्यों में यह खूबी नहीं!

पट्टुकोट्टै (तंजौर)
७-२-'५७

ग्रामदानी गाँवों में वर्णाश्रम-धर्म की स्थापना : ५१ :

हमने बहुत बार कहा है कि यह आंदोलन धार्मिक लोगों को उठा लेना चाहिए। वैसे 'धार्मिक' नाम की कोई जाति नहीं है। हर कोई शख्स, जिसके दिल में धर्म है, धार्मिक है। किन्तु कुछ लोग सब कुछ छोड़कर धर्म की सेवा के लिए अपना जीवन देते हैं। हम अपनी गिनती ऐसे लोगों में करते हैं। बचपन से हमारा प्रेम और आसक्ति केवल धर्म-विचार पर ही रही और अभी तक हमने अपना सारा जीवन उसी काम में लगाया है। ऐसे लोगों पर यह जिम्मेदारी आती है कि समाज की धारणा किस तरह हो, इसकी राह दिखायें।

धार्मिकों की जिम्मेदारी

धर्म-कार्य करने की जिम्मेदारी सब पर है, जिनके हृदय में धर्म की भावना पड़ी है। साधारणतः सभी गृहस्थों पर यह जिम्मेदारी है। पर लोगों को धर्म-

मार्ग पर ले जाने की जिम्मेदारी उन लोगों की मानी जायगी, जिनको भगवान् ने धर्म के लिए ही जीवन-समर्पण करने की प्रेरणा दी हो। हमने कहा है कि भूदान, ग्रामदान-आंदोलन 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' का आंदोलन है। यह शब्द भगवान् गौतम बुद्ध का है। लेकिन भगवद्गीता में भी इसका जिक्र आता है। गीता ने उसे 'यज्ञ-चक्र' नाम दे दिया है। जो इस यज्ञ-चक्र को न चलायेगा, उसका जीव पापमय बनेगा। इसलिए हर शख्स का कर्तव्य है कि वह धर्म-चक्र, यज्ञ-चक्र चलाने में अपना हिस्सा दे। हमें खुशी है कि धर्म-विचार को पहचाननेवाले कई सज्जन इस कार्य में लगे हैं। हम समझते हैं कि इस आंदोलन में ऐसे जितने पुरुष हैं, उससे अधिक संख्या में शायद ही किसी आंदोलन में हों।

अकेला व्यक्ति ही धर्म-कार्य करता है

बहुत-से लोग पूछते हैं कि ऐसा कार्य एक शख्स कैसे करे? हमारा उल्टा ही विश्वास है। हम समझते हैं कि धर्म-कार्य अकेला पुरुष ही करता है। ईसाई-धर्म की प्रेरणा अकेले ईसामसीह के दिमाग में पैदा हुई और उनके शिष्यों के जरिये यूरोप में फैली। उनके सिर्फ बारह शिष्य थे। उनमें से भी एक शिष्य तो काम ही न कर सका, बाकी लोगों ने उनके मरने के बाद काम किया। जब तक वे जिंदा थे, अकेले ही काम करते रहे। अकेले पैगम्बर मुहम्मद के हृदय में इसलाम की ज्योति प्रकट हुई। ऐसी मिसालें आप बार-बार देखेंगे कि एक-एक शख्स ने देश का रंग ही बदल दिया। प्रकाश चाहे छोटा हो या बड़ा, उसके सामने अंधकार टिक ही नहीं सकता। अकेला सूर्य और अकेला दीपक अंधकार का निवारण करता है, इसी तरह धर्म-कार्य व्यक्ति ही करता है और अकेले ही करता है। फिर उसके इर्दगिर्द पाँच-पचास दूसरे खड़े हो जायँ, तो अलग बात है। किन्तु दस मनुष्य मिलकर एक चेतन नहीं मिलता। एक मनुष्य खड़ा हो गया, तो बस, चेतन हो गया।

गुण-विकास के लिए वर्णाश्रम

समझने की जरूरत है कि इस समय हिंदुस्तान के लिए इससे बेहतर धर्म-मार्ग कोई दूसरा नहीं है। कुछ लोग पूछते हैं कि क्या भाई, तुम सारे गाँव को ग्रामदानी बनाने जा रहे हो, तो वर्णाश्रम-भेद मिटाओगे ही? हम उनसे

कहते हैं कि धर्म सूक्ष्म होता है। बिलकुल ऊपर-ऊपर से देखने में वह मालूम नहीं होता, अन्दर से देखना पड़ता है। चातुर्वर्ण्य क्या है ? चारों आश्रम क्या हैं ? क्या यह कोई बाह्य वेष है ? वह विचार और अनुभव की बात है। अपने को ऊँचा समझ लिया, तो क्या वर्ण हो गया ? जो अपने को ऊँचा समझेगा, वह ईश्वर की निगाह में सबसे नीचे गिरेगा। इसलिए जो दावा करेगा कि मैं ऊँचा हूँ, तो वह दावा ही उसे खतम करेगा। चार वर्णों की कल्पना लोगों में भेद करने के लिए नहीं, समाज के गुण-विकास के लिए है। चार आश्रम भी गुण-विकास के लिए हैं। हम तो नये सिरे से चार वर्ण और चार आश्रम खड़ा करेंगे। हम चाहेंगे कि हरएक व्यक्ति में चार आश्रम और चार वर्ण हो जायँ।

ग्रामदान के गाँवों में किस प्रकार चार वर्ण और चार आश्रमों की स्थापना होती है, उसका हमने एक छोटा-सा सूत्र बनाया है। जैसे मेयक्कण्डार का सूत्र या ब्रह्मसूत्र हैं, वैसे ही चार शब्दों में हमने चार वर्ण और चार आश्रम रख दिये हैं। वे चार गुण जिनमें हैं, उनमें चार वर्ण और चार आश्रम हैं।

ब्राह्मण-वर्ण की स्थापना—शांति

चारों वर्ण अत्यन्त पवित्र होते हैं। लोगों का खयाल है कि कुछ वर्ण ऊँचे और कुछ वर्ण नीचे हैं, ऐसी बात नहीं। गीता में कहा गया है कि "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः"—जो अपने-अपने कर्तव्य में परायण होकर निष्काम-बुद्धि से परमेश्वर को सेवा समर्पित करेगा, वह समानभाव से मोक्ष पायेगा। हम कहना चाहते हैं कि जहाँ चित्त में शांति है, वह ब्राह्मण का लक्षण है। हम चाहते हैं कि ग्रामदान के गाँव में शांति हो। सबके हृदय में राम हो। आज के गाँवों में शांति नहीं है। देश में भी शांति की चाह है, पर राह ली है अशांति की। शांति की स्थापना तभी होगी, जब सब लोगों के हृदय के दुःख मिट जायँगे। उन दुःखों के कारणों में एक साधारण दुःख है कि लोगों को सर्वसाधारण चीजें मुहय्या नहीं होतीं। दूसरा कारण यह है कि कुछ लोगों के पास चीजें ज्यादा पड़ी हैं, इससे उनके चित्त को शांति नहीं होती।

अमेरिका में सम्पत्ति और उत्पादन खूब है। हम भी उत्पादन बढ़ाने की

बात किया करते हैं। हमें अपने देश में उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु क्या हम अमेरिका बनेंगे, तो सुखी होंगे? अमेरिका में ज्यादा-से-ज्यादा आत्महत्याएँ और लोग पागल होते हैं। वहाँ पागलपन के अनेक प्रकार हैं, जिसे 'मेनिया' कहते हैं। वहाँ उत्पादन और भोग की कोई कमी नहीं, पर शान्ति नहीं है। शरीर के लिए कम-से-कम जितना चाहिए, उतना न मिले, तो शान्ति नहीं रहती। इसलिए जहाँ-जहाँ राम की स्थापना होगी, वहाँ ब्राह्मण की प्रतिष्ठा होगी। इसमें कोई शक नहीं कि ग्रामदान के गाँव में दूसरे किसी भी गाँव से ज्यादा शान्ति रहेगी।

क्षत्रिय-वर्ण की स्थापना—दम

चार वर्णों में दूसरा वर्ण है, क्षत्रिय। क्षत्रिय याने अपने हाथ में तलवार लेनेवाला। इन दिनों ऐसे लोग बहुत बढ़ गये हैं और शस्त्रास्त्र भी बहुत बढ़ गये हैं। हरएक सरकार के पीछे शस्त्रास्त्र का बल रहता है। इससे सारी दुनिया निर्वीर्य और भयभीत बनी है। क्षत्रिय का सच्चा लक्षण है निर्भयता। निर्भयता किसी प्रकार के शस्त्रास्त्र से नहीं आती। उसकी स्थापना करने के लिए हम दमरूप क्षत्रिय की स्थापना करते हैं। 'दम' याने अपने पर अंकुश रखना। जहाँ सब लोग अपने पर काबू या दमन नहीं कर पाते, वहाँ बाहर से दमन करने की बात आती है। हम समझते हैं कि ग्रामदान के गाँवों में दूसरे किन्हीं गाँवों से दम की प्रतिष्ठा अधिक होगी। दूसरे का छीनने की इच्छा होगी ही नहीं; क्योंकि कोई दूसरा है ही नहीं, सब अपने ही हैं। सारे गाँव की जमीन एक होने और मालकियत मिट जाने पर हरएक मनुष्य अपने पर काबू रखेगा। इसी दम को हम क्षत्रिय-वर्ण की स्थापना कहते हैं।

वैश्य-वर्ण की स्थापना—दया

तीसरा है, वैश्य-वर्ण। वैश्य के लक्षणों का अगर एक शब्द में वर्णन करना हो, तो वह है दया। हिन्दुस्तान में मांसाहार छोड़े हुए लोगों की गिनती की जाय, तो वैश्यों की संख्या ब्राह्मणों से ज्यादा निकलेगी। वैश्य का लक्षण ही है, दीनों का सँभाल करना, उनके लिए संग्रह करना और अपने संग्रह से

सबकी रक्षा करना ! वैश्य का दया से बढ़कर दूसरा कोई गुण ही नहीं हो सकता। वैश्यों की स्थापना ग्रामदान के गाँव में जरूर होगी। दया और करुणा के बिना ग्रामदान का आरंभ ही नहीं होता। आज दया कहाँ है ? दिल अत्यन्त निष्ठुर बन गये हैं। हम दूसरों की आपत्तियाँ देखते रहते हैं, पर उनके लिए कुछ करने की इच्छा ही नहीं होती।

शूद्र-वर्ण की स्थापना—श्रद्धा

चौथा वर्ण है, शूद्र। शूद्र के बिना दुनिया चल ही नहीं सकती। शूद्र के लक्षणों का अगर एक ही शब्द में वर्णन करना हो, तो वह श्रद्धा ही है। शूद्र सेवा-प्रधान होता है। बिना श्रद्धा और भक्ति के सेवा हो ही नहीं सकती। इसलिए शूद्र का मुख्य गुण सेवा है और श्रद्धा है उसका आन्तररूप। आप ही बताइये कि ग्रामदान के बच्चों के दिल में श्रद्धा पैदा होगी या नहीं ? आज भूमिहीन और गरीबों के बच्चों को अनाथ समझकर कुछ सज्जनों को उनका पालन करना पड़ता है। वह जिम्मा गाँव का होना चाहिए। जहाँ आपने ग्रामदानी गाँव बनाया, वहीं 'अनाथाश्रम' खोल ही दिया। दुनियाभर के अनाथों का एकत्र संग्रह करने की कोई जरूरत नहीं है। ग्रामदानी गाँवों में किसीका पिता मर जाय, तो एक पिता मर गया, पर १५० और पिता मिल गये। ग्रामदान के गाँव में एक-एक बच्चे को सौ-दो सौ बाप होंगे। ग्रामदान के गाँव में एक-एक माता को तीन-तीन सौ, चार-चार सौ लड़के होंगे। इसलिए स्वतन्त्र अनाथाश्रम खोलने की कोई जरूरत ही न रहेगी। फिर उन लड़कों को समाज के लिए कितनी श्रद्धा होगी ? वे बचपन से ही सीखेंगे कि जिस समाज में हम पैदा हुए, वह कितना दयालु और प्रेमी है कि हम सब बच्चों की बराबर रक्षा करता है।

शमरूप संन्यासाश्रम की स्थापना

इस तरह शम, दम, दया और श्रद्धा, इन चार गुणों की समाज में प्रतिष्ठा हो जाने पर तो चार वर्णों की स्थापना हो जाती है। अब ग्रामदान के गाँव में चार आश्रमों की स्थापना कैसे होगी, यह देखें ! पहला संन्यास-आश्रम है। समाज को

संन्यासी की अत्यन्त आवश्यकता है, यह सबको मालूम है। क्योंकि संन्यासी रहा, तो सबकी सेवा करने के लिए मुफ्त का नौकर मिल जायगा। वह सर्वत्र ज्ञान-प्रचार करता चला जायगा। संन्यासी का लक्षण है शम। जहाँ चित्त में शान्ति नहीं, वहाँ संन्यास भी नहीं है। बाल मुड़ाने या दाढ़ी बढ़ानेभर से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। संन्यासी की परीक्षा है शम, शान्ति। ग्रामदान से हम इसी शम-रूप संन्यास-आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

दमरूप वानप्रस्थाश्रम की स्थापना

दूसरा आश्रम है, वानप्रस्थाश्रम। वानप्रस्थाश्रम का लक्षण है, दम। हमें तपस्या से इंद्रियों का दमन करना है, अपने को संपूर्ण रूप से जीत लेना है। इस तरह जहाँ दम गुण आ जाय, वहाँ वानप्रस्थाश्रम की स्थापना हो जाती है। ग्रामदान से हम इसी दमरूप वानप्रस्थाश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

दयारूप गृहस्थाश्रम की स्थापना

तीसरा आश्रम है, गृहस्थाश्रम। गृहस्थाश्रम का लक्षण है—दया। 'तिरुकुरल' ने भी कहा है कि गृहस्थ का सबसे श्रेष्ठ गुण है दया, करुणा, प्रेम। इसलिए जहाँ दया की प्रतिष्ठा हो जाती है, वहाँ गृहस्थाश्रम की स्थापना हो गयी। ग्रामदानी गाँव में हम दयारूप गृहस्थाश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

श्रद्धारूप ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना

चौथा आश्रम है, ब्रह्मचर्याश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम का लक्षण है, श्रद्धा। जहाँ श्रद्धा की प्रतिष्ठा हो जाय, वहाँ ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हो गयी। ग्रामदान से हम श्रद्धारूप ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

ग्रामदान की चतुःसूत्री

शम, दम, दया और श्रद्धा, इन चार शब्दों में चार वर्ण और चार आश्रम आ जाते हैं। 'शम, दम, दया, श्रद्धा' ग्रामदान की यह चतुःसूत्री है। इस प्रकार ग्रामदानी गाँव बनेंगे, तो धर्म-स्थापना या धर्म-चक्र-प्रवर्तन होगा। इसलिए हमारी

माँग है कि जिनके हृदय में परमेश्वर ने कुछ-न-कुछ धर्म-भावना रखी है, उन सबको इस काम में पड़कर जल्द-से-जल्द इसे पूरा करना चाहिए।

शाक्कोटै (रामनाड़)
१४-२-'५७

धर्मसंस्थाओं के त्रिविध कर्तव्य : ५२ :

आप देख रहे हैं कि हमारे स्वामीजी (उण्ड्रकुडीजी) भूदान एवं ग्रामदान के काम में अपना समय दे रहे हैं। अक्सर ये मठाधीश आदि इस तरह के कामों में अभी तक रुचि न दिखाते थे। इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि इन मठों आदि का वही पुराना तरीका है। यद्यपि वे जमीन-जायदाद रखते हैं, फिर भी जन-सेवा की ओर उनका ध्यान नहीं। पूजा-अर्चना करना, कोई पाठ पढ़ना, धार्मिक व्याख्यान देना, ग्रंथों का पठन-पाठन आदि थोड़े-से कार्यों को ही वे अपना पूरा कर्तव्य समझते हैं। मेरी नम्र राय में यह बहुत अधूरा विचार है। इस युग की क्या माँग है—इसका उसमें भान नहीं है।

विचार-शोधन प्रथम कार्य

जो धार्मिक जीवन बिताना चाहते हैं, उनको कम-से-कम तीन काम तो अवश्य ही करने चाहिए। पहला है विचार-संशोधन। लोगों को पुराने ग्रंथ पढ़ाते चले जायँ, इतने से काम नहीं होता; उसकी छानबीन भी करनी चाहिए। पुराने विचारों में कुछ अंश अच्छा भी होता है और कुछ गलत भी। इसलिए गलत और अच्छा, दोनों अंश इकट्ठा कर लोगों के सामने रखें, यह धर्म-कार्य न माना जायगा। सार और असार की पहचान होनी ही चाहिए।

संतरे के फल को हम वैसे-का-वैसा नहीं खाते। छिलके निकालते, मुँह में डाल, चबाकर रस लेते और असार अंश बाहर थूक देते हैं। उत्तम-से-उत्तम चीज का भी हम इसी प्रकार सेवन करते हैं। केले के भी ऊपर का छिलका हटाना पड़ता है। नारियल के भी ऊपर की सारी चीजें फेंकनी पड़ती हैं। हर चीज में कुछ ऐसे अंश होते हैं, जिन्हें छोड़कर बाकी ग्रहण करते हैं। इसीको 'सार-

असार-विवेक' कहते हैं : वेद में भी कहा है : "सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।" जैसे हाथ में चलनी लेते हैं, उसमें अनाज डाला जाता है और उसे चालते हैं, वैसे ही जहाँ ज्ञानी मनुष्य अपनी वाणी की छानबीन कर लेते हैं, वहीं लक्ष्मी रहती है। वेद एक बड़ा उत्तम ग्रंथ है। उसे भी वैसा-का-वैसा नहीं खाना चाहिए। उसका भी सारासार देख असार हिस्सा छोड़ और सार ले लेना चाहिए, तभी वह हमारे काम आयेगा। इसलिए पुराने ग्रंथों का हम पाठ करते चले जायँ, धार्मिक व्याख्यान देते चले जायँ, इतने से धर्म-कार्य नहीं होगा। उन ग्रन्थों में से अच्छे विचार लेकर गलत विचारों को छोड़ देना चाहिए। यह पहचानना चाहिए कि कौन-सा विचार सही है और कौन-सा गलत है। फिर जो अच्छे हैं, उसमें नये अच्छे विचार डालने चाहिए। भोजन में भी हम ऐसा ही करते हैं। अनाज लेकर, पीसकर और चलनी से असार चालकर सारभूत आटा ले लेते हैं। उस आटे में घी और शक्कर डालते हैं, तो वह पकवान बन जाता है।

धर्मचारी पोस्टमैन न बनें

अक्सर इन मठों के जरिये विचार-संशोधन का काम नहीं होता। वे इन पुरानी किताबों को अक्षरशः सिर पर उठाते हैं, जैसे पोस्टमैन डाक का कुल बोझ सिर पर उठा लेता और उसे घर-घर पहुँचा देता है। किन पत्रों में क्या सार और क्या असार है, यह देखना उसका काम नहीं। उसका काम है, सारे पत्र पहुँचा देना। इसी तरह मठवाले समझते हैं कि पुराने ग्रन्थों को लोगों के पास तक पहुँचा देना ही हमारा काम है। वे सिर्फ पोस्टमैन का काम करना चाहते हैं, सार-असार का विवेक पढ़नेवाले कर लें। लेकिन अगर पढ़नेवाले इतने योग्य होते कि खुद सार-असार का विवेक रखते, तो इन लोगों का काम ही क्या था? किन्तु ऐसी योग्यता सब लोगों में नहीं रहती है। इसलिए धर्मचारी की जरूरत है। जो यह हिम्मत नहीं कर पाता कि फलाना असार अंश है, इसे साफ कर निकाल देना चाहिए, वह धर्म-कार्य में अपूर्ण ही सिद्ध होगा। वह धर्म को आगे नहीं बढ़ा सकता, युग-धर्म के अनुकूल धर्म नहीं बना सकता। वह अग्नि जलाकर उसमें घी

जलाता रहेगा और समझेगा कि यज्ञ हो रहा है, भगवान् संतुष्ट हो रहे हैं। लेकिन भगवान् संतुष्ट हैं या नाराज, यह तो भगवान् से ही पूछना पड़ेगा। जिस जमाने में जंगल के जंगल ही पड़े थे, गायें खूब थीं। उस जमाने में अग्नि जलाने में घी का उपयोग किया गया, पर आज यदि हम इस तरह का यज्ञ शुरू कर दें, तो क्या चलेगा?

मूढ़ आस्तिकता न रखें

सुबह का समय था। पिता-पुत्र पूरब की तरफ जा रहे थे। पिता ने लड़के से कहा कि "छाता जरा पूरब की ओर रखा करो।" लड़के ने सुन लिया। फिर वह लड़का अकेला शाम को घूमने के लिए निकला। सूर्य पश्चिम की तरफ था। पिता की आज्ञा थी कि छाता पूरब की ओर रखो। ठीक उसी तरह वह चलने लगा। यह देख किसीने कहा: "अरे, यह तो शाम का समय है। सूर्य पश्चिम की ओर है। पश्चिम की ओर छाता रखना चाहिए।" लेकिन उसने कहा कि "नहीं, मेरे पिता ने यह नहीं कहा।" वह बाप के शब्द के अनुसार बराबर चलना चाहता है। पुराने जमाने में फलाना-फलाना धर्म-कार्य माना जाता था। इसलिए उन धर्म-कार्यों को हम आज भी करते रहें, तो वह धर्म के नाम से अधर्म होगा। धर्म के प्रति श्रद्धा न रहेगी और लोग नास्तिक हो जायँगे। जो लोग नास्तिक बनते हैं, उनकी जिम्मेवारी इन्हीं आस्तिकों पर है। यह मूढ़ आस्तिकता है। इसलिए धर्म-विचार में संशोधन होना ही चाहिए।

मठाधीशों से धर्म आगे नहीं बढ़ा

कुछ लोग संशोधन करने जाते हैं, तो पुराने लोग एकदम चिल्लाते हैं। उनके चिल्लाने के डर से हम सच्ची बात लोगों के सामने न रखें, तो यही कहा जायगा कि हम धर्म को ही भूल गये। अक्सर मठाधीश सँभलकर रहता है। कई बातों का वह त्याग करता है, लेकिन एक त्याग नहीं कर पाता। वह लोक-निन्दा सहन नहीं कर सकता। इससे सत्य-निष्ठा में भी कमी आती है। जहाँ सत्य-निष्ठा में कमी आयेगी, वहाँ धर्म कैसे टिकेगा? इसलिए जो धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम विचार-संशोधन करना ही चाहिए।

नये-नये विचार ग्रहण कर धर्म को बढ़ाते चले जाना चाहिए। धर्म प्रतिदिन बढ़ना चाहिए।

जो पुराने नालवर (चार श्रेष्ठ, तमिलनाड के चार श्रेष्ठ संत पुरुष) हो गये, वे नालवर ही रहे, अलवर (पाँच श्रेष्ठ) हुए ही नहीं। सिक्खों ने कहा कि दस गुरु हो गये, बाद में ग्यारहवाँ गुरु हुआ ही नहीं। आलवार बारह हो गये। जैसे एक साल में बारह महीने होते हैं, तेरह नहीं, वैसे ही आलवार भी तेरह नहीं हो सकते। 'नायनमाल' ६३ हो गये, तो एक रुपये में एक पैसा कम रह गया। लेकिन ६४वाँ नायनमाल हो ही नहीं सकता। यह सब क्या है? पुराने सब भक्त हो गये, तो क्या हम अभक्त हैं? हममें नया भक्ति-मार्ग ढूँढ़ने की हिम्मत होनी चाहिए। मठवालों से अगर यह हो जाय, तो धर्म बहुत आगे बढ़ेगा।

लेकिन अक्सर ऐसा कार्य मठवालों से नहीं हुआ। जो मठों के बाहर हैं, उन्हींसे हुआ। राजा राममोहनराय, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, अरविंद घोष जैसे स्वतन्त्र व्यक्तियों ने ही सुधार किया, पुराने शंकराचार्य, मठाधीश आदि देखते ही रह गये। आद्य शंकराचार्य में तो स्वतंत्र प्रज्ञा थी। उन्होंने पुराने गलत विचारों पर प्रहार किया—धर्म में संशोधन किया। लेकिन अब जो शंकराचार्य की परम्परा चली है, वे शब्दों को प्रमाण माननेवाले हो गये। इसलिए ये मठवाले धर्म की प्रगति रोकने में ही काम देते हैं। टॉलस्टॉय ने ईसाई-धर्म की उत्तम-से-उत्तम सेवा की। लेकिन चर्च ने उनका बहिष्कार किया। सच्चे धर्म को पहचाननेवालों पर पुराने धर्मवालों का प्रहार होता है। इस तरह मठवाले अक्सर नये सुधारक के प्रतिकूल ही रहे। लेकिन इसके आगे ऐसा ही रहना चाहिए, ऐसा कोई कानून तो नहीं है। इसलिए उन्हें विचार-संशोधन का काम करना चाहिए।

लोक-जीवन में करुणा की स्थापना द्वितीय कार्य

दूसरी चीज मठवालों को यह करनी चाहिए कि वे लोक-जीवन में प्रवेश कर करुणा की स्थापना करें। आज तो एक देवता की मूर्ति खड़ी कर ली, एक नारियल चढ़ा दिया, बस कर्तव्य खतम हो गया! लेकिन इससे जीवन में सुधार

न होगा, वह तो एक संकेत है। अपना समर्पण तो गाँव को, लोगों को करना चाहिए। लोगों में करुणा का भाव आना चाहिए। हम परमेश्वर के पास जाकर उसकी करुणा या दया चाहते हैं, तो हम पर भी किसी पर दया दिखाने की कोई जिम्मेवारी है या नहीं ? हम लोगों के साथ निष्ठुर बनते चले जायँ और भगवान् से कहते रहें कि तू हम पर दया कर, मुझे माफ कर, तो क्या यह उचित होगा ? वह यही कहेगा : "तू कठोर बनता है, तो तेरे साथ मैं भी कठोर बनूँगा।" अग्नि पर पैर रखकर फिर उससे माफी माँगने पर भी वह जलाने से नहीं बचता। पहली ही बार जलाकर वह सदा के लिए उससे बचने की शिक्षा देता है। क्या भगवान् इतना मूर्ख है कि हम बोयेंगे बबूल के बीज और वह देगा आम के फल ? अगर तुम आम चाहते हो, तो तुम्हें आम का ही बीज बोना पड़ेगा। बबूल का बीज बोओगे, तो बबूल ही मिलेगा। इसलिए लोक-जीवन में करुणा कैसे दाखिल हो, यह कार्य भी धार्मिक पुरुषों को करना चाहिए। लोगों के जीवन की समस्या क्या है, यह सोचकर उसे अपने हाथ में लेना चाहिए। उन प्रश्नों का हल धार्मिक तरीके से हो सकता है, इ से करके दिखा देना चाहिए।

धार्मिक चोरियों का उपाय ढूँढ़ें

समाज में चोरियाँ होती हैं, उनका उपाय धार्मिक पुरुषों के पास कुछ नहीं है। वे कहते हैं कि "उसका उपाय तो सरकार करती ही है।" फिर आप लोग क्या करते हैं ? आप लोग धार्मिक पुरुष बनकर बैठे हैं और समाज में चोरियाँ होती हैं। तो क्या आप पर उनकी कोई जिम्मेवारी है या नहीं ? आखिर समाज में चोरियाँ क्यों होती हैं ? उनके कारणों की खोज करनी चाहिए। लोगों को दिखा देना चाहिए कि यहाँ आश्रम या मठ है, इसलिए दस-पाँच मील के आसपास चोरी का नामोनिशान नहीं। पर आज तो उलटा मामला है। इन मन्दिर-मठों में धनसंग्रह होता है, उनमें आजकल ताला लगाना पड़ता है। मूर्ति पर सोना लगा दिया, इसलिए मानो उसे जेल में डाल दिया जाता है ! न मालूम मूर्ति ने क्या पाप किया है, जो उसे यह जेल-यातना भुगतनी पड़ती है ! हमने कुछ मंदिरों में तो यहाँ तक देखा कि मूर्ति की रक्षा के लिए तलवारधारी सिपाही खड़े रहते हैं।

महावीर स्वामी जेल में

बिहार में जब हम घूमते थे, तो हमें एक बड़े जैन-मन्दिर में ले जाया गया। परमेश्वर की कृपा है कि सब पंथवालों का बाबा पर प्यार है। यद्यपि उनमें से किसी एक भी संप्रदाय का दोष दिखाये बिना बाबा नहीं रहता, फिर भी वे बाबा पर प्रेम करते हैं। उस मन्दिर के चारों ओर बड़े ऊँचे-ऊँचे कोट थे। उसकी ख्याति ही इस तरह की है कि फलाने-फलाने मंदिर की दीवालें देखने लायक हैं। नागपुर जेल से भी ऊँची दीवालें हैं। उस मंदिर की तुलना जेल से की जा सकती है। बाहर हाथ में तलवार लेकर सिपाही खड़ा था। दरवाजे भी बराबर लोहे के बनाये हुए थे। हमने एक दरवाजा पार किया, दूसरा आया। इस तरह चार-पाँच दरवाजे खोलकर आखिर में हमें एक मूर्ति के सामने खड़ा किया गया। मंदिर में चारों ओर सोना जड़ा था और बीच में महावीर स्वामी नंगे खड़े थे। जिस शख्स ने धोती की भी उपाधि नहीं रखी, उसे इतने दरवाजे और ऊँची-ऊँची दीवालों से कैद कर लिया गया, यह क्या है? फिर मंदिर और मठ के आसपास के क्षेत्रों में चोरियाँ कम कैसे होंगी?

तीसरा काम निरन्तर आत्मशुद्धि

तीसरी बात धर्म-प्रचारकों को यह करनी चाहिए कि वे निरन्तर अपनी वाणी, शरीर और चित्त की शुद्धि करते रहें। उन्हें नित्य आत्म-शुद्धि की उपासना, आत्म-शुद्धि के लिए तपस्या करते रहना चाहिए।

चतुर्वेदमंगलम् (रामनाड़)
११-२-'५७

ग्रामदान आत्मदर्शन की खोज

[मदुरा जिले के कार्यकर्ता और सर्वोदय-मंडल के बीच दिया गया प्रवचन]

हम मुक्तिमार्ग के पथिक !

आज के दिन का महत्त्व मेरे जीवन में बहुत है। आज का ही दिन था—२५ मार्च १९५८। आज से ४२ साल पहले की बात है, जब कि हम घर छोड़कर निकल पड़े। कुछ दुःख था, इसलिए नहीं निकल पड़े, बल्कि इसलिए कि मेरे घर में काफी सुख था। लेकिन चाह थी आत्मा के दर्शन की। उसकी खोज में घर छोड़कर निकल पड़ा था। वह खोज आज तक सतत जारी है। उन दिनों उस एक चिंतन के सिवा हमारी और किसी प्रकार के विषय के भोगों की तरफ यत्किंचित् भी दृष्टि न जाती थी। चित्त में वैराग्य था, फिर भी विषयों का जो प्रहार होना था, सो तो हुआ ही। किन्तु वे हमें पराजित न कर सके। आज हम अपने चित्त में अपार शांति, अपार आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। वह हमारी खोज तो आज भी जारी ही है। हमने मजबूती के साथ रास्ते को पकड़ लिया है।

उन दिनों हमारे चित्त में समाधान नहीं था। पर कार्य में जो आवेश था, उसमें आज हम जरा भी कमी नहीं देखते। उसी आवेश के कारण हमें इन ४१ सालों में कोई थकान नहीं आयी। आश्रम में अनेक प्रयोगों में समय गया। उन दिनों हम एक जगह स्थिर रहे, पर हमने चित्त में किसी एक स्थान को पकड़ न रखा था। आज तो बाहर से भी किसी स्थान को पकड़े नहीं हैं, क्योंकि हम रोज स्थान बदलते हैं। हम रोज स्थान बदलते हैं, तो भी यही अनुभूति होती है कि हम अपने ही स्थान में रहते हैं।

संसारी और परमार्थी अपने में ही सीमित

यह भूदान, ग्रामदान हमारी दृष्टि से आत्मदर्शन की खोज है। हमारी सबसे बड़ी गलतफहमी यह है कि हम अपने को एक देह में सीमित समझते हैं। संसार में आसक्त प्राणी इस देह के सुख को अपना सुख समझते और वैसा सुख प्राप्त

न होने पर अपने को दुःखी समझते हैं। उनका सुख-दुःख अपने व्यक्तित्व के आसपास खड़ा रहता है। पारमार्थिक साधना करनेवाले साधकों की भी यही दशा है। वे चित्त-शुद्धि की ही इच्छा रखते हैं, अपनी उन्नति दीख पड़ती है, तो सुखी होते हैं। और वह नहीं दीख पड़ती—चित्त के राग-द्वेष गिरे हुए नहीं दीखते, तो वे दुःखी होते हैं। उनकी परमार्थ-साधना अपने ही इर्द-गिर्द खड़ी रहती है। इस तरह संसारासक्त मनुष्य अपनी ही उन्नति चाहते हैं और ये परमार्थ में लगे हुए भी अपनी ही चीज चाहते हैं। एक अपनी देह का सुख चाहता है, तो दूसरा अपने देहगत चित्त की शान्ति चाहता है। हम इन दोनों को गलत समझते हैं, कारण दोनों अपने को इसी देह में सीमित समझते हैं।

सबमें अपना रूप देखना आत्मदर्शन

मान लीजिये, मेरे शरीर को सुख है और मेरे पड़ोसी को वह हासिल नहीं है, तो स्वार्थासक्त मनुष्य को उसकी चिन्ता नहीं। वह अपने देह-सुख से सुखी है। इसी तरह साधक की क्या दशा है? मान लीजिये, उसके चित्त के विकार शान्त हैं और पड़ोसी के शान्त नहीं, तो साधक को उसकी चिन्ता नहीं; वह अपने चित्त की ही शान्ति से सन्तुष्ट है। हम समझते हैं कि यह गलत है। जब तक हम अपने को एक देह में सीमित समझने की गलती से मुक्त नहीं होंगे, तब तक हमारे लिए आत्मा का दर्शन दूर है। आत्मा किसी एक देह में नहीं, आत्मा अनेक देहों में है। हम भी आत्मा हैं। उनमें से यह हमारा देह एक है।

अगर मेरे चित्त में अशान्ति है, तो वह मेरी ही अशान्ति है और आपके दिल में अशान्ति है, तो वह भी मेरी ही अशान्ति है। यह व्यापक सम्बन्ध जब ध्यान में आयेगा, तभी आत्मा का दर्शन होगा। उसका एक छोटा-सा प्रयोग ग्रामदान में होता है। यह ग्रामदान तो बहुत छोटी चीज है और जो चीज अभी हमने बतायी, वह तो बहुत बड़ी चीज है। हरएक के सुख-दुःख का मेरे साथ सम्बन्ध है और हरएक की मानसिक शान्ति-अशान्ति मेरी ही शान्ति-अशान्ति है। दूसरे को अपने से भिन्न मैं समझूँगा, तो मैं वह गलत समझूँगा। यहाँ

जो कुछ है, वह सब एक ही वस्तु है, चाहे उसका 'मैं', 'तुम' या 'वह' नाम हो। सबके बाहर जो दीख पड़ता है, वही अन्दर है। मान लीजिये, आपमें से कोई मुझसे वैर कर रहा है, तो उसका अर्थ है कि मेरे मन में ही वैर पड़ा है, उसके बिना आप वैर कर नहीं सकते। इसलिए मेरा शत्रु आपमें नहीं, मुझमें ही पड़ा है। आप मुझ पर बहुत प्यार कर रहे हैं, तो वह प्यार मेरे मन में ही पड़ा हुआ है। पर प्यार नहीं करते, मैं ही अपने ऊपर प्यार कर रहा हूँ। मनुष्य को जब इतना दर्शन होगा, तब वह आत्मदर्शन के नजदीक चला जायगा।

ग्रामदान आत्मदर्शन का पहला सबक

ग्रामदान में एक छोटी-सी चीज बनती है। "गाँव की सब सम्पत्ति और जमीन गाँव की, मेरी, आपकी, हम सबकी या किसीकी नहीं, सिर्फ भगवान् की है"—इस तरह जिस किसी भी भाषा में कहें, ग्रामदान में व्यक्तिगत मालकियत छोड़ने की बात है। आज तक हम अपना श्रम अपने ही परिवार को देते थे, पर आज से सारे गाँव को देंगे। हमारी श्रम-शक्ति सिर्फ अपने लिए नहीं, सारे गाँव के लिए है। मेरा जो कुछ है, वह सिर्फ मेरे लिए नहीं, सारे गाँव के लिए है—यह आत्मदर्शन का एक सबसे छोटा और पहला सबक है। इसीलिए हम कहते हैं कि हमारी दृष्टि में ग्रामदान-आन्दोलन आत्मा की खोज ही है।

आज आत्मा के टुकड़े-टुकड़े

आज हमने उस व्यापक आत्मा के कितने टुकड़े किये हैं। गाँव में पचासों प्रकार की जातियाँ हैं। जाति-भेद, मालिक-मजदूर-भेद, हरिजन-परिजन-भेद, ईसाई-मुसलमान-हिंदू-भेद, कांग्रेस और पी० एस० पी० के भेद—इस तरह हम अपनी उस आत्मा के पचासों प्रकार के टुकड़े कर रहे हैं, जो अखंड और व्यापक है। जैसे किसी मूर्ख बच्चे के हाथ में कैंची आ जाय, तो वह काट-काटकर अखंड कपड़े के टुकड़े कर देता है, वैसा ही हम कर रहे हैं। इसे संविधान तक का समर्थन मिलता है। हमारे संविधान में व्यक्तिगत मालकियत को मान्यता दी गयी है। कुछ धर्मवाले तो यह भी कहते हैं कि "पर्सनल प्रॉपर्टी इज सेक्रेड" (व्यक्तिगत मालकियत गुप्त है), उस पर आक्रमण नहीं होना चाहिए। आक्रमण

नहीं होना चाहिए, यह तो हम भी मानते हैं। लेकिन वह द्वेष का नहीं, प्रेम का आक्रमण होना चाहिए।

गलत विचार से ही 'दूषण' में 'भूषण' का भान

जैसे लड़का बाप से कहे कि इस घर पर मेरा भी हक है, तो क्या बाप न मानेगा? बाप कहेगा, "मुझे बड़ी खुशी है कि तुम आज इसे अपना भी घर समझ रहे हो। अब अगर यह तेरा घर है, तो कल से तुम भी झाड़ू लगाओ और मैं भी झाड़ू लगाऊँगा, दोनों मिलकर घर साफ करेंगे। इस तरह का प्रेम का आक्रमण तो हो सकता है। 'प्राइवेट प्रॉपर्टी' कोई हिंसा या बलात्कार से लेना चाहे, तो वह गलत है। क्योंकि 'प्राइवेट प्रॉपर्टी' मूलतः गलत विचार है। फिर अगर हम जबरदस्ती उसे किसीसे छीन लें, तो वह समझेगा कि यह अच्छी चीज है, इसीलिए वह छीन रहा है। लेकिन अगर हम उसे सद्-विचार समझा दें, तो वह मालकियत को बोझ समझकर उसे नीचे पटक देगा और हलका हो जायगा। उसे लगेगा कि आज मैं भी मुक्त हो गया। आज तक तो उसने मालकियत को गहना समझकर पहन लिया था। जैसे पुरुष स्त्रियों को कैदी बनाने के लिए उनके हाथ, पाँव, कानों में १०-१० तोले सोने के गहने डालते हैं। वे सोने के होते हैं, इसलिए पहननेवाला उन्हें शृङ्गार या भूषण समझकर पहन लेता है, पर वास्तव में वे बेड़ियाँ हैं। उन्हींके कारण वे कहीं अकेली घूम नहीं सकतीं। रात को कहीं बाहर नहीं जा सकतीं। सारांश, गलत विचार के कारण ही दूषण भूषण मालूम हो रहा है।

जबरदस्ती से गलत विचार टूटता नहीं

जो यह कहता है कि मालकियत पर दूसरे किसीका आक्रमण न हो, वह स्वयं मालकियत को मानता है। मान लीजिये, कोई एक लाख रुपये की संपत्ति का मालिक है। रात में चोर उसके घर में प्रवेश करता और छीनकर वे रुपये ले जाता है। पर क्या उसकी मालकियत मिट गयी? क्या उसने क्रांति की? वह स्वयं मालकियत मानता है, तो उसकी मालकियत कैसे मिटेगी? मानसिक मालकियत तो चालू ही है। इस तरह हम जबरदस्ती से आक्रमण करते हैं, तो

गलत विचार टूटता नहीं। आप जानते हैं कि बीच में मुसलमानों ने यहाँ मूर्तियाँ तोड़ना शुरू किया। उन्होंने कहा कि इस तरह मूर्तियों की पूजा करना गलत विचार है। उसके परिणामस्वरूप मूर्ति-पूजा आज तक जारी है। बल्कि उसे अधिक प्रतिष्ठा मिल गयी है। अगर वे लोगों को समझा देते कि मूर्ति-पूजा किस तरह गलत है, तो काम बन जाता।

हमने बुद्ध भगवान् की सुन्दर-से-सुन्दर मूर्ति की नाक कटी हुई देखी। दुनियाभर के लोग उसे आकर देखते और पूछते हैं कि नाक क्यों कटी है ? इस पर जवाब मिलता है कि मुसलमानों के जमाने में मुसलमानों ने नाक-कान काट लिये। हम समझते हैं कि जिन्होंने वे नाक-कान काटे, उन्हींकी बदनामी का वह स्मारक है। नाक उस मूर्ति की नहीं कटी, बल्कि जिन्होंने काटी, उन्हींकी कटी है। इसीलिए हम कहते हैं कि असद्-विचार सद्-विचार से ही कटेगा। हम मालकियत पर हिंसा से आक्रमण करना नहीं चाहते, सिर्फ 'वह असद्-विचार है', यही समझाना चाहते हैं।

कुटुंब-संस्था का नाश नहीं, विस्तार ही लक्ष्य

लेकिन आज लोगों ने एक पवित्र विचार समझकर मालकियत रखी है। उसमें पवित्रता का एक अंश जरूर है। उसे पहले हम समझ लेंगे, तभी हटा सकेंगे। कोई असद्-विचार के साथ कुछ सद्-विचार भी सटा रहता है, इसीलिए असद्-विचार टिकता है। उस असद् और सद् का पृथक्करण कर सद्-विचार को ग्रहण किया जाय, तो असद्-विचार गिर जाता है। मालकियत के विचार में पवित्र अंश यह है कि 'प्राइवेट प्रॉपर्टी' के साथ कुटुम्ब-भावना जुड़ी है। लोगों को डर लगता है कि व्यक्तिगत मालकियत मिटाकर गाँव की मालकियत होगी, तो कुटुम्ब मिट जायँगे। कुटुंब-संस्था प्राचीन काल से आज तक चली आयी है। उसके कारण लोगों को संयम, प्रेम और त्याग का शिक्षण मिलता है। उससे आनंद प्राप्त होता है। इसलिए हमें लोगों को समझाना चाहिए कि हम कुटुंब-संस्था को खतम करना नहीं, फैलाना चाहते हैं।

नेडुंकुलम् (मदुरा)
२५-३-'५७

विज्ञान की प्रगति में एक-एक नयी चीज की खोज हुई है। इस खोज में बहुत समय बीता। खोज के बाद सारे समाज के लिए उस शक्ति का उपयोग करना होता है। वह दूसरे प्रकार का काम होता है। उसमें कई शक्तियाँ काम आती हैं। शोध होने पर भी उसका समाज में 'अप्लीकेशन' न हो, तो शोध का उत्तम उपयोग नहीं होगा। फिर भी उससे उस शक्ति की कीमत कम न होगी। आप देखते हैं कि भाप की बजली और ऐटम की खोज हुई। अब अणु के दिन आये। बिजली पिछड़ गयी। लेकिन आज भी हिन्दुस्तान में बिजली का पूरा उपयोग होता है, सो नहीं। जैसे सूर्यनारायण का हरएक को उपयोग होता है, वैसे बिजली का नहीं। याने आज भी वह सामूहिक चीज नहीं बनी, लेकिन बन सकती है। अब अणु-शक्ति की खोज हुई। उसका उपयोग सारे समाज को करने की बात आयेगी। वह प्रयोग भी इस प्रकार होना चाहिए कि उसका उपयोग सबको समान भाव से मिले। उसमें किसीका नुकसान नहीं, सबका लाभ-ही-लाभ हो। सारांश, अणु-शक्ति की खोज पहला स्वतंत्र पुरुषार्थ है, उसका समाज को उपयोग होना दूसरा पुरुषार्थ है और उससे समाज को नुकसान न होकर लाभ-ही-लाभ होना तीसरा पुरुषार्थ है। तीनों प्रकार के पुरुषार्थों से विज्ञान की खोज का मानव-जाति में उपयोग होता है।

ग्रामदान से शक्ति का शोध

यही वस्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में और व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में भी लागू होती है। हिन्दुस्तान में ग्रामदान की शक्ति की खोज हो गयी। अब इस शक्ति का सारे समाज में व्यापक प्रमाण में उपयोग हो, यह स्वतंत्र पुरुषार्थ होगा। उसमें से किसी प्रकार का नुकसान न हो, लाभ-ही-लाभ हो, यह तीसरे प्रकार का पुरुषार्थ होगा। अग्नि कल्याणकारी शक्ति है, पर वह घर को आग भी लगा सकती है। शास्त्र में तो यहाँ तक लिखा है कि योग से भी नुकसान हो

सकता है, जो अत्यन्त परम पुरुषार्थ माना जाता है। योग से शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। उसमें से कुछ निर्माण भी होता है। वह बहुत ही कल्याणकारी है। लेकिन उसका सिद्धि के रूप में दुरुपयोग और उस दुरुपयोग से नुकसान भी हो सकता है इस तरह ग्रामदान के विचार की खोज एक नयी शक्ति है और उससे नया जीवन बन सकता है। इस बात का लोगों को विश्वास होना चाहिए। यह चीज सारे हिन्दुस्तान में मालूम हो जाय कि इस शक्ति की खोज हो गयी। फिर उसका सारे समाज में उपयोग करना, विनियोग करना। उसके अनुसार जीवन बनाने की बात दूसरे पुरुषार्थ में आती है। फिर उसमें से कुछ नुकसान न हो, लाभ-ही-लाभ हो, ऐसे 'सेफ्टी वॉल्व' लगाना, तीसरे प्रकार का पुरुषार्थ है।

शुद्धि की योजना आवश्यक

हर जगह इसी प्रकार करना होता है। गृहस्थाश्रम की योजना भी इसीलिए हुई कि लोगों में एक सामाजिक भावना और कुछ संयम का अनुभव हो। लेकिन उससे भी संकुचित भावना पैदा हो सकती है। इसीलिए उसके साथ संन्यासाश्रम जोड़ दिया। पर उससे भी नुकसान हो सकता है। जैसे सामाजिक जीवन के स्वीकार से नुकसान हो सकता है, वैसे सामाजिक जीवन के तिरस्कार से भी नुकसान हो सकता है। गृहस्थ-जीवन में सामाजिक जीवन का स्वीकार है। इसके कारण आसक्तियाँ पैदा होती हैं। इसीलिए संन्यासाश्रम हुआ, तो संन्यासाश्रम में सामाजिक जीवन का परित्याग है। उससे भी नुकसान है। इसलिए उस संन्यास-आश्रम के साथ ईश्वरार्पण भी जोड़ दिया गया। इस तरह एक कल्पना की शुद्धि के लिए नयी-नयी पुष्टियाँ जोड़नी पड़ती हैं। इसीलिए तो सवाल आया कि ग्रामदान की बुनियाद पर ऐसा जीवन हो, जिससे नुकसान नहीं, लाभ-ही-लाभ हो। अतएव कई प्रकार की नयी योजनाएँ जोड़नी होंगी। मान लीजिये कि एक-एक गाँव अपना स्वतन्त्र अभिमान रखने लगे, तो संभव है कि अड़ोस-पड़ोस के गाँवों के बीच 'क्लेश' हो। उसके लिए भी योजना करनी पड़ेगी। ये सारी चीजें एक-एक के बाद एक-एक हाथ में लेनी पड़ेंगी।

विचार-मन्थन खूब चले

हम बार-बार कहते हैं कि गाँव-गाँव और जनता के सामने कुल विचार

अत्यन्त सफाई से पेश किया जाय, ग्रामदान, भूदान और सर्वोदय के साथ-साथ विचार-प्रचार की भी विराट् योजना होनी चाहिए। विचारों का मन्थन होना चाहिए। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की चर्चाएँ अवश्य होनी चाहिए। हमारे मन में क्षणभर के लिए भी यह नहीं है कि अमुक एक विचार दुनिया में है, जिसके खिलाफ विचार करने की जरूरत ही नहीं। बुरी-से-बुरी चीजों में भी लाभ होता है और अच्छी-से-अच्छी चीजों में भी दोष होता है। इसलिए गुण-दोषों के विश्लेषण की चर्चा बहुत जरूरी है। उसमें अगर उदासीनता रही, तो वह हानिकारक होगी। हमारे विचार का विरोध होता हो, तो वह भी लाभदायी है। हम चाहते हैं कि भारत में सर्वत्र विचार का प्रचार हो। वेद में वर्णन आता है कि इन्द्र और अग्नि का भी सरस्वती के बिना नहीं चल रहा। भक्त ने इन्द्र और अग्नि का ऐसा ही आवाहन किया कि आप सरस्वती के साथ आइये। इतना महत्त्व सरस्वती का है। वेद में सरस्वती का जो वर्णन है, वह शक्ति का ही वर्णन मालूम पड़ता है। "सरस्वती······मरुत्वती धृवती जेषि शत्रून्।" हे सरस्वती! तू हिम्मत देनेवाली, शत्रुओं को जीतनेवाली देवी है। शत्रु और कोई नहीं, गलत विचार ही है। कोई गलत विचार पेश हो और वह खतम हो जाय, तो शत्रु खतम हो जाता है। यह काम सरस्वती का है। इसलिए हमने बहुत बार कहा है कि सरस्वती की मदद होनी चाहिए।

विचार-प्रचार की अद्भुत सामर्थ्य

हम एक फिरके में, एक तालुका में काम कर रहे हैं, लेकिन विचारों का चिंतन सारे तमिलनाड ही नहीं, सारे भारत का होना चाहिए। यहाँ हमें ग्रामदान प्राप्त होने लगे, तो हमने 'तालुकादान', 'फिरकादान' शब्द का उच्चारण किया। फलस्वरूप महाराष्ट्र में जहाँ तीन महीने पहले कुछ काम नहीं हुआ था, वहाँ एक पूरा-का-पूरा फिरकादान हो गया। शब्द में यह कैसी अजीब शक्ति होती है कि कहाँ उसका उच्चारण हुआ और कहाँ उसका अमल है। टॉलस्टॉय और गांधीजी का पत्र-व्यवहार प्रसिद्ध है। टॉलस्टॉय पृथ्वी के उत्तर में रहते थे और उन दिनों गांधीजी पृथ्वी के दक्षिण किनारे, दक्षिण अफ्रीका में। जो विचार टॉलस्टॉय

ने बताया, उसका अमल गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में किया। विचार पैदा हुआ मास्को के नजदीक, अमल हुआ जोहान्सबर्ग के नजदीक। इस तरह विचार का प्रचार और परिणाम होता है। जैसे मानसून इधर से उधर बहते हैं, वैसे ही विचार के प्रवाह भी दुनिया में बहते हैं। इसीलिए हम बार-बार साहित्य-प्रचार पर जोर देते हैं।

हम लोग देहात में काम करते हैं। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्रांति गाँव में ही हो सकती है, पर उसका विचार, उसका इतिहास शहर के जरिये लिखा जायगा। शहर में विश्वविद्यालय में अध्ययन होता है, इसलिए शहरों की तरफ दुर्लक्ष्य न करना चाहिए। शहर में मस्तिष्क बनता है, इसलिए वहाँ सर्वोदय-साहित्य घर-घर पहुँचना चाहिए। इधर देहातों में गाँव-गाँव परिव्राजक घूमने चाहिए और उधर शहरों में सरस्वती की मदद से हमारा विचार पहुँचना चाहिए। इस तरह दुहरा प्रचार होगा, तभी काम होगा।

भिन्न-भिन्न प्रयोग चलें

हमने कहा कि शक्ति की खोज के बाद उसके उपयोग का सवाल आता है। फिर यह वासना होती है कि शक्ति का जल्द-से-जल्द उपयोग हो। लेकिन शक्ति की खोज के समय भी उसके उपयोग की वासना जोर करती है। हमने पढ़ा कि "अब संभव है कि हम मंगल पर जा सकेंगे।" इसलिए कुछ लोग अभी से सोच रहे हैं कि मंगल पर जमीन आदि पर मालकियत का हक अभी से 'रिजर्व' कर लिया जाय। इससे पता चलता है कि किस तरह मनुष्य का दिमाग चलता है। इसी तरह जहाँ ग्रामदान की बात चलती है, वहीं फौरन यह प्रश्न होता है कि ग्रामदान के गाँव में क्या फर्क पड़ा ? इसलिए अब पुरुषार्थ की जरूरत होगी और बहुत सोच-विचारकर काम करना होगा। गाँव की शक्ति बढ़े और गाँववाले ऊपर उठें, यह काम आसान नहीं। उसमें हमारी बुद्धिमत्ता का पूरा उपयोग होना चाहिए। मैंने कई बार कहा है कि ग्रामदान में भिन्न-भिन्न प्रयोग होंगे। कोरापुट के ग्रामदानी गाँवों में कुछ काम हुआ है, पर वह सब लोगों को पसंद नहीं। जिन्हें पसन्द नहीं है, वे भी सर्वोदय-विचार के ही लोग हैं। अब वे कहीं अपने मतानुसार प्रयोग करेंगे, तो वे दूसरों को पसंद न आयेंगे। यह विचार इतना व्यापक

है कि इसमें तरह-तरह के विचारों की गुञ्जाइश रहेगी, मतभेद को अवकाश देना पड़ेगा। कुछ सर्वसाधारण विचार तय करने होंगे। उस सर्वसाधारण नक्शे के अन्दर गाँव-गाँव में भिन्न-भिन्न प्रयोग होंगे। कई गाँवों में अलग-अलग 'जीनियस' होते हैं। उसके अनुसार वहाँ के आयोजन में कुछ अन्तर रहे, तो कोई हर्ज नहीं। इसके चिंतन और विचार के लिए जितने भी रचनात्मक कार्यकर्ता हैं, सबके दिमाग लगने चाहिए।

चेतन, धृति और संघात

शुरू में दो प्रकार के कार्यकर्ताओं की जरूरत रहेगी और उसके बाद रचनात्मक काम करनेवालों की। पहले प्रकार के कार्यकर्ताओं को हम 'चेतन' कहेंगे। याने सबको प्रेरणा देना और ग्रामदान की तैयारी करना—इस तरह हमारी एक चेतना की सेना रहेगी। हमारी दूसरी फौज होगी 'धृति' की। धृति याने टिके रहना। गाँववालों ने जो संकल्प किया, उस पर वे टिके रहेंगे। उन गाँववालों की सारी मुश्किलों के हल सुझानेवाली हमारी यह दूसरी सेना रहेगी और तीसरे प्रकार के लोग होंगे, 'संघात'। याने सारे गाँव की कुल शक्ति इकट्ठा कर गाँव का निर्माण करना।

ये तीनों शब्द मैंने गीता में से उठा लिये हैं। यह शरीर कैसे चलता है, इसका वर्णन गीता में लिखा है। शरीर में कई तत्त्व काम करते हैं, पर सबसे बड़े काम करनेवाले तीन तत्त्व हैं। "संघातश्चेतना धृतिः" संघात, चेतना और धृति। चेतना तो केवल चाबुक का काम करती है। लेकिन घोड़े की सवारी के लिए केवल चाबुक से काम नहीं बनता, घोड़े पर टिका रहना पड़ता है और फिर चाबुक भी चाहिए। इसीको धृति कहते हैं। चेतना से घोड़ा दौड़ने लगेगा, पर धृति के न होने पर वह ऊपर और सवार नीचे आ जायगा। इसलिए चेतना के साथ-साथ धृति की भी योजना होनी चाहिए। तीसरी बात है, निर्माण करने की। याने संघात की योजना होनी चाहिए।

नेडुंकुलम् (मदुरा)
२५-३-'५७

[ब्लॉक डेवलपमेंट के अफसरों, ग्रामसेवकों और गाँव के प्रमुख व्यक्तियों के बीच दिया गया प्रवचन ।]

पहले के जमाने के शोषक अधिकारी

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद 'सरकारी नौकर' 'जनता के सेवक' बन जाते हैं। इसके पहले जो सरकार यहाँ थी, उसके नौकर भी कोई सेवा नहीं करते थे, सो नहीं। वे कुछ तो करते ही थे। किन्तु वह सरकार जो कुछ आयोजन करती, देश के शोषण के लिए ही करती। इसलिए उसके अधिकारी और नौकर भी (चाहे उनमें से कुछ लोगों की सेवा करने की इच्छा रही हो, तो भी) उसी यन्त्र के पुर्जे बनते और शोषण में मदद पहुँचाते। आजकल जगह-जगह गाँव-गाँव में जाकर 'सर्वे' किया जाता है। अंग्रेजों के जमाने में भी ऐसा सर्वे किया जाता था। पर उसका मतलब था कि विदेशी व्यापार के लिए किस तरह उससे लाभ उठाया जाय। आज तो देश की समृद्धि किस तरह बढ़े, ग्रामवासियों की ताकत किस तरह बढ़े, इस विचार से 'सर्वे' होता है। पहले भी सरकार के अधिकारियों और नौकरों को गाँव-गाँव जाना ही पड़ता था, पर लोग उनसे डरते थे। उनका लिबास भी लोगों से बिलकुल विपरीत था। लोगों के अनुकूल लिबास पहनना वे अच्छा भी न मानते थे। दूसरे से अपना कुछ अलगाव मालूम पड़े, यही उन्हें अच्छा लगता था। गर्मी में सारा शरीर पसीना-पसीना हो जाता, परन्तु कोट, पैंट, टाई, बूट, हैट के सिवा दूसरा कोई पोशाक उन्हें चलता ही न था। वे मानते थे कि उसीसे लोगों पर रोब चला सकेंगे, लोगों पर दबाव डाल सकेंगे। भाषा में भी अंग्रेजी के सिवा और कोई शब्द उच्चारण न करते। जनता से हम कोई भिन्न हैं, ऊँचे हैं, ऐसा वे मानते। जैसे शेर जानवरों के बीच जाता है, तो अपना विलक्षण और भयानक रूप लेकर जाता है। इससे बाकी के जानवर उसे देख घबराते हैं। सबको भास होता है कि अरे, यह शेर है, कोई

साधारण जानवर नहीं। इसकी आवाज भी दूसरे जानवरों से अलग है। ऐसा ही भास उस जमाने के सरकारी अधिकारियों को देखकर होता था।

सेवक जनता में घुल-मिल जायँ

अब थोड़े ही समय में तमिलनाड का कुल कारोबार तमिल में चलेगा। कोर्ट-कचहरी में वही भाषा चलेगी। किसान जिस भाषा में घर में बोलेगा, उसीमें कोर्ट में बयान देगा। स्वराज्य के पहले के नौकर और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद के नौकर में बहुत फर्क पड़ जाता है! आज पुराने समय की तनख्वाह बहुत कम हो गयी, क्योंकि उसका लोगों के साथ कुछ ताल्लुक ही नहीं। लोगों के जीवन के साथ उनके जीवन की कोई तुलना ही नहीं। दर्जे बने हुए थे। आज भी लोगों के स्तर की तो उनकी तनख्वाह नहीं है और न वैसा होना आसान ही है। किन्तु कोशिश यह है कि लोगों के जीवन के साथ कुछ सम्बन्ध बना रहे। आज तनख्वाह पहले से घट गयी है, पर दर्जा नहीं घटा है। हमारी भारतीय संस्कृति की यह विशेषता थी कि जो प्रेम से जितना अधिक त्याग कर सकता, उतना उसका श्रेष्ठ स्थान माना जाता। बल्कि साधारण जनता के स्तर से बहुत ऊँची तनख्वाह पाना यहाँ की सभ्यता में एक प्रकार की 'वल्गरटी' माना जाता था। दिन-ब-दिन कोशिश यही होगी कि लोगों के साथ एकरूप कैसे हों। सेवकों में यही वृत्ति चाहिए।

लोग यह नहीं चाहते हैं कि जैसे उन्हें भूखे रहना पड़ता है, वैसे ही उनके सेवकों को भी भूखा रहना पड़े। कोई भी डूबनेवाला यह नहीं चाहता कि उसके साथ सहानुभूति दिखाने के लिए दूसरे डूब जायँ। वह यही चाहता है कि दूसरे तैरें और उसे बचायें। वे यह नहीं कहते कि जितना उनका स्तर है, उतना ही उनके सेवकों का हो। बल्कि यही चाहते हैं कि ये उनका स्तर ऊँचा उठाने की कोशिश करें। हमें उबारनेवाला पानी में डूबे, यह हम नहीं चाहते। पर वह कम-से-कम पानी में तो आये। पानी में ही न उतरे और किनारे पर ही रहे, तो कैसे चलेगा? मैं ये सारी बातें इसलिए कह रहा हूँ कि आप लोगों के ध्यान में आ जाय कि आप लोगों का 'स्टेटस' क्या है?

आप शिव के भक्त हैं

आप शिव भगवान् के भक्त हैं। हमारा शिव भगवान् अत्यन्त दरिद्र है। उसे पहनने के लिए पूरे वस्त्र नहीं, खाने के लिए पूरा आहार नहीं। उसके पास अगर कोई मददगार है, तो बैल है, उसके सिवा और कोई मददगार नहीं। इस प्रकार के शिव भगवान् के आप उपासक हैं। अब ऐसे भगवान् की उपासना भी किस तरह की जायगी? उपासना का नियम ही है कि 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'—शिव की उपासना करनी हो, तो शिव ही बनना पड़ेगा। आप लोगों की और हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि लोग जिस तरह जीवन बिताते हैं, उसी तरह जीवन बिताने का भरसक प्रयत्न करें। जन-सेवकों को वात्सल्य भाव से लोगों के पास जाना चाहिए। जैसे माँ अपने बच्चों के पास वात्सल्य भाव से जाती है, वैसे ही आपको लोगों के पास जाना चाहिए।

आदर्श सेवक—सूर्यनारायण

आप जानते हैं कि सेवा के लिए आपके हाथ में एक-एक ब्लॉक दिया गया है। विचार यह है कि इस प्रकार कुल हिंदुस्तान में सबका सब आयोजन सारे देहात में हो। आप जिस किसी भी गाँव में पहुँच जायँ, लोगों को हिम्मत और विश्वास आना चाहिए कि हमारा सेवक आया है। जैसे सूर्यनारायण आता है, तो लोग अत्यन्त उत्साह के साथ अपना दरवाजा खोल देते हैं—उसकी किरणों को अपने घर में लेने के लिए उत्सुक रहते हैं। "मित्र आया, मित्र आया" इस तरह कहते हैं। संस्कृत में सूर्य को 'मित्र' कहते हैं। कहा जाता है कि यह सूर्य क्या, प्रजा का प्राण उग रहा है : 'प्राणः प्रजानाम् उदयत्येषः सूर्यः।' सूर्य के लिए लोगों में कितना विश्वास, कितना प्रेम, कितनी भक्ति है! इतना वह महान् है, लेकिन स्वभाव कैसा है? इतना ऊँचा उसका स्थान है, लेकिन नम्रता कितनी है? कोई अपने दरवाजे बन्द रखता है, तो वह धक्का लगाकर उन्हें न खोलेगा, दरवाजे पर ही अपने किरणों के साथ खड़ा रहेगा। जब तक दरवाजा न खुलेगा, तब तक खुद होकर अन्दर न जायगा। वापस भी न जायगा। आधा दरवाजा खुलेगा, तो आधा जायगा और पूरा खुला, तो पूरा। यही वृत्ति सेवकों की चाहिए। सूर्य-

नारायण सेवकों का आदर्श है। गाँव-गाँव में लोग कितनी गंदगी करते हैं। पर सूर्यनारायण उस पर अपनी किरणें डालकर बदबू हटा देता है। इसीलिए बदबू के बावजूद लोग जिंदा रहते हैं। सूर्य भगवान् नित्य भंगी बनकर हमें बचा लेते हैं। अगर हम उस मैले पर मिट्टी डालते हैं, तब तो सूर्यनारायण उसका सोना बनायेगा। उसकी उत्तम खाद बनाकर लोगों को देगा। इस तरह वह निरन्तर सेवा करता है। सेवा करते हुए भी अत्यन्त नम्र है। सभीको भास होता है कि यह मेरा मित्र है। वेद में उसकी बड़ी अजीब महिमा गायी है : 'माम् प्रति माम् प्रति इति सर्वेण सम्'—सबको लगता है कि यह मेरे लिए आया! वह सबके लिए समान है।

यही सेवकों का लक्षण है। उसमें पक्षपात नहीं, ऊँच-नीच-भेद नहीं। अगर ऊँच-नीच-भेद है, तो यही कि मैं सबका सेवक और सारे मेरे स्वामी हैं। आपको भी इसी तरह लोगों के पास पहुँचना और उनकी हालत का अध्ययन करना चाहिए। उनकी सच्ची हालत क्या है, इसकी ठीक रिपोर्ट ऊपरवालों के पास पहुँचनी चाहिए। सबसे नीचेवालों को प्रथम मदद मिलनी चाहिए। जैसे माँ घर में सबसे कमजोर, गंदे और मूर्ख की ओर ही ज्यादा ध्यान देती है। वह अपने विद्वान् और ज्ञानी लड़के के लिए आदर रखेगी, पर उसके लिए चिंता न रहेगी। रात-दिन, स्वप्न में भी स्मरण होगा, तो उसी लड़के का होगा, जो मूर्ख है।

सबसे दीन की चिंता कीजिये

भक्तों ने भगवान् का वर्णन कितने ही विशेषणों से किया है। लेकिन सबसे सुंदर वर्णन है, 'पतित-पावन' शब्द में! 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम!' वह पतित-पावन है, यही उसका गौरव है। राजा तो भारत में बहुत हो गये, लेकिन लोगों को वही राजा राम मालूम है, जो पतित-पावन था। इसीलिए सर्वोदय में उसीकी चिंता होती है, जो सबसे नीचे है, जो सबसे गिरा हुआ है।

हिंदुस्तान का दरिद्री किसान सब प्रकार से दरिद्र है। केवल लक्ष्मी उसके पास न होने से ही वह दरिद्र नहीं। उसके पास तालीम भी नहीं है। ज्ञान भी

नहीं है और शक्ति भी नहीं है। वह सब प्रकार से दीन है। इसीलिए आप स्वयं उनके पास जायँ, चम्मच से उनका मुँह खोलकर और जरूरत हो, तो नाक दबाकर दूध डालें, तभी उसके अंदर वह जायगा। बिल्ली के समान दूध देखकर हमला कर सके, ऐसी उसकी हालत नहीं है। हमें तो ढूँढ़ना पड़ेगा कि वह कहाँ है? उन्हें ढूँढ़ने के लिए जायेंगे, तो पहले वे डर के मारे भाग जायँगे। इसलिए वह साहब का पोशाक तो छोड़ ही दीजिये: साधारण स्वच्छ कपड़े पहनकर जायँ, तो भी वे घबड़ायेंगे। यह समझकर कि यह कोई दूसरा है, छिप जायेंगे। ऐसे को हमें ढूँढ़ना है। वह जिस प्रकार हो, उसी प्रकार के रूप और ढंग में आप उसके पास पहुँचेंगे, तभी वह आपको पहचानेंगे।

परम नम्र सेवक—कृष्ण भगवान्

महाभारत में एक कहानी है। कुंती को वचन मिला था कि जिस रूप में तुम भगवान् का दर्शन करना चाहो, उसी रूप में दर्शन होगा। एक दिन उसकी इच्छा हो गयी कि चलो भाई, सूर्यनारायण का नजदीक से दर्शन करें। स्मरण करते ही सूर्यनारायण सामने खड़े हो गये। उनका तेज देखा, तो वह असह्य था। खुद जलने लगी। उसने तुरंत भगवान् से प्रार्थना की कि 'प्रभो! अपना यह रूप समेट लो।' सूर्यनारायण का तेज सहने की शक्ति तो होनी चाहिए। किंतु वह भी दरिद्रनारायण में नहीं है। अतएव उनके पास पहुँचने के लिए ठीक उनके समान बनकर जाना पड़ेगा। नम्रता से बातें कर "उसीके घर के हम हैं" ऐसी प्रतीति करानी पड़ेगी। भगवान् कृष्ण कितने नम्र थे! अर्जुन से उम्र में बड़े थे और ज्ञान में तो इतना अंतर था कि एक था मूर्ख और दूसरा था ज्ञानी। लेकिन वे अर्जुन के साथ मित्र की तरह बरतते थे। उन्होंने महाभारत में अर्जुन का सारथ्य किया। पाण्डवों को राज्य पर बिठाकर राजसूय यज्ञ में खुद जूठे पत्तल उठाने का काम लिया। जब हम ऐसी ही नम्रता से लोगों के पास पहुँचेंगे, तभी गरीब हमारी सेवा कबूल करेगा। नहीं तो वह सेवा कबूल ही न करेगा।

ग्रामदान का काम अधिकारी उठायें

आप लोगों को मालूम है कि बाबा तो भूदान के काम में लगा है और

ग्रामदान की बात करता है। अब ये लोग ऐसी योजना करते हैं कि आज के सरकारी नौकर बाबा का व्याख्यान सुनें। ये जानते हैं कि बाबा के पास ऐसी चीज है, जिसके बिना सरकारी नौकरों की सेवा कामयाब न होगी। आज गाँव-गाँव में व्याप्त उच्च-नीचता, आर्थिक और जातीय विषमता को मिटाने की चाभी जब तक हाथ में नहीं आती, तब तक और कोई सेवा काम न देगी। ग्रामदान और भूदान में वह युक्ति हासिल होती है। इसमें आर्थिक और सामाजिक विषमता मिटाने की बुनियाद मिलती है। राजनैतिक आजादी प्राप्त करने के बाद देश के लिए आर्थिक और सामाजिक आजादी प्राप्त करने का कार्यक्रम ही हो सकता है। इसलिए मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं होता कि मैं भी आपसे अपेक्षा करूँ कि आप ग्रामदान, भूदान आदि कार्य में हिस्सा लें। लोगों को डर है कि सरकारी नौकर जायँगे, तो लोगों पर दबाव डालेंगे। किन्तु दबाव डालने की वृत्ति न सिर्फ सरकारी अधिकारी में, बल्कि सबमें है। इसीलिए तो मैंने शुरू में कहा कि हम नम्र बनकर लोगों के पास जायँ। सरकारी अधिकारी को तो नम्रता का हक है। उस नम्रता के साथ आप जायँ और गाँववालों को ग्रामदान की महिमा समझा दें। आपको सरकार ने जो अनेक कार्यक्रम दिये हैं, उन सबको बल देनेवाला यह बुनियादी कार्य है। इसके लिए आपको अपना जीवन भी सुधारना पड़ेगा। हम लोगों को मालकियत मिटाने के लिए कहेंगे और हम अपनी भी सम्पत्ति का एक हिस्सा दे देंगे। इस तरह अपना जीवन-परिवर्तन कर हम लोगों के पास पहुँचेंगे, तो आप देखेंगे कि हिंदुस्तान का रूप ही बदल जायगा।

काम बाबा का, तनख्वाह सरकार की !

हमने एक दफा असेम्बली के लोगों से विनोद में कहा था कि सालभर में पाँच महीने ही असेम्बली चलती है, पर आपको तनख्वाह बारह महीने की दी जाती है। सात महीने की तनख्वाह आपको बाबा का काम करने के लिए ही दी जा रही है, नहीं तो देने का कोई कारण ही नहीं दीखता। बढ़ई रोज काम करता है, तो हम उसे रोज तनख्वाह देते हैं। यही बात शिक्षकों, प्रोफेसरों और पेन्शनरों की है। पेन्शनर जब तक सरकार की सेवा करते थे, तब तक तनख्वाह

पाते थे, यह तो ठीक ही है। पर यह सेवा बन्द होने के बाद भी जो पेन्शन मिलती है, तो वह बाबा का काम करने के लिए मिलती है।

स्वराज्य का लक्षण : गरीबों की सेवा

हिन्दुस्तान में सबका स्वामी वह दरिद्र है। उसीकी सेवा के लिए हम सबकी ताकत लगनी चाहिए। जैसे हिमालय की चोटी के, उससे नीची चोटी के अथवा नदी-नाले के पानी से पूछो कि तुम कहाँ जा रहे हो, तो सभी यही कहेंगे कि हम समुद्र को भरने जा रहे हैं। इसी तरह सबकी सेवा दरिद्र की ओर जानी चाहिए। तभी हम कहेंगे कि देश में स्वराज्य है। अपने पास की सारी शक्ति समाज को समर्पित होनी चाहिए। गंगा बड़ी है, तो बड़ा समर्पण करेगी और नाला छोटा है, तो छोटा ! इसीको 'सर्वोदय' कहते हैं। सर्वोदय में सबका भला होता है और सबका भला सबसे गिरे हुए को ऊँचे उठाने में ही है।

विचार पर विश्वास

हम आशा करते हैं कि आप सर्वोदय-विचार का अच्छी तरह अध्ययन करेंगे। आपकी दो हैसियतें हैं : विचार-प्रचारक और सेवक। अतः आपको इस विचार का खूब व्यापक प्रचार करना चाहिए। इन दिनों हमने भूदान-समितियाँ इसीलिए तोड़ डालीं कि हमारा काम भूदान-समितियाँ करेंगी, यह मिथ्या भास हो गया था। अब बाबा की मीटिंग में हर कोई आयेगा। बाबा समुद्र है। बाकी के सारे नदी-नाले। इसलिए आप सारे-के-सारे बाबा के सेवक हैं, ऐसा वह समझता है। हमें खुद को दरिद्रनारायण के सेवक कहलाने में गौरव मालूम होना चाहिए। इसलिए आप विचार का भी खूब प्रचार कर सकते हैं। बाबा को विचार ही घुमा रहा है। जिसे वह जँचेगा, उसे वह चैन से बैठने न देगा। वह उसे धक्का देगा। इसलिए हमारा सबसे ज्यादा विश्वास विचार पर है। हम न सत्ता चाहते हैं और न उस पर विश्वास ही है। हमारा विश्वास तो विचार पर है। इसीलिए हम चाहते हैं कि आप इस विचार का चिन्तन, मनन और अध्ययन कर उसका प्रचार करें।

कालियापट्टी (रामनाड़)

२६-३-'५७

अमेरिका में सर्वोदय-समाज कैसे बने ? : ५६ :

एक अमेरिकन भाई का सवाल है कि आप सर्वोदय-समाज सबके लिए कहते हैं, तो अमेरिका जैसे देश में, जहाँ बहुत ज्यादा औद्योगीकरण (इंडस्ट्रियलाइजेशन) हो गया है, आप कैसी योजना करेंगे ? क्या वहाँ के बड़े-बड़े उद्योग खतम कर दिये जायँ, ऐसा कहेंगे या और कोई ऐसा उपाय है कि वहाँ सर्वोदय-समाज बन सके ?

व्यक्ति मालिक नहीं, ट्रस्टी

सर्वोदय-समाज के लिए दो-तीन चीजें करनी हैं। पहली, हमारे पास जो चीज है, उसके हम मालिक नहीं, ट्रस्टी हैं, ऐसी भावना चाहिए। चाहे मेरा खेत, मकान या फैक्टरी हो, मैं उसका मालिक नहीं। सर्वोदय-समाज की तरफ से मैं उसका संरक्षण करता हूँ। इसलिए समाज को जहाँ मेरी जरूरत होगी, वहाँ मेरा हिस्सा समाज को देने के लिए मैं तैयार हूँ। अपने पास जो चीज है, वह अपनी नहीं, सबके लिए है। यह घड़ी अभी मेरे पास है। अभी ही कोई शख्स ऐसा निकले, जो सिद्ध कर दे कि उसे इस घड़ी की मुझसे ज्यादा जरूरत है, तो वह मेरे पास से इसे माँग सकता है और उसे दे देना मेरा धर्म है। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उसका मालिक हूँ। समाज की तरफ से मैं इसका रक्षक हूँ, इसका मुझे पूरा उपयोग है। यह घड़ी आज मेरे पास है, तो मैं उसके कारण ठीक समय पर यात्रा कर सकता हूँ। समाज की सेवा के लिए इसका मेरे पास रहना जरूरी है। परंतु मैं उसका मालिक नहीं।

इस तरह मेरे पास जो चीज है, उसका मैं मालिक नहीं, यह भावना होनी चाहिए। मेरे पास उपयोग के लिए वह चीज है। समाज को अगर उसकी जरूरत है, तो मैं शेयर कर सकता हूँ—उसका हिस्सा दे सकता हूँ। इसीको हम लोग 'दानम्' कहते हैं। शंकराचार्य ने दान की व्याख्या करते हुए लिखा है : 'दानम् संविभागः' दान याने सम-विभाजन। दान याने किसी पर उपकार नहीं है। यह चीज मेरी नहीं, हम सबकी है। उपयोग के लिए वह मेरे पास है।

अगर उसकी किसीको ज्यादा जरूरत हो, तो उसे देना चाहिए। मेरे पास अनाज है और किसी शख्स को उसकी जरूरत है और वह काम करने को राजी है, तो मेरा धर्म है कि उसे अनाज का एक हिस्सा दूँ। हरएक को काम करने का धर्म है, हरएक को आहार आदि माँगने का अधिकार है। वह देना समाज का कर्तव्य है। इसी तरह कोई 'फैक्टरी' भी यह वृत्ति ला सकती है। मालिक-मजदूर दोनों मिलकर समाज की सेवा करनेवाले होंगे। वह कारखाना समाज के हित में चलेगा और उसमें से कुछ बचा, तो वह समाज की सेवा में समर्पित होगा। इस तरह कोई फैक्टरी चले, तो वह सर्वोदय-समाज के अंदर आ सकती है, भले ही वह औद्योगीकृत देश में रहे।

कुदरत के साथ सम्बन्ध हो

दूसरी बात यह है कि हरएक मनुष्य का कुदरत के साथ संबंध होना चाहिए। कुदरत की कुछ-न-कुछ सेवा अपने हाथ से होनी चाहिए। अगर हम कुदरत से बिलकुल अलग समाज बनायेंगे, तो सर्वोदय में विरोध आयेगा। अवश्य ही यह बात औद्योगीकृत देशों में कठिन है, पर उसके लिए योजना बन सकती है। मैं फैक्टरी में काम करनेवालों को तीन घंटे खेतों पर ले जाऊँगा। वहाँ सुन्दर, स्वच्छ खुली हवा में वे काम करेंगे और तीन घंटे फैक्टरी में। एक-डेढ़ महीना जब खेत में ज्यादा काम होगा, तब फैक्टरी बन्द रखूँगा। तब वे पूरा समय खेती के लिए देंगे। इसी तरह खानों में काम करनेवालों के लिए आज प्रकाश का तो इन्तजाम किया गया है, पर उन्हें आठ-आठ घंटे बन्द हवा में काम करना पड़ता है। बहुत हुआ, तो बड़े दयालु बनकर ८ घंटे के बदले में ७ घंटे कर देते हैं। लेकिन मैं कहूँगा कि खान में दो घंटे ही काम करें, बाकी चार घंटे खेती में काम करना है। उनका खेत खानों से दस-पाँच मील की दूरी पर होगा, जहाँ वे खुली हवा में काम करेंगे। उनके लिए अच्छे घर, अच्छे बगीचे की व्यवस्था होगी। एक-आध घंटा तालीम देने का भी इंतजाम किया जायगा। कुदरत के साथ सम्बन्ध तोड़कर काम करना सर्वोदय के लिए अनुकूल नहीं। मैं मानता हूँ कि इस तरह की योजना औद्योगीकृत देश में भी हो सकती है।

समान वेतन

तीसरी बात, सर्वोदय-समाज में शरीर-परिश्रम और मानसिक परिश्रम को समान महत्त्व दिया जायगा। दिमाग का काम करनेवालों को ज्यादा वेतन और हाथ का काम करनेवालों को कम वेतन, यह विचार ही गलत है। परिश्रम चाहे मानसिक हो चाहे शारीरिक, सेवा की योग्यता पैसे में नहीं हो सकती। प्रेम की कीमत भी पैसे में नहीं हो सकती, फिर चाहे वह शरीर-परिश्रमात्मक सेवा हो या बुद्धि-परिश्रमात्मक। आदर्श समाज में राष्ट्रपति, बढ़ई और मेहतर की तनख्वाह में फर्क न होना चाहिए, यह दूर की बात है—आज एकदम होने की बात नहीं। किन्तु उसमें जो विचार है, वह सभी देशों में लागू होना चाहिए, उसके अमल की सोचनी चाहिए। औद्योगीकृत देश में भी यह विचार मान्य हो सकता है। यह हो सकता है कि कोई बड़ी फैक्टरी का मालिक है, तो १०० रुपये महीने ले रहा है और मजदूर १५० रुपये, क्योंकि वह ज्यादा कमजोर है। उसे शरीर-श्रम ज्यादा करना पड़ता है, उसका बिना दूध के नहीं चलता। यह हो सकता है कि सेना का सेनापति अच्छा मजबूत है, तो ५० रुपये लेगा और सिपाही कमजोर है, तो ७५ रुपये। यह विचार अगर जँच जाय, तो औद्योगीकृत देशों में भी हम सर्वोदय ला सकते हैं।

उत्तम गवैये को सर्वोदय-समाज में तनख्वाह के तौर पर तीन घंटा खेत में काम दिया जायगा। वहाँ खुली हवा में वे काम करेंगे, तो उनकी आवाज और सुंदर होगी। आज लोग समझते हैं कि चित्रकार, संगीतकार आदि की योग्यता ज्यादा है। लेकिन जो प्रामाणिकता से देश की सेवा करते हैं, उन सबकी योग्यता बड़ी है। उन्हें खाना-पीना आदि जीवन की सभी सहूलियतें मिलनी चाहिए, आज जितना फासला न होना चाहिए। हम यह बात औद्योगीकृत समाज में ला सकते हैं और जहाँ औद्योगीकृत समाज न हो, वहाँ भी ला सकते हैं। जैसे हिंदुस्तान के देहात में बड़े-बड़े कारखाने नहीं हैं, पर विषमता बहुत है। एक को एक रुपया मजदूरी मिलती है, तो दूसरे को सौ रुपये। इस भेद को मिटाने का

औद्योगीकरण से कोई संबंध नहीं। यह एक स्वतंत्र विचार है। यह मान्य हो, तो अमेरिका में भी सर्वोदय-समाज बन सकता है।

शिवकाशी (मदुरा)
१-४-'५७

ग्रामदान और विकास-कार्य : ५७ :

यहाँ सर्वोदय-मंडल बना, यह बहुत ही शुभ घटना है। यह एक छोटी-सी जमात है। इस मुहूर्त के साथ मैं गहरा सम्बन्ध देख रहा हूँ। आज सुबह मैं समुद्र पर गया और समुद्र के पानी का स्पर्श, सूर्यनारायण का उदय और कन्याकुमारी का स्मरण करते हुए फिर से मैंने प्रतिज्ञा दोहराई : "जब तक हिन्दुस्तान में ग्रामराज्य की स्थापना न होगी, तब तक यह यात्रा जारी रहेगी।" यह प्रतिज्ञा दोहराने के लिए ही दो दिन इस स्थान पर रहने का सोचा। उस सुबह के प्रसंग में हमारे साथ कुछ भाई भी थे। चाहता तो सबको समझा सकता था और प्रतिज्ञा लेने को कहता, पर वैसा नहीं किया। मैंने ही प्रतिज्ञा कर ली। फिर भी प्रतिज्ञा में मैंने 'मैं' के बदले 'हम' शब्द का ही उपयोग किया। पर वह तो मेरा रिवाज ही है। मैं अपने को एक व्यक्ति नहीं मानता, इसलिए 'मैं' के बदले 'हम' स्वाभाविक ही था। यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत हो सकती है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप सबके मन में ऐसी प्रतिज्ञा हो।

ग्रामदानी गाँवों के विकास की जिम्मेवारी हमारी नहीं

ग्रामदान के लिए हमें एक बात सोचने की है। लोग समझते हैं कि जहाँ हम ग्रामदान की प्रेरणा देते हैं, वहीं उसकी उन्नति की जिम्मेवारी भी हम पर आती है। इसमें हम अपने विचार को संकुचित बनाते हैं। आखिर यह समझना चाहिए कि हम अपने बल से कितने ग्राम हासिल करेंगे ? मैंने तो एक भी ग्राम अपने प्रयत्न से हासिल नहीं किया। बल्कि जिस ग्राम के पास हमारा आश्रम है और जहाँ हम २०-२५ साल रहे, वहाँ भी ग्रामदान की हवा नहीं बनी है। पवनार, सेवाग्राम, सूरगाँव की बात कर रहा हूँ। वहाँ अगर ग्रामदान मिला

होता, तो शायद हमारे सिर पर अहंकार का बोझ आता और उससे हमारी सेवा कम होती। पर भगवान् की कृपा है कि वहाँ ग्रामदान नहीं हुआ। इस तरह हमारे मन में कोई भावना नहीं है कि हमारे प्रयत्न से कोई चीज हो रही है।

हम बार-बार सोचते हैं, तो समझ में आता है कि इसमें ईश्वर का ही हाथ काम कर रहा है। यह ठीक है कि हमें घूमने की और बोलने की प्रेरणा होती है। पर उसके लिए शक्ति वही देता है। सैकड़ों ग्रामदान मिले, तो हमने वह भगवान् की कृपा ही मानी है। हम तो निमित्तमात्र हैं। इसलिए उन ग्रामों का आगे क्या होगा, इसकी चिंता हमें नहीं करनी है। जिसने किया, वही चिंता करेगा। यह ठीक है कि उन गाँवों की सेवा हमसे बन सकती है, उतनी हम करें; पर अपनी शक्ति के साथ उसे सीमित कर दें, तो काम भी सीमित होगा। हम ५-२५ लोग हैं। बहुत हुआ, तो ५० एक गाँव लेकर बैठ सकते हैं। पर हमें सोचना है कि हमारी शक्ति से इस आंदोलन को सीमित नहीं करना है। बल्कि गाँवों का विकास उन-उन गाँवों के लोगों के हाथ में दें। हम जितना कर सकते हैं, उतना दूसरों से करायें। हमें करना बहुत कम है। काम करने-वाली जितनी एजेन्सियाँ खड़ी हो सकती हैं, उन्हें खड़ा करें, हम ही वह एजेन्सी न बनें। हमारा यह विचार है। विचारों में मतभेद की गुंजाइश रहती है। फिर भी जो करना चाहते हैं, उन्हें इस काम के लिए छोड़ दें।

कोरापुट में जो काम हो रहा है, उसमें २००-२५० गाँवों में ही लोग पहुँच सके हैं। अब साल-दो साल तो हो गये। बाकी के १२०० ग्रामों में कब पहुँचेंगे और इस तरह हजारों ग्राम करने होंगे, तो कैसा होगा? ठीक है, वहाँ एक नमूना पेश करने की कोशिश हो रही है। हम सब सर्वोदय को माननेवाले हैं। फिर भी हरएक की योजना में हरएक को दोष दीखेगा। क्योंकि काम बहुत व्यापक है। इसलिए कुछ-न-कुछ फर्क जरूर रहेगा। कहना यह है कि निर्माण-कार्य में हम ज्यादा आग्रह न रखें। मुख्य बात यह है कि गाँव की शक्ति विकसित हो। ऐसा काम करें कि दूसरे गाँववाले भी उसका अनुकरण कर सकें। हमने एक नैतिक संघटना खड़ी कर दी है। वह सलाह देगी और उसकी तरफ से कोई भी काम देखेंगे। सवाल आता है, योजना किसकी होगी?

'इक्जीक्यूशन' किसका चलेगा ? कम्युनिटी प्रोजेक्ट को दें, तो वे भी जब हजारों ग्रामों का सवाल आयेगा, तो घबड़ा जायेंगे। यह काम ही शक्तिशाली है। तो कौन शक्ति का काम कर सकेगा ? वह है ग्रामशक्ति। उसीका ही आधार लेना है।

यह इसलिए कह रहा हूँ कि यहाँ तमिलनाड़ में सरकार, रचनात्मक कार्यकर्ता और भी दूसरे लोग जो इसमें दिलचस्पी रखते हैं, परमेश्वर की कृपा से नजदीक आये हैं। मेरा समाधान तो तब तक न होगा, जब तक हिंदुस्तान के कुल गाँव ग्रामदान में न आयेंगे। इसलिए इस पर आप सोचें और हमारे जाने के बाद भी काम जारी रखें। सब मिलकर ग्रामराज का काम व्यापक तौर पर करें।

ग्रामदान आयोजन नहीं, विचार

ग्रामराज्य की मेरी कल्पना अलग है। ग्रामराज्य कोई आयोजन नहीं, एक विचार है। मेरी कल्पना 'वेलफेयर ग्राम' की नहीं—सबको अच्छा और पेटभर खाना मिले, कपड़ा मिले, यह मेरी कल्पना नहीं है। यह तो हर मनुष्य जानता है कि वह बिना खाये नहीं रह सकता, तो मेरा काम ही क्या ? समझना यह है कि ग्रामराज्यवाले गाँव के सब लोगों को दुःख और सुख साथ-साथ भोगने की यह योजना है। खायेंगे, तो गाँव के सब लोग खायेंगे और किसीको फाका करना पड़ेगा, तो सारा गाँव फाका करेगा। अमेरिका में खाने-पीने के लिए बहुत है, तो क्या वहाँ 'सर्वोदय' हो सकता है ? 'सर्वोदय' सबको खाना-पीना मिलना नहीं। किसीको खाना नहीं मिलता, तो भूतदया कहती है कि उसको खाना मिले। आखिर उत्पादन बढ़ेगा, तभी पेटभर खाना मिलेगा ! और उत्पादन का आधार भी ईश्वर पर ही है या नहीं। बारिश आयेगी तो फसल होगी। हमें बताया गया कि इस इलाके में ५-६ साल से वर्षा नहीं हुई। तो आज गाँव के लोग दुःखी हैं। तो भी वे सब साथ हैं। हमें 'कम्यून' की यही भावना बढ़ानी है। हम कोशिश जरूर करेंगे कि गाँव में उत्पादन बढ़े, पर उत्पादन बढ़नेभर से हमें संतोष नहीं, हृदय भी व्यापक बनाना है। यह चीज जब तक नहीं आती, तब तक प्रयत्न जारी रखें, यह विशेष बात होगी।

हमने प्रतिज्ञा इसलिए की है कि जमाना माँग कर रहा है। दो-चार गाँव

माँगकर उसके विकास के लिए बैठ जायँ, तो काम नहीं होगा। सरकार का काम व्यापक पैमाने पर चलता है। वह चाहे तो गलत विचार भी समाज में फैला सकती है। अगर हम छोटे विचार में रहें, तो छोटा विचार डूब जायगा। इसलिए हमें व्यापक काम करना होगा। सर्वोदय की हवा तैयार करनी होगी, ताकि यह 'वेलफेयर स्टेट', 'कम्युनिज्म' आदि जो हवाएँ चलती हैं, वे न टिकें।

हमारी प्रतिज्ञा का यह अर्थ नहीं कि हिन्दुस्तान के सब गाँववालों को अच्छा खाना मिले। अच्छा खाना मिले, यह तो सब कहते हैं। पर व्यक्तिगत स्वार्थ की नीति पर कोई न चले, यही हम चाहते हैं। फिर भी सामूहिक जीवन के लिए लोगों को प्रवृत्त करना है। इसलिए गाँव के लोग जो दान-पत्र देते हैं, उसमें केवल जिनके पास जमीन है, उन्हींके दान-पत्र मैं नहीं चाहता। मैं तो भूमिहीनों से भी दान-पत्र चाहता हूँ। वे कहें कि हमारे पास जो श्रम है, वह समाज के लिए समर्पित है। सबके पास देने की चीज है। अपने पास जो कुछ है, उसे समाज को समर्पित करने की भावना का ही नाम 'ग्रामराज्य' है!

कन्याकुमारी (मद्रास)
१५-४-'५७

केरल-प्रदेश—कालड़ी-सम्मेलन के पूर्व

[१८-४-'५७ से ७-५-'५७ तक]

केरल में जमीन की मालकियत मिटे

आज हम एक प्रेम-राज्य से दूसरे प्रेम-राज्य में प्रवेश कर रहे हैं। जिस प्रदेश को हमने छोड़ा, वहाँ माणिक्यवाचकर, नम्मलवार और रामानुज का राज्य चलता है। अब हम जिस राज्य में प्रवेश कर रहे हैं, वहाँ के राजा हैं ईसामसीह और शंकराचार्य। हम इसमें कोई फर्क नहीं देख रहे हैं। ईसामसीह ने सिखाया कि पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा हम अपने पर करते हैं। इसलिए जब हमने सुना कि यहाँ के ईसाई बिशप लोगों ने इस कार्य को माना है, तो हमें आश्चर्य न हुआ। अगर वे इसे न मानते, तभी आश्चर्य की बात होती। क्योंकि इस कार्य को न मानने का अर्थ है, ईसामसीह को न मानना !

शंकर एक कदम आगे

शंकराचार्य ने एक कदम आगे बढ़कर अभेद की बात बतायी। जहाँ 'अभेद' शब्द आया, वहाँ सब प्रकार की मालकियत टूट जाती है। शंकराचार्य ने इस पर स्पष्ट भाष्य लिख रखा है : "कस्य स्विद् धनं"—धन किसका है, मालकियत किसकी है ? किसीकी नहीं। हम समझते हैं कि मालकियत मिटाने का इससे स्वच्छ, स्पष्ट आदेश शायद ही कहीं मिल सकता। ऐसे महान् पुरुष के राज्य में हम आज प्रवेश कर रहे हैं।

आज १८ अप्रैल है। ठीक ६ साल हुए, यह आंदोलन शुरू हुआ था। आप और हम सब मिलकर कोशिश करेंगे, तो सर्वोदय-सम्मेलन में जाहिर कर सकते हैं कि केरल प्रदेश में सबने जमीन की मालकियत प्रेम से छोड़ दी है।

परसाला (त्रिवेन्द्रम्)

१८-४-'५७

जब हम भूमि की मालकियत छोड़ देने के लिए कहते हैं, तो उस पर कई आक्षेप उठाये जाते हैं। हम समूह का स्वामित्व मानते हैं, तो व्यक्ति का महत्त्व कम होगा, शायद इससे उत्पादन कम हो, आदि-आदि। लेकिन आज एक नया आक्षेप यह उठाया गया कि धर्मवाले 'प्राइवेट ओनरशिप' को पवित्र मानते हैं। ये सब बातें सोचने लायक हैं। हमारा मन खुला है। अगर कोई हमें दिखा दे कि जो विचार हम समझा रहे हैं, उसमें कोई गलती है, तो उसे हम उसी क्षण छोड़ने को राजी होंगे। हम इन विचारों की कोई आसक्ति नहीं रखते। किंतु आज तक जितने आक्षेप उठाये गये हैं, उनका हम पर कोई असर नहीं हुआ है। उत्पादन कम होगा आदि जो आर्थिक आक्षेप उठाये जाते हैं, उनमें हम बहुत सार नहीं देखते। विज्ञान के इस युग में जितना परस्पर सहयोग बढ़ेगा, उतना ही उत्पादन बढ़ना चाहिए। मालकियत मिटाने के बाद भी अगर गाँव-वाले हर कुटुम्ब के लिए जमीन देना ठीक समझें, तो दे सकते हैं। मालकियत का विष मिट जाने पर तो आगे की रचना गाँव के सब लोग मिलकर कर सकते हैं।

मालकियत मिटाने से व्यक्ति का महत्त्व बढ़ेगा

मालकियत मिटेगी, तो व्यक्ति का महत्त्व कम होगा, इस आक्षेप के बारे में विचार करना चाहिए। अगर जबरदस्ती से मालकियत मिटायी जाय, तो व्यक्ति का महत्त्व जरूर कम होगा। कोई अच्छी बात भी अगर जबरदस्ती से करायी जाती है, तो उसका बुरा असर होता है। किंतु जब मनुष्य विचार को सोच-समझकर प्रेम से मालकियत छोड़ता है, तो उसे उन्नत ही होना चाहिए। कल कुछ ईसाई गुरु हमसे मिलने आये थे। उनकी छाती पर क्रॉस लटका हुआ था। हमने उनसे कहा कि "आपने ऐसा काम किया है, जिससे व्यक्ति का महत्त्व बढ़ सकता है। अगर व्यक्ति का महत्त्व बढ़ाना है, तो हर व्यक्ति को क्रॉस उठाने

की तैयारी करनी चाहिए, न कि अपनी छाती पर मालकियत चिपकाने की। अगर छाती के साथ पैसे की गठरी बाँधेंगे, तो व्यक्ति का महत्त्व न बढ़ेगा। उससे मनुष्य का महत्त्व घटेगा और पैसे का बढ़ेगा। आज दुनिया में यही हुआ है। पैसा और दूसरी अनेक वस्तुओं का महत्त्व बढ़ा है, पर मानव का महत्त्व गिर गया है। मानव अगर प्रेम से मालकियत छोड़ देता और क्रॉस उठाने के लिए तैयार हो जाता है, तो व्यक्ति का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है।

समाज और व्यक्ति का झगड़ा व्यर्थ

अगर मेरा हाथ सारे शरीर की सेवा करे, तो हाथ का महत्त्व बहुत बढ़ेगा। लेकिन अगर पाँव में काँटा चुभने पर हाथ कहे कि मैं ऊँचा हूँ, अलग रहना चाहता हूँ, पाँव को न छुऊँगा, उसकी सेवा न करूँगा, तो इससे हाथ का महत्त्व न बढ़ेगा, बल्कि घटेगा ही। आज हाथ का ज्यादा महत्त्व इसीलिए है कि वह पाँव की, सबकी सेवा के लिए जाता है। अगर वह केवल सिर की सेवा के लिए तैयार रहे, पाँव की सेवा न करे, तो उसका महत्त्व घटेगा। शरीर के अवयवों में कोई अपने को ऊँचा समझता है, तो कोई नीचा। मुँह अपने को ऊँचा समझता है, तो पाँव नीचा। मुँह पाँव को छूने को राजी नहीं। पर हाथ मुँह को भी छूने को राजी है और पाँव को भी, इसलिए हाथ का महत्त्व बढ़ा है। वैसे ही आप अगर व्यक्ति का महत्त्व बढ़ाना चाहते हैं, तो उसका उपाय यह नहीं कि मालकियत के साथ चिपके रहें। बल्कि व्यक्ति अगर यह माने कि मेरी मालकियत कुछ नहीं है, मालकियत समाज की है, मैं सेवक हूँ, तो उसका महत्त्व बढ़ेगा।

समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति के विरोध में समाज और समाज के विरोध में व्यक्ति आदि नाहक झगड़े पैदा किये हैं। हाथ समुदाय या समाज है और व्यक्ति अंगुलियाँ। दोनों का विरोध नहीं, दोनों एक ही चीज हैं। समाजवाद और साम्यवाद कहता है कि व्यक्ति का महत्त्व नहीं, समाज का है। इधर दूसरे एकांगी पंथ कहते हैं कि व्यक्ति का महत्त्व है, समाज का नहीं। यह व्यर्थ का ही झगड़ा है। एक ही चीज के दो नाम हैं, अनेक व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। सब व्यक्तियों को अलग किया जाय, तो समुदाय ही न बनेगा। अकेला व्यक्ति

समाज से अलग रहे, तो सूख जायगा। जैसे पेड़ की शाखा उस पेड़ के साथ चिपकी रहे—उसका अंग बनकर रहे, तो उसमें ताजगी रहेगी। उसे काटकर अलग रखा जाय, तो वह सूख जायगी। इसलिए व्यक्ति और समाज का झगड़ा व्यर्थ का झगड़ा है।

सद्विचार का उद्गम-स्थान व्यक्ति

हम व्यक्ति का महत्त्व मान्य करते हैं। कोई भी सद्-विचार पैदा होता है, तो व्यक्ति के दिमाग में ही। वहीं से वह समाज में फैलता है। हर जगह यही देखा गया है। भूदान-यज्ञ की मिसाल लीजिये। यह विचार भी एक व्यक्ति को ही सूझा और उसके जरिये समाज में फैला। 'क्रिश्चियानिटी' का विचार प्रथम ईसा को सूझा और 'इसलाम' का विचार पैगम्बर को। मार्क्स के विचार को कौन मानता था? परंतु उसने ग्रंथ लिखकर उसे फैलाया। सद्विचार का उद्गम-स्थान व्यक्ति ही होता है। इसलिए हम व्यक्ति का महत्त्व कभी कम नहीं करते। सर्वोदय में व्यक्ति की अत्यन्त प्रतिष्ठा है। हरएक व्यक्ति के लिए स्थान है। हम किसीको भी छोटा नहीं समझते। लेकिन आजकल बहुमत, अल्पमत का वाद उत्पन्न किया गया है। यह झगड़ा इस तत्त्वज्ञान के कारण पैदा हुआ है कि 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर'—अधिक-से-अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला हो। उसके लिए चंद लोगों के हित को हानि पहुँचे, तो कोई हर्ज नहीं। वास्तव में यह गलत विचार है। सर्वोदय इसे नहीं मानता। सर्वोदय हरएक का हित चाहता और कहता है कि किसीके सच्चे हित का दूसरे किसीके सच्चे हित के साथ विरोध संभव नहीं। हितों का विरोध मानकर किया गया सारा-का-सारा चिंतन गलत है। मेरा आरोग्य बढ़े, इसमें आपका कोई नुकसान नहीं हो सकता। बल्कि यही संभव है कि मुझे रोग हुआ, तो आपको भी वह लग सकता है। सच्चे हित परस्परविरोधी नहीं हो सकते। इसलिए सर्वोदय में अकेला व्यक्ति भी समाज से अलग रहे, तो उसका हित देखा जायगा। समाज के हित के लिए एक व्यक्ति के भी हित की हानि हम कबूल नहीं कर सकते।

समर्पण में प्रतिष्ठा

सब व्यक्तियों का समान हित सधना चाहिए, यह सर्वोदय का विचार है।

इसलिए इसमें व्यक्ति की ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिष्ठा है। किंतु व्यक्ति की प्रतिष्ठा कैसे बढ़े, यह सोचना चाहिए। क्या व्यक्ति संपत्ति, मालकियत पकड़े रखे, तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी या वह अपना सब कुछ समाज की सेवा में अर्पित कर देगा, तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? इसमें ज्यादा सोचने की जरूरत ही क्या है ? परिवार में क्या होता है, यही देखें। क्या बाप, माँ और लड़के अपनी अलग-अलग कमाई पकड़े रखें, तो परिवार सुखी होगा ? क्या इससे उन व्यक्तियों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? क्या माता अपनी संपत्ति बेटे को देने को राजी न हो, तो माता की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? माता की प्रतिष्ठा तभी बढ़ती है, जब वह अपना सर्वस्व बच्चे को देती है। आज माँ का गौरव इसलिए नहीं कि उसे 'प्रॉपर्टी' का हक है। कानून से आप माता को लाख अधिकार दीजिये, लेकिन माता की प्रतिष्ठा इसलिए है कि वह अपना सर्वस्व घर को देती है। आप कानून से मानो कि माँ का इस्टेट पर इतना अधिकार है, पिता का उतना अधिकार है और छोटे बच्चे का कुछ नहीं। लेकिन बाप और माँ के हृदय का कानून यही है कि मेरी जो कुछ कमाई है, सबकी सब बच्चों की है। इसीलिए परिवार में माँ की प्रतिष्ठा है। इस तरह आप देखते हैं कि व्यक्ति की प्रतिष्ठा परिवार के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने में है। वैसे ही आप देखेंगे कि समाज के लिए समर्पण करने में ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा है। इसलिए व्यक्ति प्रेम और बुद्धिपूर्वक समाज-हित के लिए अपनी मालकियत छोड़ देता है, तो उसकी प्रतिष्ठा गिरने का कोई कारण नहीं है।

त्याग के विरोध में कोई धर्म खड़ा नहीं हो सकता

कुछ लोग कहते हैं कि रोमन कैथोलिक लोग व्यक्तिगत मालकियत को एक पवित्र वस्तु मानते हैं। मुझे लगता है कि उनके लिए ऐसा मानना अज्ञान-भरा है। देखना चाहिए कि वे 'प्राइवेट प्रॉपर्टी' का अर्थ क्या करते हैं ? अगर हर-एक की प्राइवेट प्रॉपर्टी मानी जाय, तो कुटुम्ब का विच्छेद हो जायगा। पर हम कुटुम्ब के विच्छेद नहीं, विस्तार की बात कर रहे हैं—कुटुम्ब को व्यापक बनाने की बात करते हैं। हम कहते हैं कि सारे गाँव का एक परिवार बनाओ, उसके

अंदर आपका छोटा कुटुम्ब भले ही रहे। आप सेवा करें, तो सारे गाँव की करें। उसमें आपके परिवार की सेवा हो ही जाती है। हम समाज की सेवा करेंगे, तो समाज हमारी सेवा करेगा। बाप बेटे की सेवा करे, तो बेटा बाप की सेवा करेगा, तभी तो जीवन में आनंद आयेगा।

सभी स्वावलंबी हो जायँ, दूसरों की सेवा न करें, यह कोई स्वावलंबन का विचार नहीं। नाहक दूसरों की सेवा न लेना ही स्वावलंबन का विचार है। मैंने परसों देखा कि एक मनुष्य घोड़े के जैसा रिक्शा खींच रहा था, जिसके अंदर दूसरा मनुष्य बैठा था। एक मनुष्य अंदर बैठे और दूसरा गाड़ी खींचते हुए दौड़े, यह कोई मानव के लिए शोभा देनेवाली वस्तु नहीं। पर बेचारे मनुष्य लाचार होकर ऐसी सेवा करते हैं। इस तरह दूसरों की सेवा लेना 'वल्गरिटी' है, फिर भी आज वह चल रहा है। उसके विरोध में हमारी भावना तैयार होनी चाहिए। व्यर्थ ही दूसरों की सेवा लेना, दूसरों पर भार होकर बैठना गलत है। किंतु दूसरों की सेवा के लिए तैयार न रहना स्वावलंबन की भावना के विरुद्ध है। मैं दुखियों की सेवा न करूँगा, क्योंकि स्वावलंबन का पुरस्कर्ता हूँ, ऐसा नहीं कह सकते। मैं कहना चाहता हूँ कि हम कुटुम्ब के विच्छेद का काम करना नहीं चाहते, बल्कि यही कहते हैं कि हमें कुटुम्ब के जरिये सारे समाज की सेवा करनी है। कुटुम्ब की सारी शक्तियाँ समाज-सेवा में अर्पण करनी हैं। कुटुम्ब को बड़ा बनाकर उसमें व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन करना है। नदी समुद्र में लीन होने से छोटी नहीं, बड़ी ही बनती है।

रोमन कैथोलिक चर्च इसका कैसे विरोध करते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता, जहाँ तक हम ईसामसीह को समझे हैं। बल्कि उन्होंने क्या कहा, यह उनकी इस विख्यात कहानी से मालूम होता है। एक व्यक्ति ईसामसीह के पास शिष्य बनने के लिए आया और कहने लगा : "मुझे कुछ बोध दीजिये।" जब ईसा ने कुछ बातें कहीं, तो कहने लगा : "इस पर तो अमल करता ही हूँ। मुझे विशेष बोध दीजिये।" तब ईसामसीह बोले : "तुम्हारे पास जो कुछ संपत्ति है, सब गरीबों में बाँट दो और सब छोड़कर मेरे पास आओ।" इसके मानी क्या हैं ? क्या इसका यही अर्थ है कि प्राइवेट प्रॉपर्टी पवित्र वस्तु है ? अधिक-

से-अधिक इसका यही अर्थ हो सकता है कि मैं आपकी प्रॉपर्टी पर हमला न करूँ। वह मुझे मंजूर है। पर आप अपनी प्रॉपर्टी समाज के लिए छोड़ दें, इसमें क्या हर्ज है ? इसके लिए हमें बाइबिल पढ़ने की जरूरत नहीं। कोई भी धर्म स्वेच्छापूर्वक किये त्याग के विरुद्ध नहीं हो सकता। मनुष्य स्वामित्व-विसर्जन करता है, तो उसके विरोध में कोई धर्म, कोई चर्च खड़ा नहीं है। फिर भी इस बारे में हमने अपना मन खुला रखा है। कोई हमें समझा दे, तो हम अपनी गलती सुधारने के लिए तैयार हैं।

हम अपनी ही मिसाल देते हैं। हमने अपनी सारी व्यक्तिगत संपत्ति छोड़ी, तो यह नहीं समझते कि कोई अधर्म का काम किया और न लोग ही वैसा समझते हैं। इसलिए प्राइवेट प्रॉपर्टी का हौवा बनाना गलत है। हाँ, अगर प्रॉपर्टी छीनकर बाँटने का काम कोई करे, तो वह गलत होगा। पर उसमें भी सोचने की बात है। मान लीजिये कि समाज में किसी व्यक्ति ने ज्यादा परिग्रह रखा और सारा समाज भूखा है, तो हम मानते हैं कि उस हालत में समाज को अधिकार है कि व्यक्ति की प्रॉपर्टी का एक हिस्सा समाज के हित के लिए लिया जाय। यद्यपि समाज को यह हक है, फिर भी उसमें व्यक्ति के लिए कुछ-न-कुछ रखना जरूरी है। इस तरह समाज को किसी व्यक्ति को परिग्रह से छुड़ाना पड़े, तो एक हद तक वह मान्य है।

बुनियादी सिद्धान्त, अस्तेय और अपरिग्रह

सारांश, हमने आज दो बातें कहीं : (१) हम किसीकी प्राइवेट प्रॉपर्टी छीनने के पक्ष में बोलें, तो हम गलत काम करेंगे। किंतु कोई प्राइवेट प्रॉपर्टी प्रेम से छोड़ने की बात समझाता है, तो वह ठीक है। कोई इसी तरह छोड़ता है, तो वह भी ठीक है। (२) जहाँ समाज में अत्यन्त दारिद्र्य है, वहाँ कोई ज्यादा संग्रह करता है, तो उस अधिक संग्रह से उसे छुड़ाने का अधिकार समाज को है। इसीका नाम है 'अपरिग्रह' और 'अस्तेय'। अपरिग्रह याने ज्यादा संग्रह न करना। अस्तेय याने चोरी न करना। ये दोनों मिलकर धर्म पूरा होता है। आजकल हम चोरी को अधर्म समझते हैं, यह तो ठीक है; पर

संग्रह को अधर्म नहीं समझते, यह गलत है। यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि एक बाजू से संग्रह होता है, तो दूसरी बाजू से चोरी। इसलिए केवल चोरी को पाप कहना एकांगी नीति है। जब हम समझेंगे की चोरी भी पाप है और संग्रह भी पाप, तभी पूर्ण नीति होगी।

यह भी ईसामसीह ने कहा है। हम कोई नयी बात नहीं बता रहे हैं। ईसा ने ऐसा सख्त वाक्य कहा है कि कोई कम्युनिस्ट भी उससे ज्यादा क्या कहेगा : 'इट इज इजियर फार ये कैमेल टू पास थ्रू ये निडिल्स आइ दैन फार ये रिच मैन टू इण्टर दि किंगडम ऑफ गाड।' चाहे सूई के छेद से ऊँट भी चला जाय, पर श्रीमान् मनुष्य को परमेश्वर के राज्य में प्रवेश न मिलेगा। हम समझते हैं कि इससे अधिक स्पष्ट वाक्य शायद ही किसीने कहा होगा। इसमें परिग्रह का अत्यन्त निषेध होता है, चोरी का निषेध तो होता ही है। चोरी न करनी चाहिए, यह साधारण बात है। सभी धर्मों में यह माना जाता है। किन्तु चोरी का मूल कारण संग्रह है, उसे कायम रखते हो, तो चोरी मिटती नहीं, यह विशेष बात है।

वैधानिक चोरी या अपरिग्रह

इसीलिए कम्युनिस्टों ने एक धर्म बनाया है, अपहर्ताओं का अपहरण। हम कहते हैं कि अपहरण करनेवालों का अपहरण करने की जरूरत क्यों रखते हो? अपरिग्रह ही रखो। वे कहते हैं कि "तुम अपरिग्रह की बात करते हो, पर अपरिग्रह रखता कौन है? तुम्हारे बड़े-बड़े धार्मिक लोग ही तो परिग्रही हैं। लोग इतना बड़ा परिग्रह करेंगे, फिर मुट्ठीभर दान देंगे और बाबा को ठगेंगे। इस तरह वे अपना परिग्रह भी कायम रखेंगे और दान का पुण्य भी हासिल करेंगे। परिग्रह से इहलोक भी सधता और दान से परलोक भी।" इस टीका में कुछ अर्थ है। उन्हें इस तरह की टीका करने का अधिकार है। जो चीज हमें करनी चाहिए, हम नहीं करते, गलत काम करते हैं। फिर कार्य-कारण की प्रक्रिया काम करती है, तो हम क्या करेंगे? हम गलत काम करते हैं, तो परिणाम गलत होगा ही। हम परिग्रह कायम रखते हैं, तो उसका परिणाम किसी-

न-किसी प्रकार की चोरी में होगा ही। आप मामूली चोरी कबूल नहीं करते हैं, तो शास्त्रीय चोरी कबूल कीजिये। शास्त्रीय चोरी याने कानून के जरिये छीनना। सामान्य चोरी को मान्य करने के लिए कोई राजी नहीं, तो फिर अब अपने पास क्या रह जाता है? वैधानिक चोरी या अपरिग्रह, इन दो के सिवा तीसरी बात रहती ही नहीं। बाबा समाज से कहता है कि तुम अपरिग्रह सीखो। अपनी व्यक्तिगत मालकियत समाज को समर्पण करो। इससे बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होगी। दुनिया में कारुण्य का आविर्भाव होगा। सब धर्मों का तेज बढ़ेगा, आस्तिकता बढ़ेगी। फिर भी धार्मिक लोग इसके विरोध में खड़े होकर यह कहें कि "व्यक्तिगत मालकियत पवित्र वस्तु है", तो क्या कहा जाय? हम उनसे कहते हैं कि धर्म को जरा अन्दर से सोचो।

त्याग से सर्वोत्तम भोग

विज्ञान के इस युग में परस्पर सम्बन्ध बढ़ रहे हैं। एक-दूसरे से आशा बढ़ रही है। मनुष्य एक-दूसरे से ज्यादा अलग नहीं रह सकता। राष्ट्रों की मर्यादाएँ टूट रही हैं। राष्ट्रवाद भी अन्तर्राष्ट्रीयवाद को जगह दे रहा है। इस तरह जहाँ बुद्धि का व्यापक प्रसार हो रहा है, वहाँ हम व्यक्तिगत मालकियत से चिपके रहें, तो ठीक न होगा। इसलिए हमें प्रेम, उत्साह और आनन्द से व्यापक बनने के लिए तैयार होना चाहिए। त्याग की इतनी तैयारी हम करेंगे, तो उससे सबका भोग अच्छा सधेगा।

'ईशावास्य उपनिषद्' ने एक सुन्दर उपदेश दिया है : "त्यक्तेन भुंजीथाः"—त्याग से भोगो। हम त्याग करने में हिचकिचायेंगे, तो भोग न सधेगा। आपके घर में अत्यन्त सुन्दर बीज रखा है। आप दरिद्र किसान हैं, आपको खाने को रोटी नहीं मिलती। फिर भी आप उस सुन्दर बीज को नहीं खाते, जरूरत पड़ने पर फाका कर लेते या तरकारी वगैरह खा लेते हैं। आप उसे इसीलिए न खाते कि उसका त्याग करना है। वह बीज खेत में बोने के लिए रखा है। इस तरह जब त्यागपूर्वक खेत में बीज बोया जाता है, तो भोग के लिए फसल मिलती है। वह सुन्दर बीज आप खा लेंगे, तो आगे फसल न मिलेगी।

इसलिए भोग का सर्वोत्तम साधन त्याग है। अगर समाज त्यागपरायण बने, तो उसका भोग सर्वांग-सुन्दर सधेगा। नहीं तो कुछ लोग भोग भोगते रहेंगे और दूसरे क्षीण होंगे। दोनों दुःखी होंगे, खानेवाले भी सुखी नहीं हो सकते। नजदीक कोई मनुष्य चिल्ला रहा हो, तो खाने में क्या सुख है ? इसलिए अगर समाज को सर्वांग-सुन्दर भोग चाहिए, तो वह तभी मिल सकता है, जब व्यक्ति त्याग की तालीम पायेगा। हम आपको त्याग सिखाकर संन्यासी नहीं, बल्कि उत्तम भोगी बनाना चाहते हैं। उत्तम भोग चाहिए, तो वह त्याग के जरिये ही सधेगा। घर-घर बहनें बच्चों के लिए त्याग ही कर रही हैं, इसीलिए परिवार में आनन्द है। जो आप घर में कर रहे हैं, वही गाँव के लिए कीजिये, इतना ही हम कहना चाहते हैं।

कल्लरा (कोट्टायम)
३-५-'५७

वायकम्-सत्याग्रह से सबक सीखिये : ६० :

इस गाँव में हम दुबारा आये हैं। ३२ साल पहले यहाँ सत्याग्रह चल रहा था, तब हम यहाँ आये थे। वह सत्याग्रह मंदिर-प्रवेश के लिए चल रहा था। हरिजनों के लिए मंदिर-प्रवेश नहीं था। इतना ही नहीं, मंदिर की तरफ जाने-वाले रास्ते पर भी उन्हें न जाने देते थे। इसीलिए सत्याग्रह शुरू हुआ, जो लगातार कई दिन चला। परिणाम होता-सा दिखाई नहीं दिया। उन दिनों हम वर्धा के आश्रम में रहते थे और बापू साबरमती थे। उन्होंने हमें आदेश दिया कि यह सत्याग्रह किस तरह चल रहा है, हम जरा देखें। हमसे दो अपेक्षाएँ थीं। एक तो विद्वान् सनातनी लोगों से चर्चा कर कुछ हो सके, तो देखें और सत्याग्रह के तरीके में कुछ सुझाव पेश करना हो, तो करें। हममें ज्ञान नहीं, उस वक्त तो अनुभव भी नहीं था। फिर भी बापू की एक श्रद्धा थी। हमने भी श्रद्धा रखकर यहाँ आने की हिम्मत की। जगह-जगह पंडितों के साथ काफी चर्चा हुई। वे तो संस्कृत में ही चर्चा करना पसन्द करते थे, दूसरी भाषा बोलते न थे। इसलिए हम

भी संस्कृत में बोलने की कोशिश करते थे। किन्तु हम उनके हृदय में कुछ परिवर्तन लाने में समर्थ न हुए। मुख्य सवाल था, सत्याग्रह के तरीके में कुछ सुझाव पेश करने का। शुद्ध दृष्टि से सत्याग्रह चलता है, तो उसका असर होता ही है। उस समय हमने कुछ सुझाव पेश किये और बापू से भी उस बारे में कहा। उसके बाद बापू स्वयं यहाँ आये और आगे यह मसला हल हो गया।

सनातनियों की संकुचितता

हरिजनों का मंदिर में प्रवेश होने के कारण भगवान् का कुछ न बिगड़ा और हम लोगों का बहुत सुधर गया! आश्चर्य की बात है कि इस प्रदेश में मुसलमानों का आक्रमण हुआ, ईसाइयों का भी हुआ और दोनों संप्रदाय यहाँ बढ़ते चले गये। फिर भी सनातनियों को बुद्धि नहीं सूझी। इसके अलावा यहाँ शंकराचार्य जैसे का अद्वैत-सिद्धांत निकला और रामानुजाचार्य भी यहाँ प्रचार कर चले गये। इन सबका भी कुछ असर न हुआ और संकुचित बुद्धि कायम ही रही। सत्याग्रह के प्रयोग से ही उस बुद्धि के पर्दे कुछ हटे। आज कोई नहीं कहता कि हरिजनों को मंदिर में न आने देने में कोई न्याय था। मैंने उस समय ब्राह्मणों को समझाने की खूब कोशिश की थी। उनसे कहा: "आप 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' कहते हैं और गुरु शिष्यों को अपने नजदीक आने ही नहीं देते, तो कैसे गुरु हैं? इसीका परिणाम यह हुआ कि यहाँ सनातनधर्म गिरता चला गया और उदारता सिखलाने में इसलाम और ईसाई धर्म-प्रचार की मदद मिली। आज इस प्रदेश में एक-तिहाई लोग ईसाई हैं, इससे हिंदुओं को कुछ शिक्षा मिलनी चाहिए।"

सत्याग्रह की तालीम आवश्यक

वायकम् एक बड़ा तीर्थक्षेत्र हो गया है। यहाँ के सत्याग्रह के कारण सारे हिन्दुस्तान में इसका नाम हो गया। सत्याग्रह की यह शक्ति हमेशा काम देनेवाली है। अक्सर हम 'सत्याग्रह' का अर्थ ठीक नहीं समझते। सत्य पर कायम रहना ही सत्याग्रह है। अपना सारा जीवन सत्याग्रह-निष्ठा पर खड़ा करना, कितनी भी मुसीबतें आयें, तो भी जिसे हम सत्य समझें, उस पर डटे रहना

सत्याग्रह है। बल्कि इसके लिए हम कष्ट सहन करते हैं, ऐसा भान भी हमें न होना चाहिए। जो सत्य पर अमल करता है, उसे उसीकी कोशिश में आनन्द महसूस होता है। उससे भिन्न कोई अनुभव उसे होता नहीं और न बीच की तकलीफों का ही भान होता है। हम तीर्थयात्रा करने जा रहे थे, तो बीच में कभी चढ़ाव आता, तो पाँव को तकलीफ होती है और उतार हो, तो आसान मालूम होता है। लेकिन यात्री इस चढ़ाव-उतार पर ध्यान नहीं देता, उसका सारा ध्यान उसी स्थान पर रहता है, जहाँ वह जाना चाहता है। वह यही कहता है कि मैं काशी-यात्रा के लिए निकला हूँ। बीच में पहाड़ आयें, तो भी वह ध्यान नहीं देता। वैसे ही जो अपने जीवन में सत्य-निष्ठा रखता है, उसे उसके लिए तकलीफें सहन करनी पड़ें, तो वे कुछ महसूस नहीं होतीं।

सारांश, बावजूद आपत्तियों के सत्य पर कायम रहने की शक्ति जनता में होनी चाहिए। यही एक शक्ति है, जिससे दुनिया हिंसा से बच सकती है। समाज में जो समस्याएँ होती हैं, उनके हल के लिए इस शक्ति का उपयोग होता है। विद्यार्थियों में भी सत्याग्रह की वृत्ति निर्माण होनी चाहिए। बचपन में हमें जो श्लोक सिखाये गये थे, उनमें से एक श्लोक हमें निरन्तर याद रहता है। इसमें कहा गया है कि प्रह्लाद को कितनी ही तकलीफें दी गयीं, फिर भी उसने राम का नाम नहीं छोड़ा। इस तरह सामाजिक और स्कूली शिक्षण में भी सत्याग्रह की तालीम दी जानी चाहिए।

एक ही घर में अनेक धर्मवाले क्यों न रहें ?

अनुशासन को हम भी आवश्यक समझते हैं, किन्तु वह आचरण में रहे। विचार में तो पूरी आजादी होनी चाहिए। संस्कृत भाषा में हमें जो स्वातन्त्र्य-वैभव दीखता है, वैसा किसी भी भाषा में नहीं। संस्कृत में छह आस्तिक-दर्शन हैं, तो छह नास्तिक दर्शन भी। लेकिन किसीको भी 'अधार्मिक' कहने की शक्ति नहीं है। कपिल महामुनि नास्तिक थे, फिर भी वे हिन्दू रहे, क्योंकि उनका आचरण अच्छा था। कोई सदाचरण के नियमों पर चल रहा हो और ईश्वर को मानता हो, तो उसे ईश्वर को न मानने की भी आजादी है। पतंजलि

ईश्वर को मानते थे, तो उन्हें मानने की आजादी थी। इस तरह हिंदू-धर्म में अनेक दर्शन चलते थे। उनमें परस्पर विरोध भी था। विचार-मंथन चलता था। इस तरह विचार की आजादी होनी चाहिए।

प्राचीन काल में हिंदुस्तान में इसका दर्शन होता था। एक ही परिवार में बाप हिंदू होता था, तो एक लड़का बौद्ध और दूसरा जैन। इसमें किसीको विरोध न मालूम होता था। फिर आज यह क्यों न हो कि एक ही घर में एक भाई हिंदू और दूसरा मुसलमान है, तो तीसरा ईसाई। आचार दूसरी चीज है। आचरण के कुछ सामुदायिक नियम होते हैं, जिन पर हम चलें। पर विचार की आजादी क्यों न होनी चाहिए? यह क्यों होना चाहिए कि हमारी कुल-परंपरा में अद्वैत चलता है, तो हमें भी अद्वैत ही मानना पड़े या द्वैत चले, तो हमें भी द्वैत ही मानना पड़े? इस पर हमें सोचना चाहिए। हम जानते हैं कि इस बात को लोग एकदम कबूल न करेंगे। पर एक ही घर में अच्छा हिंदू, अच्छा मुसलमान और अच्छा ईसाई रहे, तो क्या हर्ज है? जिसकी जो श्रद्धा है, उसे वह मानेगा। विश्वास जबरदस्ती से नहीं आ सकता। हम किसीसे यह नहीं कह सकते कि हमारा यह विश्वास है, तो तुम्हें भी वही मानना चाहिए। इसलिए एक ही घर में अनेक धर्म हो सकते हैं। इसे मानने के लिए हमें मानसिक तैयारी करनी चाहिए। तभी सत्याग्रह का विचार बढ़ेगा। अगर मुझे सत्य का आग्रह है, तो मैं अपना सत्य दूसरों पर लाद नहीं सकता और दूसरे भी अपना सत्य मुझ पर लाद नहीं सकते। हम एक-दूसरे को समझा सकते हैं, मत-परिवर्तन की कोशिश कर सकते हैं। वह हुआ, तो हम बदलेंगे; नहीं तो हम अलग रह सकते हैं। धर्म के, समाज के और सब प्रकार के विचारों में इस प्रकार का विचार-स्वातंत्र्य होना चाहिए।

वायकम् (कोट्टायम)
४-५-'५७

हमने जब केरल में प्रवेश किया, तो हमारे स्वागत के लिए विविध पक्षों के लोग आये थे, जिनमें आपके गवर्नर भी थे। उन्होंने कहा कि "आप ग्रामदान माँगने आये हैं। पर यहाँ तो ग्राम कहाँ से शुरू होता है और कहाँ खतम होता है, कुछ पता ही नहीं चलता। इसलिए यहाँ तो स्टेट का ही दान होना चाहिए।" कोई विचार प्रथम मन में पैदा होता है, जिसे हमारी भाषा में 'संकल्प' कहते हैं। फिर वह वाणी में आता है, लोग बोलने लगते हैं। उसके बाद वह कृति में आता है। संकल्प, वाणी और कृति यह एक रास्ता ही है। "स्टेट का दान होना चाहिए, होना चाहिए" ऐसा बोलने तो लगो, तो वह कृति में भी परिणत हो जायगा।

ईसाई अनुकूल

इस प्रदेश की हवा इसके लिए बिलकुल तैयार हो गयी है। कम्युनिज्म और धर्म-संस्था, ये दो बिलकुल परस्परविरोधी विचार माने गये हैं। किन्तु दोनों कह रहे हैं कि भूदान होना चाहिए। आप लोगों को मालूम होगा कि यहाँ के सब चर्चवालों ने भी जाहिर किया है कि भूदान-आन्दोलन ईसामसीह के उपदेश का अमल है। हम मानते हैं कि उन्होंने यह ठीक ही कहा है। ईसा की तालीम यह थी कि "पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा तुम अपने पर करते हो।" अगर कोई कहता है कि पड़ोसी पर प्यार करो, तो उसे सब लोग समझते। परन्तु ईसा ने उतना ही नहीं कहा, बल्कि एक बहुत बड़ी बात कही कि पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा अपने पर करते हो। शंकराचार्य ने यहाँ पर यही विचार सिखाया। पड़ोसी पर अपने जैसा ही प्यार क्यों करना चाहिए, इसका तत्त्वज्ञान शंकराचार्य ने बताया। कारण अपने में और अपने पड़ोसी में कोई फर्क ही नहीं है। आत्मा समानरूप है। ईसामसीह ने यह कारण स्पष्ट शब्दों में नहीं बताया। उन्होंने हमारे सामने एक जीवन-विचार रख दिया :

"लव दाई नेवर ऐज दाईसेल्फ" उस आखिरी शब्द ने सारा भेद ही खतम कर दिया। भूदान और क्या कहता है? इसलिए यहाँ के कुल चर्चवालों ने जाहिर किया है कि इस यज्ञ के साथ हमारी पूरी सहानुभूति है।

हाँ, धार्मिक लोगों में से कुछ लोगों ने यह बात अवश्य उठायी कि गरीबों को जमीन देने की बात तो हम समझ सकते हैं। वह कारुण्य का कार्य है, इसलिए उचित है। किन्तु आप तो व्यक्तिगत मालकियत भी मिटाना चाहते हैं। हमें लगता है कि व्यक्तिगत मालकियत एक पवित्र वस्तु है। उन लोगों को हमने समझाया कि हम भी मानते हैं कि किसीने अपने प्रामाणिक प्रयत्न से कमाई की हो, तो दूसरा उस पर आक्रमण न करे। उसे छीनना गलत है। परन्तु जिसे अंग्रेजी में 'प्रॉपर्टी' कहते हैं, उसमें इतना ही देखना होता है कि जिन साधनों से उसने वह हासिल की, वे साधन 'प्रापर' थे या 'इमप्रापर?' अगर वे साधन 'प्रापर' न हों, तो उसे 'प्रॉपर्टी' शब्द ही लागू नहीं होता। अगर हम मानें कि उसने धर्म-साधनों से सम्पत्ति प्राप्त की है, तो फिर वह पवित्र वस्तु है। लेकिन बाप ने प्रामाणिक मेहनत से कुछ कमाई हासिल की है, तो हम उसे कहते हैं कि इस कमाई पर तुम्हारा हक है। लेकिन बच्चों के लिए तुम उस हक को छोड़ दो। यदि वह इसे कबूल करता है, तो यह अधर्म नहीं, धर्म ही माना जायगा।

हम समझते हैं कि व्यक्तिगत मालकियत पवित्र वस्तु है, तो व्यक्तिगत स्वामित्व का विसर्जन उससे भी पवित्र। हम छीनने की बात तो कर ही नहीं रहे हैं। भूदान में छीनना है ही नहीं। उसमें विचार समझाना और प्रेम से पाना है। हक के तौर पर माँगना है और हक के तौर पर पाना। हम समझते हैं कि ग्रामदान में आप अपने परिवार को बड़ा बनाइये। इसमें परिवार का विच्छेद नहीं, उसका विस्तार ही है। इसलिए आप अपनी अर्जित सम्पत्ति ग्राम-समुदाय के लिए अर्पण कीजिये, तो एक पवित्रतम वस्तु होगी।

एर्नाकुलम् (त्रिचूर)
६-५-'५७

उप-शीर्षकों का अनुक्रम

श

स

भूदान-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

भूदान-यज्ञ (हिन्दी : साप्ताहिक)

सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या १२ वार्षिक शुल्क ५)

इस साप्ताहिक में सर्वोदय, भूदान, खादी-ग्रामोद्योग, ग्राम-जीवन, अर्थ-स्वावलम्बन सम्बन्धी विविध सामग्री का सुरुचिपूर्ण चयन रहता है।

भूदान-तहरीक (उर्दू : पाक्षिक)

सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क २)

इसमें भूदान-सम्बन्धी विचारों को उर्दू-भाषी जनता के लिए सरल भाषा में दिया जाता है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

●

भूदान (अंग्रेजी : साप्ताहिक)

सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ संख्या ८ वार्षिक शुल्क ६)

भूदान-सम्बन्धी यह अंग्रेजी साप्ताहिक पूना से प्रकाशित होता है, जिसमें भूदान-यज्ञ की विविध प्रवृत्तियों का विवरण और विवेचन रहता है।

पता—भूदान कार्यालय,

३७४, शनिवार पेठ, पूना—२

सर्वोदय और भूदान-साहित्य

(विनोबा)

	रु० पैसा
गीता-प्रवचन	१— ०
शिक्षण-विचार	१—५०
कार्यकर्ता-पाथेय	०—५०
त्रिवेणी	०—५०
विनोबा-प्रवचन (संकलन)	०—७५
साहित्यिकों से	०—५०
भूदान-गंगा (छह खंडों में)	६— ०
ज्ञानदेव-चिंतनिका	१— ०
जनक्रांति की दिशा में	०—२५
भगवान् के दरबार में	०—१३
गाँव-गाँव में स्वराज्य	०—१३
सर्वोदय के आधार	०—२५
एक बनो और नेक बनो	०—१३
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	०—१३
व्यापारियों का आवाहन	०—१३
हिंसा का मुकाबला	०—१६
चुनाव	०—१३
अम्बर चरखा	०—१३
ग्रामदान	०—७५
मजदूरों से	०—१३

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासनमुक्त समाज की ओर	०—५०
नयी तालीम	०—५०
ग्रामराज	०—२५

(श्रीकृष्णदास जाजू)

	रु० पैसा
संपत्तिदान-यज्ञ	०—५०
व्यवहार-शुद्धि	०—३८
चरखा-संघ का इतिहास	३—५०
चरखा-संघ का नव-संस्करण	१—५०

(दादा धर्माधिकारी)

सर्वोदय-दर्शन	२— ०
मानवीय क्रांति	०—२५
साम्ययोग की राह पर	०—२५
क्रांति का अगला कदम	०—२५

(अन्य लेखक)

नक्षत्रों की छाया में	१—५०
भूदान-गंगोत्री	२—५०
भूदान-आरोहण	०—५०
श्रम-दान	०—२५
संत विनोबा की आनंद-यात्रा	१—५०
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१— ०
सफाई : विज्ञान और कला	०—७५
सुन्दरपुर की पाठशाला	०—७५
गो-सेवा की विचारधारा	०—५०
विनोबा के साथ	१— ०
पावन-प्रसंग	०—५०
छात्रों के बीच	०—३१
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	०—२५
सर्वोदय-संयोजन	१— ०

पुस्तक	मूल्य
गांधी : राजनैतिक अध्ययन	०—५०
सामाजिक क्रांति और भूदान	०—३१
गाँव का गोकुल	०—२५
ब्याज-बट्टा	०—२५
भूदान-दीपिका	०—१३
पूर्व-बुनियादी	०—५०
ग्राम-स्वावलंबन की ओर	०—२५
सर्वोदय-भजनावलि	०—२५
क्रांति की पुकार	०—२५
राजनीतिसे लोकनीति की ओर	०—५०
नवभारत	४— ०
सत्संग	०—५०
क्रांति की राह पर	१— ०
क्रांति की ओर	१— ०
सर्वोदय-पद-यात्रा	१— ०
दादा का स्नेह-दर्शन	०—२५
ताई की कहानियाँ	०—२५
नये अंकुर	०—२५
सत्य की खोज	१—५०
गाँव-आंदोलन क्यों ?	२—५०
सर्वोदय-सम्मेलन-रिपोर्ट	१— ०
भूदान का लेखा (आँकड़ों में)	०—२५
धरती के गीत	०— ६
भूदान-लहरी	०— ६
भूदान-यज्ञ-गीत	०— ६
सत्याग्रही शक्ति	०—३१
मानस-मोती	०—२५
आज का धर्म	०—५०
पावन-प्रकाश (नाटक)	०—२५
विनोबा-संवाद	०—३८
जीवन-परिवर्तन (नाटक)	०—२५
बापू के पत्र	१—२५
अपना राज्य	०—३७
अपना गाँव	०—५०
प्राकृतिक चिकित्सा क्यों ?	०—२५
माता-पिताओं से	०—३७
चिंतन के क्षणों में	०—५०
समग्र ग्राम-सेवा की ओर	१—५०
भूदान से ग्रामदान	०—१३
सपूत (नाटक)	०—३७
कताई-शास्त्र	२— ०
ग्राम-सुधार की एक योजना	०—७५

(उर्दू-साहित्य)

पुस्तक	मूल्य
गीता-प्रवचन	१— ०
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१—२५
संपत्तिदान-यज्ञ	०—५०
एक बनो नेक बनो	०—२५
ताजीरों को दावत	०—१३
भूदान : सवाल जवाब	०—३८
तालीमी तजरिया	२— ०

कन्याकुमारी में हमने प्रतिज्ञा ली थी कि जब तक भारत में ग्रामराज की स्थापना नहीं होगी, तब तक हम चैन नहीं लेंगे। प्रतिज्ञा लेने के बाद हमारा कुल भार हट गया। इसका कारण यही युग धर्म है। एक बाजू धर्म-संस्था और दूसरी बाजू साम्य-वादी कह रहे हैं कि ग्रामदान होना चाहिए। दो विचारों के बिलकुल दो सिरे हैं। दो सिरे जहाँ इकट्ठे होते हैं, वहाँ समझना चाहिए कि हवा तैयार है, लोगों के पास पहुँचने में जितनी देर लगेगी, उतनी ही देर बाकी है। बस, प्रेम से समझाना है।

विनोबा

मूल्यः डेढ़ रुपया